हमारी यादें : हमारा हरदा

हमारी यादें : हमारा हरदा

पीढ़ियों के संस्मरण

संपादक
ज्ञानेश चौबे

2011

संभावना विचार मंच हरदा
मित्रों की ओर से एक अनौपचारिक पहल

हमारी यादें : हमारा हरदा
पीढ़ियों के संस्मरण

संपादक
ज्ञानेश चौबे

2011

आवरण चित्र
श्री राजेन्द्र मालवीय एवं असफाक रीगल स्टुडियो हरदा
साहित्यकारों के रेखाचित्र
श्री जगदीश दुबे , इंदौर
हरदा के घंटाघर का रेखाचित्र
डॉ.रविन्द्र पगारे, भोपाल

संभावना विचार मंच हरदा
मित्रों की ओर से एक अनौपचारिक पहल

पुस्तक में प्रकाशित तथ्य और विचार लेखकों के अपने हैं संपादक का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है ।

जनकवि बाबा नागार्जुन हरदा 22-12-1991

श्री केदारनाथ सिंह ,हरदा 25-11-2001

पं.विद्यानिवास मिश्र हरदा 2-4-1999
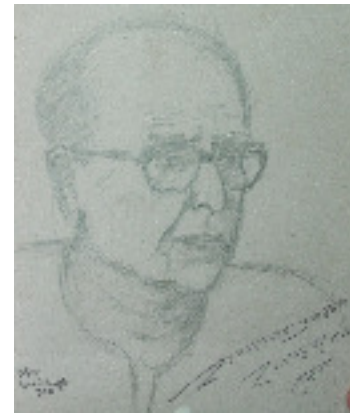
पं. रामनारायण उपाध्याय हरदा 2-10-1988

कलागुरु श्री विष्णु चिंचालकर हरदा 7-2-1993

डॉ नरेन्द्र कोहली, हरदा 14-8-1983

श्री भगवत रावत हरदा 25-11-2001

श्री श्रीकांत जोशी हरदा 22-10-1997

हरदा का घंटाघर -रेखाचित्र डॉ. रवीन्द्र पगारे भोपाल
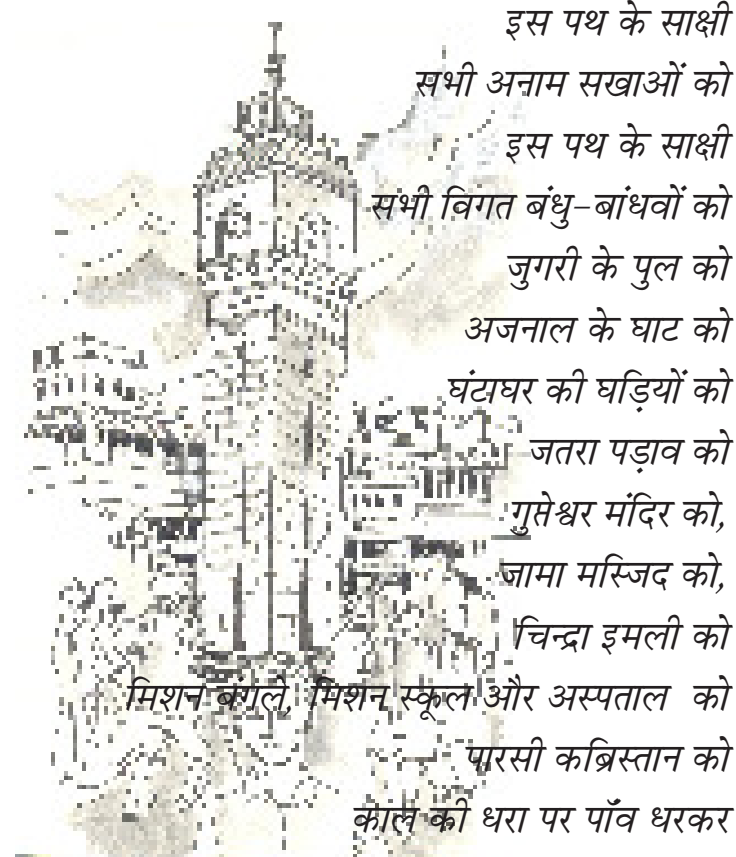
इस पथ के साक्षी
सभी अनाम सखाओं को
इस पथ के साक्षी
सभी विगत बंधु-बांधवों को
जुगरी के पुल को
अजनाल के घाट को
घंटाघर की घड़ियों को
जतरा पड़ाव को
गुप्तेश्वर मंदिर को,
जामा मस्जिद को,
चिन्द्रा इमली को
मिशन बंगले, मिशन स्कूल और अस्पताल को
पारसी कब्रिस्तान को
काल की धरा पर पाँव धरकर
गुजरे सभी लोगों को
हरदा की हरियाली को
हरदा के हर दरख्त को
हरदा के हर माली को
हरदा में चाय की हर प्याली को
समर्पित अर्पित

हमारा हरदा साहित्य सर्जकों की स्मृतियों में

बचपन से ही मेरी प्रवृत्ति सुशिक्षितजनों की संगति करने की ओर थी । देवयोग से ***हरदा*** और होशंगाबाद में मुझे ऐसी संगति सुलभ रही । फल यह हुआ कि मैंने अपने लिए चार सिद्धाँत या आदर्श निश्चित किए । यथा (१) समय की पाबंदी करना (२)रिश्वत न लेना (३) अपना कार्य ईमानदारी से करना और (४) ज्ञानवृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करना।

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी -मेरी जीवन गाथा

अरदे में रहो , परदे में रहो ।
हिरदे में रहो , हरदे में रहो ।।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी
माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं कृतित्व

"प्राइमरी स्कूल में हमारे गुरू जी शरीफे खाते थे और हम शरीफे की छड़ी खाते थे। यह शायद 1931 की बात होगी। होशंगाबाद जिले में ***हरदा*** तहसील में एक बड़ा गांव था तब ***रहटगॉव***। अब अखबार में पढ़ता हूं कि वहां लायंस क्लब भी है। छोटा शहर हो गया है। इस बड़े गांव में पिता जी बस गए थे। यहां हिन्दी की सातवीं कक्षा तक का स्कूल था। प्रधानाध्यापक हमारे रिश्तेदार थे। वे भी परसाई ही थे। मैं इस स्कूल में दाखिल हुआ।

हमारी यादें : हमारा हरदा

हमारे स्कूल में लगा हुआ शरीफे का बगीचा था – जंगल ही था। हमारे गुरू जी शरीफा खाने के बड़े शौकीन थे। वे किन्हीं दो लड़कों से कह देते : 'जाओ, इस झोले में शरीफे तोड़कर ले आओ। '

वे शरीफे खाते हुए एक पवित्र अनुष्ठान करते। चाकू से उन डालियों की बड़ी कलात्मक तन्मयता से गांठें निकालकर, उन्हें छीलकर सुंदर छड़ियां बनाते। बड़ी धार्मिक तल्लीनता से। इधर हमारे प्राण कांपते। उनकी यह कलाकृति हमारी हथेलियों के लिए थी। शरीफा खाकर तृप्त होकर, सुखी मन: स्थिति में वे छड़ी उठाते। मुझे या किसी दूसरे लड़के को बुलाकर कहते : क्यों बे, ये दो शरीफे बिलकुल कच्चे क्यों ले आया ? तुझे पहचान नहीं है ? हाथ खोल। मैं या वह हाथ खोलता और दोनों हथेलियों पर एक एक छड़ी सटाक, सटाक पड़ती। हम दोनों हाथों को हिलाते और कांखों में दवा लेते।

हमारे गुरू जी शरीफा खाते थे और हम शरीफे की छड़ी खाते थे।"

हरिशंकर परसाई-हम इक उम्र से वाकिफ हैं

"एक शाम हम तीन मित्र रोज की तरह रेलवे स्टेशन पर घूम रहे थे कि एकाएक तय हुआ चलो ***हरदा*** में फिल्म '**अछूत कन्या**' देख आएं। गाड़ी खड़ी थी। हम तीनों उसमें बिना टिकिट बैठ गए। तीसरा स्टेशन ***हरदा*** था। एक मित्र के चाचा वहां दुकान करते थे। उनके घर गए। भोजन किया। उन्हें ने सिनेमा की टिकटें खरीद दीं। 'अछूत कन्या' में अशोक कुमार और देविका रानी हैं। ये मेरे आदि और अनंत हीरो हीरोइन हैं। अशोक कुमार की फोटो देखकर खुश होता हूं। पिछले दिनों अब की देविकारानी का फोटो उनके रूसी चित्रकार पति रोरिक के साथ एक पत्रिका में देखा। मोटी, बूढ़ी और भद्दी हो गई है। मेरा मन बहुत खिन्न हुआ। पन्ना पलटाया तो दूसरा चित्र दिखा। इसमें वही हमारी सन् चालीस के आसपास की देविकारानी थी – फिल्म 'ममता' वाली। दिल खुश हुआ। बड़ी देर तक देखता रहा।

'अछूत कन्या' देखने के बाद हम तीनों ने प्रण किया था कि हम अछूत लड़की से शादी करेंगे। पर उन दो ने तो अपनी अग्रवाल जाति में ही शादी कर ली और मेरी अछूत कन्या तो क्या, ब्राम्हण कन्या तक से शादी नहीं हुई।"

हरिशंकर परसाई-हम इक उम्र से वाकिफ हैं

"मैं कांग्रेस के कार्यक्रमों में खूब हिस्सा लेता था। हमारे स्थानीय नेता थे – ***नाना साहब गद्रे***। वे सभा में हर संभावित वक्ता से कहते थे : कुछ तो भी बोलिए। दो शब्द। वे खुद कुछ तो भी बोलते थे, मगर दो नहीं हजारों शब्द। पर आदमी सच्चे और कर्मठ थे। एक हमारे नेता ***हरदा*** के ***महेशदत्त मिश्र*** थे। छरहरे बदन के, गोरे, सुंदर, तरूण। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पहले दर्जे में राजनीतिशास्त्र में एम.ए. किया था। वे गांधीजी के सचिव रहे। फिर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापक हो गए और कुछ साल पहले जबलपुर विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद से रिटायर हुए। वे सुभाषचन्द्र बोस के साथी भी रहे। वे विधानसभा और लोकसभा सदस्य रहे। ये महेश बाबू हम किशोरों के हीरो थे। पिछले कई सालों से हम उनके साथ विश्व शांति आंदोलन, भारत रूस मैत्री संघ आदि में काम कर रहे हैं।"

हरिशंकर परसाई–हम इक उम्र से वाकिफ हैं

हमारी यादें : हमारा हरदा

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

उस दिन १२ फरवरी 2010 को शिवरात्रि थी। सारा हरदा शहर अजनाल नदी के किनारे प्राचीन गुप्तेश्वर मंदिर में उमड़ रहा था और उधर हम सतपुड़ा के विरल और खामोश होते जा रहे जंगलों में घूम रहे थे। माचक नदी के किनारे, उस टीले के आसपास मनोज जैन, सुनीता जैन, हरिमोहन शर्मा, अर्चना भैसारे, ईशान जैन और मैं, धर्मेन्द्र पारे के खोजी दल में शेख दुल्ला पिंडारी की गुफा खोज रहे थे। शेखदुल्ला, पिंडारी था जिसके बारे में किवदंती है कि वह अपने घोड़े पर बैठकर नदी कूद जाता था । उसके विषय में विख्यात था *नीचे जमीं ऊपर अल्ला, बीच में फिरे शेखदुल्ला* । सिर्फ२०० वर्ष में ही उसकी वह गुफा खण्डहर में बदल चुकी थी । शेखदुल्ला जनश्रुति बनकर रह गया। धर्मेन्द्र के साथ हम अड़रस्ते बीहड़ में पता नहीं कहाँ कहाँ पहुँचे । कुछेक जगह तो जाना सचमुच जान जोखिम में डालना था। बाद में हम रानी महल और जंगल में कोरकुओं की झोपड़ियों में सूरज ढलने तक घूमते रहे। उधर हरदा में अजनाल उत्सव रच रही थी अपने किनारे के शिव मंदिरों में। अजनाल नदी भुजरिया, शिवरात्रि, देव दशहरे पर ऐसे ही उत्सव रचती है... ये त्यौहार सारे हरदा को खींच लाते हैं अजनाल के किनारे। बचपन से मैं भी इन सबमें शामिल होता रहा। उस दिन देर शाम को लौटे तो थककर शिव मंदिरों में दर्शन करने तक नही जा सके। सतपुड़ा के जंगलों की यह यात्रा तो उस दिन पूरी हो गई पर इसी में से एक नई यात्रा प्रारंभ होती है ..

जंगल से लौटनें के बाद धर्मेन्द्र पारे लगातार फोन करते रहे कि मुझे और अर्चना भैसारे को उस यात्रा पर एक संस्मरणात्मक लेख लिखना चाहिए। मैं टालता रहा पर बार-बार याद दिलानें और कोंचने पर मैनें एक ही बैठक में संस्मरण लिख डाला। अचानक एक शाम धर्मेन्द्र पारे का आना हुआ । प्रेमशंकर रघुवंशी और अर्चना भैसारे पहले से ही घर

आ चुके थे । मैंने और अर्चना ने अपना लिखा सुनाया । पृष्ठभूमि में क्या बुना जा रहा था इसका मुझे जरा भी अहसास नहीं था। दीपक लाईट और अनूप जैन की दुकानों पर शाम को जमने वाली हमारी गप्प गोष्ठियों में धर्मेंद्र का अक्सर कहना होता कि *पंडितजी ! तुममें लेखन की सामर्थ्य है। क्यों अपना जनम गंवा रहे हो ?* कभी श्री रघुवंशी शरद चौबे की रेत दुकान पर सरी सांझ पहुँचते और इसी बात को प्रकारांतर समझाते – जिनकी *जड़ें हरदा में धंसी हैं पर बाहर बसीकत हो गये हैं ...उनकी स्मृतियों पर किताब तैयार हो सकती है.. अच्छा काम है...यह काम तुम ही कर सकते हो*। कई बार हाँ कह देने का मतलब बचना भी होता है । सच कहूं तो मैंने अपना पिंड छुड़ाने की गरज से हाँ कर दी। सोचा भी नहीं था कि मामला इतना ज्यादा संजीदा हो जायेगा ? और ये महानुभाव तो जैसे पूरा असलाह ही लिये हुए बैठे थे । अगले ही दिन बाहर भेजे जाने वाले पत्र और प्रश्नावली का मजमून हाजिर था । किस किस को पत्र भेजे जायें इसकी सूची नित नवीन होती गई । नेवर फैल उर्फ नरेन्द्र शर्मा, प्रवीण जैसानी, आदित्य गार्गव, विपिन अग्रवाल ,गोलू पहलवान, प्रदीप अजमेरा, राजू अग्रवाल खाऊ, ब्रजमोहन पारे, विजय अग्रवाल और अग्रज श्री सुनील बागरे, सुरेश सोनी, सहित सभी ने बढ़ चढ़कर इसे एक अभियान बना डाला। पितृवत श्री गोपीकिशन जोशी,राजा भैया गार्गव, प्रो. शिवकुमार भारद्वाज, श्री मधु काका बिल्लौरे, श्री कमलचंद जैन और डॉ. आनंद झंवर इस अभियान के मार्गदर्शक बने। जिस काम को मैं बहुत हल्के से ले रहा था अब मुझे समझ में आया कि मैं *नाथा* जा चुका हूँ और बचने का कोई भी रास्ता नहीं है। यह जिम्मेदारी अब मुझे बेचैन करने लगी । आशंका सताने लगी । आशा और निराशा में मैं गोते लगाने लगा। यह काम पूरा कैसे होगा ? संबल मिला मुझे पूज्य बाबूजी की स्मृतियों और जीवन आचरण से। हर चुनौति भरे समय में बाबूजी मुझे ताकत की तरह दीखते हैं। हम पॉंच भाई हैं। पॉंचों की अपनी खासियत है। तरह तरह के भाइयों के बीच मेरी पढ़ने लिखने की रुचि को देखते हुए वे मुझे अक्सर कई बातें सुनाते थे। साथ ही एक अघोषित सीख भी दे देते। शिक्षकों का कठोर अनुशासन, उनके समय के स्कूलों का वातावरण, शिक्षकों के प्रति समाज व छात्रों का आदर भाव व विश्वास.. किसी शिक्षक पिता की उनकी संतानों के लिए यही विरासत भी होती है। बाबूजी अपने संस्मरणों में हरदा के जिन लोगों का जिक्र करते, उनमें दादा भाई नाईक प्रमुख थे। दादाभाई की आचार्य विनोबा भावे से निकटता, विसर्जन आश्रम इन्दौर की स्थापना में उनकी भूमिका, बातचीत के प्रमुख विषय हुआ करते थे। यह सब मुझमें बचपन से ही जिज्ञासा जगाते रहे।

धर्मेन्द्र पारे द्वारा अक्सर यह कहा जाता कि स्वतंत्रता परवर्ती हरदा के इतिहास पर कोई कार्य नहीं किया गया। यह एक जरुरी काम है । बात मुझे भी जमी। कार्य प्रारंभ किया तो परिकल्पना थी कि हरदा छोड़कर चले गये अग्रजों की स्मृतियों के वातायन से हम उनके समय का हरदा जीवंत रुप में घूम फिर सकेंगे। हमारा प्रयास यही था कि स्मृतियों के पृष्ठ

खुलें और हम पढ़ सकें तब के स्कूलों का परिवेश, शिक्षकों के आचरण, परस्पर रिश्तों की कहानी, तीज-त्यौहार, कच्ची सड़कों पर चलते मजबूत लोग। उन लोगों की कथायें जो हरदा की पहचान बने, जिन्होंने हरदा को रचा । वे आत्मकथ्य वे जीवन संस्कार, जो हरदा को देश प्रदेश से बाहर, सात समंदर पार तक पहचान दिला गये ।

हमनें सोचा कि इन संस्मरणों में दर्ज होगी... स्वतंत्रता की सुबह, शहीद दिवस की शाम, भुआणी बोली, गांधी को गोली। मास्टर चंदगीराम, शिवराम पहलवान, कल्लू मेरठ, बिसमिल्ला पहलवान की कुश्तियाँ। श्री गौरीशंकर भद्रावले से लेकर शिवराजसिंह वर्मा (उस्ताद) तक कबड्डी की कहानी, सखाराम दादा की शक्ति के किस्से.. । चौकी अखाड़ा और चंदू भैया अर्थात खेड़ीपुरा के खलीफा चंद्रगोपाल सोनी, हीरु और दत्ता पहलवान, हमें लगा कि इन संस्मरणों में दर्ज हो सकेंगे उनकी आत्मीयता, कंदील के लैंप, भाप के इंजन, मिट्टी से छबी दीवारें, गोबर-लिपे आंगन, वे कुए जो कभी प्यास बुझाते थे जिनकी पाल चौपाल थी। हमें उम्मीद थी कि इन आलेखों में दर्ज हो सकेगी कपास की फसल, शरबती पिस्सी गेहूं , सेठ स्व. बद्रीप्रसाद अग्रवाल की जीन का भोंपू, एक मात्र नर्मदा बस जो कई गांवों तक जानें का अकेला साधन थी। बैलगाड़ी, तांगे और वे पैदल यात्रायें जो धूल भरे रास्तों पर चलने के बाद भी धुंधलाई नही होगी। हमें मिल सकेगी भर भादों की झड़ी, अजनाल नदी की पूर ।

हमें उम्मीद थी कि बहनें लिख भेजेंगी हमें चूल्हे की आग, भभूदर और राख, माँ का प्यार, दादी का दुलार, पिता की डांट, साप्ताहिक हाट, चूल्हे और चक्की, पत्थर की घट्टी ...। बहनें लिख सकेंगी हमें जीजी की बिदाई, खुद की सगाई, गोबर की लिपाई, ढीक-चौके और मांडने.. कि वे याद करेंगी - *चांद गयो गुजरात कि हिरनी का बड़ा बड़ा दांत* । नरबद की कुरकई। रनुबाई के झालरे, गड़व्या, चीं ची ठप्पा, अष्टाचंगा, चिड़ी अंडा गुप चुप, नदी पहाड़, आदि आदि । *झिरी के अकाल* से अपनी उम्र बताने वाले लोगों की पीढ़ी अब समाप्त सी हो रही है। आरसी से जब पारा उतरता है तो तस्वीरें धुंधली पड़ जाती हैं पर चेहरों की पहचान भला कहाँ मिट जाती है? स्मृतियां, संस्कृति है, इनमें समन्वय है, विस्मृति विकृति है, इसमें बिखराव है। स्मृति सावधान करती है, सताती है, रेगिस्तान की तपन भरी यात्रा में ठन्डे पानी के झरने की तरह फूट पड़ती है, हमें तृप्त करने, तर-बतर करने। समय की सत्ता शाश्वत है, समय ठहरता कहां है ? वह चलता रहता है, हमारी सक्रियता-निष्क्रियता, सोने-जागने, जीने मरने सबको समय अपने में दर्ज करता चलता है। समय अपनी सर्वकालिक सत्ता में सबको सहचर बनाये रखता है। परिवर्तनों का प्रेरक है समय, तो परिवर्तनों का प्रेषक भी समय ही होता है।

हमें जिज्ञासा थी कि विगत पचास साठ सालों में हरदा से बाहर चले गये हमारे

अग्रजों की स्मृतियों में रह रह कर हरदा क्यों हरिया जाता है ? क्यों नव अंकुरित कोपलों की तरह हो जाता है उनका मन। वे बार बार क्यों भावुक हो उठते हैं, कड़वी मीठी स्मृतियों के बीच हरदा हरदम उन्हें क्यों लालायित करता है। वे क्यों लौट पड़ते हैं, भावना के स्तर पर ही सही, हरदा की यात्रा पर एक सम्मोहन की तरह बार-बार आखिर क्यों ?

पत्राचार के पहले संकोच था। शंकायें थी कि हमारे प्रयास को वह पीढ़ी कैसे लेगी, जिन्होंने हरदा को जिया और शोहरत के शिखर तक की यात्रा की। हरदा को छोड़े इतने वर्षों बाद, क्या वे लौटना पंसद करेंगे अतीत की पगडंडियों पर ?

यादें कच्ची दीवारों के पोपड़ों की तरह होती हैं जो मौसम की नमी व ताप पाकर भरभराने लगती हैं। पुराने वृक्षों के छिलपों की तरह हैं, जो समय के साथ वृक्षों पर लगी तो दिखती हैं पर बेजान हो जाती है। इस पुस्तक के माध्यम से हमने पपड़ा गई जमीन पर कुदाल चलाने का प्रयास किया है, हमनें स्मृति के अंगारों से विस्मृति की राख हटाने की कोशिश की। हमारा यह प्रयास अपने ही आंगन की महक को महसूस करने का है।

पत्राचार के बाद जिस प्रयोजन से हम इस कार्य में जुटे थे वह अंकुराने लगा । हमें रोज रोज ही नई बहार देखने को मिली, नया उत्साह मिला, फोन और पत्रों के माध्यम से जो आरंभिक प्रतिक्रियायें मिली उससे हृदयस्पर्शी संबल मिला। लगा अब तो हर हाल में यह काम होकर ही रहेगा। हमारा पत्र मिलते ही सबसे पहले इन्दौर से मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग की पूर्व सदस्य *श्रीमती रेहाना निजाम ने कहा, ज्ञानेश भाई मुझे नहीं मालूम था कि, इतने दिन बाद हमें हरदा में कोई इस रूप में भी याद करेगा ? मैं लेख भेज रही हूँ, मेरा मायका भी खेड़ीपुरा में ही है।*

भोपाल से श्री विष्णु राजोरिया ने पत्र पाते ही बताया, *ज्ञानेश तुम्हारा पत्र आज ही मिला एक सप्ताह बाद... मैं मूड बनाता हूँ, मातृभूमि पर लिखना, किसे अच्छा नहीं लगेगा।* इन्दौर से दादा श्री कृष्णकान्त निलोसे ने फोन पर बताया, *मैंने आज लिखना शुरू कर दिया है। तुमने हमें हमारा अतीत लौटा दिया है। बहुत मुश्किल होता है, स्मृतियों के महासागर में जाकर वापस लौटना.. ज्ञानेश, तुमने हमें झकझोर दिया है।* बाल सखा, बिजू जॉन ने कहा यार हरदा हमारा शहर है, हरदा ने हमे बहुत दिया है, मैं हरदा में दादी की याद में चैरिटी अस्पताल खोलना चाहता हूँ, जिसमें गरीबों का शोषण न हो। इन्दौर से सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा. गोकुलदास ने मार्च २०१० को अपने ७५ वर्ष पूर्ण कर, जन्म दिवस पर प्रकाशित वह पूरी पुस्तिका ही भेज दी, जिसमें हरदा लगभग हर पृष्ठ पर मौजूद है। उन्होंने कहा *इन्दौर आ जाओ और बात कर लेंगे, (यू आर एनी टाईम मोस्ट वेलकम)*। हरियाणा के अंबाला छावनी में कहानी माहविद्यालय की संचालक व कहानीकार, श्रीमती उर्मि कृष्ण ने अपनी

नियमित मासिक पत्रिका ***शुभतारिका*** के दिसम्बर २०१० के संपादकीय में लिखा, *मुझे हरदा से एक पत्र मिला है, आप हरदा की हैं उर्मि दीदी... हम हरदा पर एक पुस्तक प्रकाशित करने जा रहे हैं*। इस पुस्तक में उनकी स्मृतियों को संजोया जायेगा । जिनकी जड़ें हरदा में हैं। पत्र पढ़ते ही मैं हरदा की गलियों में ऐसे दौड़ने लगी जैसे कल, की ही तो बात है, वे उम्र के वे दिन थे जब मन कोरी स्लेट की तरह होता है निर्मल, निश्छल, काश वे उन गलियों में न छूटते। हरदा मेरा जन्म स्थान है, उस छोटे से शहर के साथ पूरा मध्य प्रदेश लिपटा है।

मन के मृगछोने जब कुलांचे भरते हैं, तो समय की रफ्तार भी धीमी पड़ जाती है। इन प्रारंभिक प्रतिक्रियाओं से मेरा हौसला बढ़ा और लगा कि एक ठीक काम हाथ में लिया है। कुछ आलेख ललित निबंध थे, तो कुछ पत्रों के रूप में, कुछ पद्य में थे, कुछ गहरे चिंतन व चिंता से भरे। अपने संस्मरणों में सभी ने खूब लिखा है, और इनके वक्त का हरदा जीवन्त हो उठा। हमें लगा कि हमनें तो एक तार छुआ फिर मन के तार ऐसे झंकृत हुए कि **राग हरदा,** रच गया। रचता भी क्यों नही वे कितने कुशल साधक हैं। सिद्ध साधना से जन्में शब्द, वह सब कुछ कह गये जो शब्दों में कहना संभव ही नहीं होता। स्मृतियों की संदूक खुली और सारे संस्मरण उन्होंने हमें सौंप दिये। मुझे लगा जैसे पके फलों से लदे वृक्ष को हमने हिला दिया हो। हिला दिया हो, आंगन में लगा हर सिंगार जो झरकर फूलों से पूरा आंगन, भर गया। मन ऐसी ही सुगंध व सौन्दर्य के लिये तो लालायित रहता है। मुझे लगा हमारा प्रयास तो हवा का एक झोंका भर था जो यादों की डायरी के पृष्ठों को फड़ फड़ाकर पलटता चला गया, कई वर्ष पीछे तक। जैसे अग्रजों की स्मृतियों की डायरी के पन्ने, ऐसे ही किसी झोंके की तलाश में थे..यह प्रयास उन फलों के रस लेने का है जो बीज रूप में कहीं पड़े थे। उनके अंकुरित होकर पुनः फलदार हो जाने की यात्रा के हम साक्षी बने। हमें लगा जैसे बुजुर्गों की गोद में खेल रहे किसी शिशु की तरह, हमने उन्हें अचानक गुद-गुदा दिया और वे किलक उठे हों। सब लौट गये अपने अपने अतीत में और समय की सीपियों में बन्द स्मृतियों को खोजने मे लग गये। लगभग हर दिन हमारे इन अग्रजों का कोई न कोई मेल, फोन या पत्र आते, बात होती और हम आश्वस्त बने रहे कि हमारा अभियान ठीक दिशा में जा रहा है। वे सारे परिवर्तन हरदा में भी हो रहे हैं जो समय अपने साथ लेकर आया है। ये परिवर्तन आवश्यक भी हैं। परिवर्तन की परिस्थितियों में पुरानी पड़ रही पुस्तक को पढ़ने लायक बचाये रखने के लिये आवश्यक है कि इबारत बची रहे। हरदा के अतीत के देश विदेश में बिखरे स्मृति पृष्ठों, को संग्रहित और सुरक्षित कर देने में हम कितने सफल रहे, इसका मूल्यांकन आप करेंगे, समय करेगा।

वास्तव में जिस हरदा में हम हैं वह कथित विकास की दौड़ में आगे बढ़ रहा है,

परिवर्तन ने उसे भी प्रभावित किया है। मैं अपने अग्रजवत डा. ओ.पी. बिल्लौरे इन्दौर को कैसे बताऊँ कि आपकी *टोन्ढाल* (टाऊन हाल) अब सुन्दर शहीद गैलरी वाली आकर्षक इमारत बन गई है, पार्क के दिन फिर गये हैं, *नद्दी* (अजनाल) अपनी देह मे सिमट रही है, बल्कि बीमार भी है। चिन्दरा इमली अब संसार में नही है। *पपिंजन* अब प्यास नही बुझा पाता, हरदा बड़ा हो गया है। इसलिए उसकी शिरायें भी बड़ी हो गई हैं, अब हण्डिया का नर्मदा जल हरदा की जल पूर्ति कर रहा है। *कचेरी* अब कलेक्टरेट हो गई है। भैया प्रफुल्ल निलोसे (मुंबई)को कैसे बताऊं कि *रामप्रसाद व बाबू तांगे* वाले के बेटे अब ऑटो रिक्शा चलाते हैं । *टिरुरु तांगे* वाला बीमार है, *नसरू चाचा* के घोड़े शादी और दूल्हे का इंतजार करते हैं। *आम लील्यो आम* की आवाज, अब अतीत की बात हो गई है। देशी आम ढूंढने पर मुश्किल से ही मिलते हैं। नई पीढ़ी ने तो उनका स्वाद तक नही चखा, अब घरों में *अमरस* की जगह मेंगो ज्यूस बनने लगा है। नदी किनारे का आम बाजार लोग भूलते जा रहे हैं। वहां की लायब्रेरी, कचहरी के पास चली गई है। जिसमें बच्चे किताबों की जगह कम्प्यूटर स्क्रीन पर आँख गढ़ाये दिखाई देते हैं। भोपाल के पूर्व महापौर, मधु दादा अब अजनाल *मगड्डों* पर कोई नहाने नहीं जाता। नदी पर नहाने का प्रचलन ही समाप्त हो गया है। अब सड़कों पर *पंगत* लगभग समाप्त हो रही है। *खांखरे की पत्तल* देखे वर्षों हो गये, नये बच्चे *नुक्ती* खाना पसंद नहीं करते। कई तो उसका स्वाद भी नही जानते। दादा कृष्णकांत निलोसे, अब खेड़ीपुरा के *हलवाई जी की गुड़पट्टी* आपको हरदा आने पर हम नही खिला पायेंगे, पचास साल में आपको इन्दौर सराफा की गुलाब-जामुन से मोह बना लेना था।

प्राप्त आलेखों से तत्कालीन हरदा के विषय में कई रोचक जानकारियां मिलती हैं। हरदा स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की सक्रियता के कारण गांधी जीवन व गांधी दर्शन से प्रभावित था। सफाई कामगारों की हड़ताल के समय पखानों की सफाई एक गांधीवादी कर्म ही तो था, जिसमें शरीक हुए छात्र, युवक व नेता। हरदा में गजब की पारिवारिकता थी। सब एक दूसरे को जानते थे। महिलाओं के प्रति आदर भाव था। बाजार में बतियाते समूह, किसी महिला को देखकर न सिर्फ चुप हो जाते बल्कि उन्हें सम्मान से रास्ता दे देते थे। बड़ा मंदिर चौक प्रवचनों, रामलीला, रासलीला सहित धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र था। तत्कालीन बड़ा मंदिर का क्षेत्र हलवाई चौक भी कहा जाता है। सीतारामजी हलवाई के यहां लोटा लेकर दूध लेने जानें, उनकी जलेबी के स्वाद, लक्ष्मीनारायणजी हलवाई की कचोरी की लोकप्रियता व उनके अनुशासन का जिक्र भी इन आलेखों में समाहित है। स्वाद में शैतान की कुल्फी व *चतरू* के पेड़े खूब याद किये गये। याद किये गये कामरेड रामेश्वर जोशी के समोसे। आज की फरहत सराय के पीछे वाला लाल स्कूल तब मानपुरा प्रायमरी स्कूल था। मिडिल स्कूल ग्राउंड तब भी साहित्यिक आयोजनों व खेल गतिविधियों का केन्द्र हुआ करता था। नागपंचमी पर शुरू दंगल का सिलसिला, प्राय: सभी त्यौहारों पर चलता रहता था।

शिक्षकों के प्रति समाज व छात्रों में अद्‌भुत आदरभाव था। तब के सरकारी स्कूल आज के बड़े नाम वाले स्कूलों से कम नहीं थे। छात्रों के सर्वांगीण विकास की तरफ सभी शिक्षकों का ध्यान रहता था। शिक्षक सादगी व अनुशासन की प्रतिमूर्ति थे। मराठी भाषी लोगों की संख्या प्रभावी थी इसलिए मराठी छात्रों के लिये अलग मराठी प्रायमरी स्कूल था। जिन शिक्षकों को इन अग्रजों ने स्मरण किया वे समर्पित, सादगी पसंद व अनुशासन प्रिय थे। स्व. एन.पी. तिवारी, रामभाऊजी शास्त्री, श्री वी.के. तिवारी, श्री गोपीकृष्ण जोशी, जोशी दद्दा, जाकिर अली सहित स्व. बाबूलाल मित्तल जो हरदा में निजी कोचिंग क्लासेस के जनक थे बहुत आदर से याद किये गये। शिक्षकों के लिए समर्पण पहली शर्त थी, तो छात्रों के लिए अनुशासन पहला आचरण, इस पीढ़ी ने महाविद्यालयीन उच्च शिक्षा की हरदा में व्यवस्था न होने की वजह से रोजगार-नौकरी की तलाश में हरदा छोड़ा। इनमें वे लोग शामिल हैं, जिनकी नाभि-नाल हरदा में गड़ी है, जो हरदा में जन्में, कुछ नाम उनके भी जो हैं किसी अन्य शहर से हरदा आये, हरदा को अपनी नजरों से देखा। वे कुछ समय हरदा में रहे पर उन्होंने हरदा को खूब समझा, खूब जिया। इनमें एकलव्य से संबंधित सुश्री अंजलि नरोन्हा, डा. अनवर जाफरी व डा. लाल्टू , कैरन हैडॉक, प्रमुख हैं जिनकी शिक्षा रूस व अमेरिका में हुई पर इन्होंने हरदा में जैसी बौद्धिक और वैज्ञानिक चेतना फैलाने का काम किया वह अनुपम है। इन्होंने सरलता, सादगी और सक्रियता से नगर में एक नई संस्कृति को जन्म दिया। शिक्षा के नवाचार को इन्होंने नये आयाम दिये। ये उच्च शिक्षित और प्रखर बौद्धिक लोग थे। इन्हीं के सानिध्य में हम किताबों से जुड़े, **संभावना** नाम का साप्ताहिक सायक्लोस्टाइल पत्र निकाला, और इससे जुड़े लोगों ने मिलकर बाद में **संभावना विचार मंच** की स्थापना की जो आज भी सक्रिय है। सफदर हाशमी की हत्या, हरिशंकर परसाई की मृत्यु पर श्रद्धांजली सभा हमें आज भी याद है। देशभर के नुक्कड़ ग्रुप इसी दौर में हरदा आये। उर्दू शायरों के साथ नियमित बैठकें हुईं, और एकलव्य लायब्रेरी ने नगर में पढ़ने पढ़ाने का वातावरण बनाया, जिसमें सुश्री वीणा भाटिया, बच्चों के समूह में उनकी जिज्ञासा शांत करती दिख जातीं तो डा. कैरन टूटी-फूटी हिन्दी में चित्रकारी की बारीकियां समझाती बच्चों को चित्र बनाना सिखाती रहती।

लेखकों ने हरदा की होली और डोलग्यारस को खूब याद किया । साथ ही याद किया है, नारायण टाकीज वाले हरनारायण मामा को जो शिवशंकर का श्रृंगार कर इस डोलग्यारस जुलूस का आकर्षण हुआ करते थे। डोलों में तब भी गोलापुरा का डोल-अग्रणी हुआ करता था। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के त्यौहारों को मिलकर मनाते थे। दोनों धर्म के लोगों का नगर में अद्‌भुत सामंजस्य था। हिन्दू-मुस्लिम एकता की बुनियाद को जिन लोगों ने शिद्दत से मजबूत किया उनमें, श्री चंपालाल सोकल, हाजी बाबा और मुमताज अली वकील प्रमुख हैं। एडवोकेट मुमताज अली, शांतिनिकेतन में भी पढ़े और गीता-रामायण

तक का गहन अध्ययन किया। इन्हीं लोगों के कारण हरदा गंगा-जमुनी तहजीब का शहर बना है। नगर सेठ श्री एकनाथ अग्रवाल का सरस्वती साहित्य सरोवर, लक्ष्मीकिशोर वाजपेयी का दिग्दर्शन, हिन्दी-ऊर्दूअदबी संगम जैसी स्थानीय संस्थाओं ने साहित्यिक गोष्ठियों व आयोजनों को नियमित रूप से आयोजित किया। स्व. शिवशंकर वशिष्ठ, बसंत पंचमी पर निराला जयंती मनाकर प्रतिवर्ष कवि गोष्ठी व विचार गोष्ठियां आयोजित करते रहे। ईनायतउल्ला बेनाम की फरहत सराय वाली टेलरिंग की दुकान, आज तक उर्दू ग़ज़ल सीखनें-कहनें वाले लोगों का गुरूकुल बनी हुई है और ईन्ना-मास्टर हरदा के उस्ताद शायर। १९४७ में आज़ादी के पहले भी तिलक जयंती, तुलसी जयंती, हाईस्कूल में निरंतर मनती रही जिसमें पं. भागवत प्रसाद गंगेले जैसे शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। हरदा जनसंख्या की दृष्टि से चाहे छोटा शहर रहा हो पर साहित्यिक गतिविधियां और स्वतंत्रता आंदोलन यहाँ सक्रियता से चलता रहा।

प्राप्त आलेखों में हरदा का घंटाघर, भूमिगत ड्रेनेज सिस्टम, गुप्तेश्वर, पपिंजन, अजनाल नदी, चिन्दरा इमली, मुल्लाजी का नाला प्रमुख रूप से रेखांकित होकर आये हैं। स्व. हरीश व श्याम पेंटर को कलाकारों के रूप में बहुत स्मरण किया गया है। अपनी ही देह में समय के साथ सिमटती जा रही अजनाल, उस पीढ़ी की स्मृतियों में एक निर्मल-नदी है। डा. गोकुलदास, डा. नारायण गार्गव, दादा कृष्णकांत निलोसे, अरूण गवई, दिनकर शुक्ला, डा. हरि जोशी, प्रफुल्ल भैया निलोसे, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, प्रो. मधु गार्गव, डा. सतीश जैन, डा. जिया हुसैन कहाँ भूल पाये हैं अजनाल को एक नदी के रूप में। अजनाल आज भी उनकी स्मृतियों में कल-कल बह रही है, उसी बीत गये कल की तरह वैसी ही निर्मल।

स्व. शांतारामजी नाईक (काका) का आदर्श बालक मंदिर नगर में खेलकूद की नियमित गतिविधियों का केन्द्र था। हॉकी के कुशल खिलाड़ी काका, कचहरी के सामने लंबे समय तक सारे देशी विदेशी खेलों के लिए सक्रिय बने रहे और सक्रिय बने रहे बालकृष्ण अग्निहोत्री बालक विकास मंदिर (बी.व्ही.एम.) की बौद्धिक-शारीरिक गतिविधियां संचालित करते हुए। कुश्ती के दंगल हरदा की व्यायाम प्रियता के उदाहरण थे, तो कबड्डी यहाँ का प्रमुख खेल। आज की कबड्डी का बोनस नियम पहली बार हरदा में ही दाना बाबा गोल्ड कप टूर्नामेंट में लागू हुआ, श्री शिवराज सिंह वर्मा ने इसके लिये यादगार प्रयास किया ।

कामरेड लच्छू कप्तान का अवदान, हरदा के जन-जन की स्मृतियों में था। अभाव व संकट के व्यक्तिगत कष्टों के बाद भी, लच्छू कप्तान हरदा के आम आदमी की आवाज बने रहे। वे संघर्ष के पर्याय थे। लच्छू कप्तान की हड़ताल, उनकी बेदाग छवि, उनका जन-संघर्ष और दिग्गजों को परास्त करते हुए, नगरपालिका चुनाव में उनकी एकतरफा जीत, उनके

अद्भुत व्यक्तित्व के साथ-साथ उनकी लोकप्रियता की परिचायक है। इतिहास में कामरेड की सक्रियता दर्ज होना चाहिए।

पूरी दुनिया में परिवर्तन की बयार चल रही है । जग प्रगति के साथ हमकदम हो रहा है। फिर हरदा अछूता क्यों रहे ? उन्नत उपकरणों से कृषि का विकास, औद्योगिक विकास की अपार संभावनायें, युवाओं की मेधा, मजदूरों का श्रम, किसानों की कड़ी मेहनत, सब मिलकर हरदा की पहचान बनें। अभाव, असमानता और अलगाव से यह नगर मुक्त रहे, इस मिट्टी के प्रति हमारा मोह बना रहे, बने रहें जुड़ाव ,आत्मीय संबंध । रिश्तों और व्यवहार पर औपचारिकता के आवरण न चढ़ सकें। हरदा की ईद दीवाली पर सबके गले और दिल मिले रहें । होली पर हुड़दंग का रंग न हो, आत्मीयता की परंपरा शाश्वत बनी रहे। हरदा के पुराने मोहल्ले खेड़ीपुरा के गाडरी मंदिर में श्रावण में डंडे व फाल्गुन में घेराबाजी के स्वर ,श्री मोहनसिंह चौहान की आल्हा का गान फिर से तेज हो, भुजरिया व शिवरात्रि पर अजनाल के घाट जीवंत बने रहें, जीवंत रहे यहां का ग्रामीण मन ताकि अपनत्व व भाई चारा कहीं प्रभावित न हो।

पुस्तक प्रकाशन का यह प्रयास शुरूआत में जरुर कुछ हाथ में था, पर बाद में जिस उत्साह से लोग इसमें सक्रिय हुए उससे तो यही लगता है कि ज्ञानेश चौबे मात्र निमित्त संपादक है असल संपादक तो हैं मित्र और हरदा के शुभचिंतक। यह अभियान सबका हो गया। इदं न मम् । श्री मदनमोहन जोशी हरदा के संस्मरणों पर हमसे एक लंबी बातचीत के लिए मन बनाए हुए थे। ताकि उनकी स्मृतियों में दर्ज हरदा विस्तार से अंकित हो सके। यह एक उत्तम सुझाव था, पर हम ऐसा नहीं कर सके और अनेक जानकारियों से वंचित रहे। इसी तरह श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय से हम एक अलग लेख की आकांक्षा रखते थे। उन्होंने लेख प्रारंभ भी कर दिया था, पर परिजनों की अस्वस्थता के कारण वे ऐसा नहीं कर सके। अत: दोनों के उपलब्ध श्रेष्ठ लेख इस पुस्तक में शामिल हैं।

जब अमेरिका से अभय कासलीवालजी ने इस अभियान में बहनों को ज्यादा संख्या में जोड़ने का सुझाव दिया तो हमनें इसे खुले मन से स्वीकार किया। हरदा की मेधा ने जो विस्तार पाया है वह पूरा इस पुस्तक में समेट पाना संभव भी नहीं है। यह तो एक बानगी भर है । हमारी अपनी विवशतायें व सीमायें हैं। जो कुछ कहा गया उससे ज्यादा अन कहा रह गया। जितना लिखा उससे ज्यादा बचा रह गया । जो लोग सम्मिलित हैं, उससे ज्यादा छूट गये होगें। इस पुस्तक में जो कुछ सकारात्मक और प्रशंसनीय है, वह हरदा की उर्वरा माटी को समर्पित है । हरदा की युवा-पीढ़ी आज देश-विदेश में उल्लेखनीय ढंग से सक्रिय है। उसकी मेधा को प्रोत्साहन आवश्यक है वे विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं , उन्हें हम गर्व से याद

करते हैं। वे इस कस्बाई नगर की पहचान बनें और हरदा का नाम गौरवान्वित करते रहें। जिनसे लिखने के लिए निवेदन किया गया उनमें से एकाधिक लोग ही बचे जो नहीं लिख सके, उनकी अपनी *कुछ तो मजबूरियाँ रही होंगी, वर्ना कोई यूं ही ....*

इन्दौर से दोनों भतीजे अंकित और अंशुल तो हरदा में शरद की बिटिया नेहा और नुपुर लगातार पुस्तक के प्रकाशन के लिए जिज्ञासु रहे हैं । उनकी जिज्ञासा ने मुझे उत्साह के साथ काम में लगाया। आज 28 अप्रैल है बाबूजी (स्व. एन. पी. चौबे) को गये 8 साल हो गये उनकी पुण्यतिथि पर यह काम पूर्ण हो रहा है । श्रीमती प्रतिभा चौबे ने इस बीच सारे गृहस्तिक दायित्व का दुगना भार अपने ऊपर ले लिया उनकी इस भारशीलता के कारण ही यह पुस्तक तैयार हो सकी है अन्यथा यह कतई संभव नहीं था । उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने से उनका मान कम ही होगा । इस काम में जो कुछ उमदा है वह लेखकों का मित्रों का शुभचिंतकों का है और जो कुछ छूटा है वह मेरा अपना है । कोई काम समग्र नही होता । विगत कामों से ही अगले की नींव पड़ती है । कोई इसे नींव बनाकर नई इमारत और नई इबारत गढ़ेगा उसके प्रति हमारी शुभकामनाएँ हरदा को देश विदेश में पहचान दिलाने वाले यशस्वी कवि श्री माणिक वर्मा के शब्दों में-

मुझसे जो भी बन पड़ा, मैनें किया
मुझसे बेहतर जो बनें, वो तुम करो।

-ज्ञानेश चौबे

मैं हरदा में, हरदा मुझमें बसा हुआ है

मदनमोहन जोशी

"अगर मेहर-ओ उल्फत की जन्नत कहीं है तो यहीं है यहीं है, बहुत खुशनुमा शहर देखे हैं, मैनें मगर तेरा जादू कहीं भी नहीं है"। किसी शायर की अपने शहर के बारे में लिखी गई ये पंक्तियां हरदा पर भी बखूबी लागू होती हैं। जिंदगी में एक से बढ़कर एक शहर देखें हैं, माया लोक को मात देने वाली रंगीनियां देखी हैं, मगर हरदा जैसा जज़्बा और जलवा कहीं नहीं दिखा। छोटा शहर होने के बावजूद इसने स्वाधीनता आंदोलन से लेकर अब तक राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का लगातार जबरदस्त प्रदर्शन किया है और बेहद जीवंत व जागरूक शहर की पहचान बनाई है। जिस शहर की खुद महात्मा गांधी ने सराहना की हो वह सब कुछ हो सकता है एक औसत शहर हर्गिज नहीं हो सकता।

यह हस्तियों और मस्तियों का, हुंकारों और हिलोरों का, अल्हड़ अठखेलियों और अबूझ पहेलियों का एक ऐसा शहर रहा है जिसकी अपनी एक अलग शख्सियत है। किसी अन्य शहर से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। सच पूछा जाए तो हरदा महज एक बस्ती नहीं है, एक ब्रांड है। जो भी हरदा में पैदा हुआ, पढ़ा-बढ़ा उसमें आपको प्राय: एक ऐसी अदा, एक ऐसी रंगत दिखाई देगी कि आप भीड़ में भी उसे पहचान सकते हैं। यह बात भोपाल में बड़े से बड़े पद पर आरूढ़ हरदावासी से लेकर न्यू मार्केट में जूते चमकाने वाले मोचियों तक लागू होती है। यहां हरदा के इतने सारे लोग आ बसे हैं कि अगर भोपाल में इनका कोई स्नेह सम्मेलन आयोजित किया जाए तो किसी भवन या पार्क को नहीं, लाल परेड मैदान को इसके लिए चुनना होगा। पहले भोपाल जर्दा, पर्दा और नामर्दा का शहर कहा जाता था। पिछले कुछ वर्षों से इसमें हरदा भी जुड़ गया है। इतने सारे हरदावालों को

अपने बीच पाकर मुझे लगता है जैसे अब भी हरदा में ही बस रहा हूँ और हरदा मानों मेरी अंतश्चेतना का आज भी अंतरंग अंग बना हुआ है। आदमी की फितरत ही कुछ ऐसी है कि जिसे भी वह शिद्दत के साथ जी लेता है वह उसके अंतर्मन में स्थायी जगह बना लेता है। रसखान ने तो कृष्ण की लीलाओं के गीत गाते हुए हर उस पेड़ और पत्थर पर भक्ति रस की अमृत बूंद छिड़क दी जिनका उनके आराध्य देव ने स्पर्श किया था। कमोवेश ऐसी ही रागात्मकता, ऐसी ही रसानुभूति के लम्हें जीवन में उस समय सहज रूप से सजीव हो जाते हैं जब आप अपने अतीत के सुनहरे एवं आत्मीय पन्नों को पलटते हैं। घर के आंगन से लेकर स्कूल के प्रांगण तक खुशबू के शिलालेख कुछ इस कदर फैले हुए हैं कि उनके बारे में लिखना तो दूर , स्मरण मात्र आह्लादकारी अनहद का अहसास देता है।

पांचवे दशक के आते आते हरदा के तार भोपाल से जुड़ने लगे थे। हरदा से भोपाल के लिए महाभिनिष्क्रमण का दौर शुरू हो गया। मेरे बड़े भाई ब्रजमोहन उन इने-गिने लोगों में से थे जिन्होंने शुरूआती जत्थों की अगुवाई की थी। जैसे ही स्वाधीन भारत में भोपाल रियासत का विलीनीकरण हुआ, उसे पार्ट-सी राज्य का दर्जा मिला वैसे ही वहां रोजगारों का भदभदा खुल गया। ब्रजमोहन भाई की नियुक्ति शिक्षा विभाग में हुई और वह भी ऐसी शाखा में जहां से शिक्षकों की नियुक्ति होती थी। बस फिर क्या था, हरदा से लेकर होशंगाबाद तक भोपाल चलो का नारा गूंजने लगा। देखते देखते शहरों में ही नहीं बल्कि गांवों में भी हर दूसरी नियुक्ति प्रायः हरदावासी या होशंगाबादी के खाते में दर्ज हो गई। कमोवेश यही नजारा छोटे बड़े हर दफ्तर में भी दिखाई देने लगा। जिस ओर निगाहें जाती हैं, उसके ही दर्शन पाती हैं, संपूर्ण दिशाएं सुखशाली उसका ही गौरव गाती हैं। ये पंक्तियां मानों चरितार्थ हो उठीं। हरदा के पास के गांव के एक निवासी पी. सी. शर्मा विधायक तक चुन लिये गये। हरदा में शिक्षा दीक्षा पाने वाले सैकड़ों चेहरों ने न सिर्फ देश के विभिन्न स्थानों में बल्कि विदेशों में भी अपनी प्रतिभा का परचम फहराया है और अपने शहर का नाम रोशन किया है। यदि इसका विस्तृत सर्वेक्षण कराया जाए तो पता लगेगा कि यहां की मिट्टी एक ओर जहां सोना उगलती है वहीं दूसरी ओर वह रत्नगर्भा भी है। अगर हम इसमें पूर्ववर्ती होशंगाबाद जिले को शामिल कर लें और नई व पुरानी पीढ़ियों की तमाम हस्तियों की फेहरिस्त तैयार करें तो पाएंगें कि मध्यप्रदेश का कोई जिला प्रतिभाओं के मामले में हमारे मुकाबले खड़ा नहीं हो सकता। साहित्य, कला संस्कृति का क्षेत्र हो या सार्वजनिक जीवन, न्याय का क्षेत्र हो प्रशासन, शिक्षा हो या स्वास्थ्य, हर क्षेत्र में दसों दिशाओं में इसने दुंदुभी बजायी है। शायद नर्मदा के पुण्य प्रताप से ही यह संभव हो सकता है जिसके दर्शन मात्र से दुख और दारिद्र दूर हो जाता है।

हम तो अपने बचपन में हर दस-पन्द्रह दिनों में बाल सखाओं के साथ नर्मदा स्नान एवं सिद्धेश्वर मंदिर में दर्शन करने हंडिया पैदल ही रवाना हो जाते थे। अजनाल से लेकर

नर्मदा तक कोई नहीं, कोई उपत्यका, कोई पुरातत्व स्थल ऐसा नहीं था जिसकी हमने खाक न छानी हो। बाल सखाओं के साथ जिस तरह की मौज मस्ती होती थी उसकी तुलना केवल भगवती चरण वर्मा की इन पंक्तियों से ही की जा सकती है - हम दीवानों की क्या हस्ती, है आज यहां कल वहां चलें, मस्ती का आलम जहां चला हम धूल उड़ाते वहां चले। नर्मदा का कलकल नाद जहां जीवन की जय तथा असीम उल्लास का संदेश देता है वहीं वह एक चेतावनी भी देता है। नर्मदा की रेत पांव के नीचे से इस कदर फिसलती है कि जरा भी चूक हो जाए तो जिंदगी से हाथ धोना पड़ सकता है। इस तरह वह जीवन में सतर्कता का पाठ पढ़ाती है। मैंने बचपन में ही यह सबक सीख लिया था जो जिंदगी भर काम आया।

मेरी मां मुझे गोदी में बैठाकर रामायण पाठ करती थीं। इसीलिये दूसरी क्लास में रामायण पढ़ने लगा था, वह भी सस्वर। मोहल्ले की कई महिलाएं इस मौके पर मौजूद रहती थीं। एक दिन एक पड़ोसन नहीं आई तो मां, जिन्हें हम सब भाई, बाई कहते थे, मुझसे बोलीं, उसे बुला लाओ। मैंने उनके घर जाने के लिए आंगन की दीवार फांदी तो पाया जहां से छलांग भरी थी, वहां एक काला नाग फन फैलाये हुए है। डर के मारे थर थर कांपता वापस पहुंचा तथा वह वाकया बताया तो कुछ महिलाएं पुचकारते हुए बोल उठीं, - अरे डर मत, वह तो तेरी रामायण सुनने आया था। जो भी हो मगर इतना तय है कि रामायण के पाठ से ही मेरी रचनाधर्मिता की शुरूआत कुछ इस तरह हुई कि एक एक कर और कभी कभी तो एक साथ कई क्षितिजों पर छलांग लगाई। हमारा मोहल्ला गोलापुरा अपने बाहुबल के लिए काफी मशहूर था। उसका सारे शहर में दबदबा था। तब हरेक मोहल्ले में रामायण मंडली हुआ करती थी तथा उनमें प्रतिष्ठादायी स्पर्धाएं होती थीं। मंडलियां इनमें भाग लेने के लिए सदलबल पहुंचती थीं। वे एक प्रकार के अक्षर-अखाड़े थे जो लंका कांड रचने के लिए अधिक और रामायण पाठ के लिए कम जाने जाते थे। मैं और मेरे अग्रज ब्रजमोहन हमारे मोहल्ले की मंडली के सिरमौर थे। हमारे रामायण पाठ को काफी सराहा जाता था और दूर दूर से बुलावे आते थे। मोहल्लेवालों के इतने लाड़ले थे कि अगर कोई जरा भी गुस्ताखी करने की जुर्रत करता तो मंडली उस पर टूट पड़ती थी। इस किस्म की आक्रामकता इस मोहल्ले के मिजाज का हिस्सा शायद इसलिये बन गई थी क्योंकि यहां बसे अधिकांश परिवार सदियों पहले भिंड-मुरैना से आये थे, जिन्होने रक्त में उबाल पैदा करने वाला चम्बल का पानी पिया था। सोचता हूं आज के माफियावाद की तुलना में यह माफियावाद कितना माधुर्यमय, कितना मासूमियत भरा था। हरदा की एक बड़ी विशेषता यह है कि यहां निमाड़, मालवा और बुंदेलखण्ड तीनों अंचल की संस्कृतियों की झलक देखने को मिलती है।

हरदा में मेरा बचपन इतनी दिलचस्प दृश्यावलियों के बीच बीता कि हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का शीर्षक, क्या भूलूं क्या याद करूं, जैसी उलझन उसके संबंध में

लिखते वक्त मुंह बायें खड़ी हो जाती है। शरारतें और शोखियां तो बचपन का पर्याय है। मगर हमारी मित्र मंडली शरारतों के साथ ही अपनी सूझों के लिए भी जानी जाती थी। मसलन, मिडिल स्कूल और हाईस्कूल दोनों में स्नेह सम्मेलन की शुरूआत हमनें की और इस तरह मेज, मंच और मैदान तीनों ही जगह अलख जगाई। सारा शहर स्कूल के कार्यक्रमों से जुड़ता था तथा वाहवाही से हमारी झोली भर देता था। हमारा सखा संप्रदाय काफी सुगठित था। स्कूल की हस्तलिखित पत्रिका भी पहली बार हमने निकाली थी। जब मैं इसका संपादक बना तो क्या पता था कि आगे भी जीवन में संपादकी ही करनी है। इन तमाम गतिविधियों में शिक्षक पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाते थे। बाकी सब छात्रों पर छोड़ देते थे। मुझे तराशने में शिक्षकों नें खासतौर से दिलचस्पी ली। आज जो भी हूं उसका काफी श्रेय मेरे शिक्षकों को जाता है। ये मात्र शिक्षक नहीं बल्कि शहर की प्रबुद्धता और प्रखरता की पहचान भी थे। हरेक का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व था। जोशी दद्दा श्रद्धास्पद आतंक के प्रतीक थे तो दुलीचंद शर्मा मीठी डांट के लिए मशहूर थे। उधर रामभाऊ शास्त्री पढ़ाते वक्त मंत्र मुग्ध कर देते थे। गोपीकृष्ण जोशी और विजय कुमार तिवारी (वी. के. टी.) सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रणेता थे। क्लास के भीतर जितना मनायोग पूर्वक पढ़ाते थे क्लास के बाहर विद्यार्थियों के साथ उतनी ही बेतकल्लुफी के साथ घुल मिल जाते थे। यह एक सनातन पेशेवर सच्चाई है कि अपने काम की छाप वे ही लोग छोड़ पाते हैं जो मौलिक शैली अपनाते हैं। हमारे समय के अधिकांश शिक्षक इसी श्रेणी में आते हैं।

राजनीतिक हलचलों की धूमधाम और गहमागहमी हमारे समय में भी कम नहीं थी। आमसभाओं में काफी हुजूम उमड़ता था। श्रोताओं को यहां तक कि असहमति रखने वालों को भी प्रश्न पूछने की छूट थी। मैंने अपने जीवन में संवाद की ऐसी संस्कृति और कहीं नहीं देखी। हरदा ने प्रो. महेशदत्त मिश्र से लेकर श्री कमल पटेल तक राजनीति का लम्बा सफर तय किया है। कई उतार चढ़ाव देखे हैं, दिशाएं और आस्थाएं बदली हैं। कई चेहरे आये और ओझल हो गये। मगर मेरी चेतना पर आज भी एक नाम हावी है और वह है लच्छू कप्तान। जब देश के ज्यादातर लोग कम्यूनिस्ट पार्टी से वाकिफ नहीं थे, साम्यवाद किस चिड़िया का नाम है, इसका पता नहीं था, उस समय हरदा में लच्छू कप्तान ने लाल झंडा शान से फहराया। तमाम विरोध के बावजूद एक नगर सेठ को हराकर नगर पालिका अध्यक्ष निर्वाचित होकर तहलका मचा दिया। सफाई कर्मियों को अपने झंडे के नीचे इस कदर एकजुट किया कि जब रूतबा दिखाना होता था, स्थापित नेताओं को सताना होता था, हड़ताल करा देते थे। बड़े से बड़े से नेता का जीना हराम कर रखा था। लच्छू कप्तान के भाषण का अंदाज इतना रोचक, इतना दिलचस्प होता था कि जिस दिन उनकी सभा होती थी, सिनेमा हाल खाली रहते थे। जिस शैली में लालू यादव पहले बिहार और बाद में देश भर में चर्चित हुए उसका ट्रेलर हरदावासी वर्षों पहले लच्छू कप्तान में देख चुके थे। अगर यह कहा

जाए कि लच्छू कप्तान लालू यादव के पूर्व अवतार थे तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। हम लोगों ने एक मर्तबा लच्छू कप्तान पर केन्द्रित एक नाटिका अपने मोहल्ले में मंचित कर डाली। संयोगवश यह मेरे जीवन की पहली रचना थी। इसकी कुछ पंक्तियां मुझे अभी भी याद हैं। जैसे – *लच्छू कप्तान देखो हरदा की शान देखो। जब चलते हैं लच्छू कप्तान हिलता आसमान देखो, लच्छू कप्तान देखो।* जब इस अनूठी शख्सियत ने नगर पालिका परिषद अध्यक्ष का चुनाव लड़ा तो हमारे मोहल्ले में घर घर में ये पंक्तियां गूंजने लगीं। पता नहीं यह लच्छू कप्तान के करिश्में का प्रताप था या इस प्रहसन का कि उन्हें सबसे ज्यादा वोट हमारे मोहल्ले गोलापुरा से ही मिले थे।

जहां तक मैं जान पाया हूं हरदा हमेशा मौलिकता पर रीझता रहा है। भले वह खुरदरी हो या स्निग्ध, औघढ़ हो या परिष्कृत। उसे कार्बन कापियां पसंद नहीं है। मौलिकता का यह जज़्बा ही शायद इस शहर की मूलभूत पहचान है।

103, वरदान अपार्टमेंट, भारत भवन रोड, श्यामला हिल्स, भोपाल

हरदा : अपराजेय शिवत्व

- नर्मदाप्रसाद उपाध्याय

गांव , नगर और महानगर छोटे और बड़े नही होते, छोटे या बड़े होते हैं मन। गांव में मन बड़े हों तो फिर उसे किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता और सीमाहीन महानगर बहुत छोटे हो जाते हैं यदि उसमें बसने वालों के मन बड़े न हों। इस दृष्टि से हरदा कोई कसबा, कोई गांव नहीं है। उसकी अपरिमित सीमाऐं आकाश और सागर को भी छोटा बना देती हैं। यह धारणा किसी पूर्वग्रह का परिणाम नहीं है। देश विदेश के तमाम महानगरों को देख लेने के बाद यह मैं बिना संकोच के कह रहा हूं।

नेशनल गैलरी ऑफ ऑस्ट्रेलिया में जब गीत गोविन्द की चित्रांकन परंपरा के बारे में मुझे कैनबरा व्याख्यान देने के लिए बुलाया तब वहां की संग्राहक कु. ब्रॉनविन कैम्पबेल ने मुझसे पूछा कि आपके नाम का क्या अर्थ है ? तब मैंने अपने व्याख्यान में कहा कि जिस तरह आपका शहर मोलोग्लो नदी के किनारे बसा है, उसी तरह मेरा गांव जिस पवित्र नदी के किनारे है उस महान नदी का नाम नर्मदा है और मैं उसी का प्रसाद हूं। हमारे यहां प्रसाद की पवित्रता अपरिमित होती है। हमारे यहां जब इस प्रसाद की बच्चे के नाम में हमारे माता पिता प्रतिष्ठा करते हैं तो फिर उनकी यह आकांक्षा रहती है कि यह बालक इस पवित्र नदी की शुचिता को, प्रवाह को अपने आप में समेटेगा। वह देह से भले कितना ही छोटा या बड़ा हो लेकिन उसका मन इस पवित्र नदी के चौड़े पाट की तरह बड़ा होगा। बालक भले अपने आचरण में कैसा भी हो जाए लेकिन उसके जन्मदाता उसे इसी प्रसाद के रूप में देखते हैं और इस तरह नामकरण करने के बाद वे उसे पूरी आस्था के साथ इसी पवित्र नदी को सौंप देते हैं। अपने सारे अधिकार त्याग देते हैं। यह भाव आपके पश्चिम में नहीं है। यहां बड़े

महानगर हैं लेकिन मन छोटे हैं।

हरदा में भले बड़े मन वाले तथाकथित रूप से छोटे लोग बसते रहे हों लेकिन उनके अवदान ने इस गांव की अनूठी अस्मिता गढ़ी है। यहां शंकर की आराधना होती रही है और शांकरी अर्थात् नर्मदा के आशीर्वाद की छाँह में यहां का इतिहास अपने आप को रचता रहा है। हरदा के इतिहास को रचने वाले बहुत बड़े मन वाले इतिहास पुरूष रहे हैं। धर्म, संस्कृति, साहित्य और कला के अनुशासनों को इन इतिहास पुरूषों ने निरंतर समृद्ध किया है। वे साक्षी व्यक्तित्व हैं, हरदा की अस्मिता के। उनके साक्ष्य के बिना अतीत अधूरा, वर्तमान गौण और भविष्य मौन है।

ऐसे व्यक्तित्वों की अटूट श्रृंखला है। स्मृतियों के सागर में आज ऐसे जाने कितने दीप व्यक्तित्व झिलमिल कर रहे हैं।

मैं जिस परिवेश में जन्मा, पला और बड़ा हुआ वह पूरी तरह धार्मिक और साहित्यिक परिवेश था। अजनाल नदी के किनारे बने घर से जब मैं बचपन में अपने दादाजी पं. श्यामलाल उपाध्याय 'श्याम 'के साथ खेत जाता तो रास्ते में बजरंग मंदिर, गणेश मंदिर और शिव मंदिर में दर्शन करते हुए खेत पहुंचता था। यदि दूसरे रास्ते में जाते तो नदी के पार गुप्तेश्वर मंदिर में दर्शन करने होते।

घर का वातावरण पूरी तरह साहित्य से परिपूर्ण था। दादा पंडित श्यामलाल उपाध्याय 'श्याम 'और उनके अग्रज पंडित गुलाबचंदजी उपाध्याय अपने समय के ख्यातनाम कवि थे। मैंने अपने दादा के अग्रज को नहीं देखा लेकिन उनकी कविताऐं खूब पढ़ीं। दादाजी कवि भी थे और शायर भी। वे उस समय की पंडित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही द्वारा सम्पादित पत्रिका सुकवि सरोज में नियमित लिखा करते थे। वह समस्या पूर्तियों का युग था। उन्होंने अनेकों बार सुकवि सरोज की समस्या पूर्ति की प्रतियोगिताओं को जीता था। आजाद भारत अपने शैशवकाल में था। स्वतंत्रता संग्राम की स्मृतियां प्रखर थीं। नए भारत को गढ़ने की प्रबल जिजीविषा थी। उस समय माखनलाल जी का काव्य व्यक्तित्व अपने उत्कर्ष पर था। वे हरदा आते तो श्री चंद्रगोपाल जी मिश्र (श्रद्धेय महेश बाबू के पिताजी) के यहां प्रायः ठहरते और कभी भोजन करने मेरे घर आते। उनके दैदीप्यवान व्यक्तित्व की छवि आज भी मन मानस में विराजी है। वे कविताएं सुनते और सुनाते। शेरी भोपाल भी आया करते थे। हरदा में बाबू महावीर द्विवेदी स्टेशन मास्टर रहे। उनके संस्मरण दादाजी सुनाते थे।

एक स्मृति उस समय की काव्य विभूतियों की है। एक मंडली थी कवियों की जिसके अगुआ थे स्व. हरिहर पगारे। इस मंडली के कवि किसी एक सदस्य के घर प्रातः रात्रि के

समय इकट्ठे होते। मेरे घर के पीछे बाड़े में दो तीन लालटेनें जलाई जाती और फिर दरी बिछाकर सब बैठते और काव्यपाठ होता। बाड़े में स्व. हीरालाल चन्द्रवंशी और श्री मथुराप्रसाद बठीजा रहते थे। दो लालटेन ये लाते और एक लालटेन मेरे घर से लायी जाती। इस मंडली में सांवरिया सेठ थे जिनका कंठ बड़ा अच्छा था। इसमें किशनलाल बंडावाला, रामनारायण मुंशी और श्री मंजुल के नाम मुझे याद आते हैं। शरद पूर्णिमा पर बड़ी काव्यगोष्ठी होती। इस काव्यगोष्ठी में एक कविता सदैव पढ़ी जाती जिसकी दो पंक्तियां हैं –

पूनम का चाँद हँसा पूनम की रात में
मोती बिखेर दिए, नीली परात में।

मंजुल कवि की ये पंक्तियाँ बड़ी मशहूर थीं –
जाकिट की पॉकिट में, कवि मंजुल विराजे हैं,

मुझे अपने दादा के द्वारा रचे गये छंद और शेर बहुत पसंद थे। उनका अर्थ भले समझ में न आता हो लेकिन उनकी लयात्मक्ता उन्हें बार बार सुनने के लिए खींचती थी। समस्या पूर्ति के लिए एक छन्द उन्होंने रचा था। फन पटके की समस्या पूर्ति करनी थी। छन्द इस प्रकार था –

बांसुरी की धुन सुन, सोलह सिंगारयुत,
उमंग में भर आई, नीचे बंशी वट के।
तारागण फीके पड़े, रूप राशि देख बाकी,
चंद्र मुख चंद देख नभ माहि सटके।।
मोती शरमाये सब, दांतन की पांति देख,
मृग भागे नैन देख, नेक नहीं अटके।
काली काली घुंघराली, लंबी लट देख श्याम,
नागन उसांस लेत, नाग फन पटके।।

आज यह जानकर आश्चर्य होता है कि उन्होंने उतनी ही कुशलता के साथ हास्य और व्यंग्य की कविताऐं लिखीं जिस कुशलता के साथ वीर रस और हास्य रस की रचनाऐं की। तन्ज या व्यंग्य उन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों में खूब लिखे। उन्होनें उर्दू में भी समस्या पूर्ति ग़ज़ल में की। यह परंपरा उस समय उर्दू में थी लेकिन अब यह नहीं है। जिसे आज उर्दू की ज़दीद शायरी कहते हैं वह उस समय अर्थात् 50 और 60 के दशक में थी। यह तथ्य भी सामने आता है कि जिस समय छायावादी काव्य लिखा जा रहा था उस समय जागरण की

कवितायें भी लिखी जा रही थी। उनके काव्य का अभी प्रकाशन होना है। यह जब प्रकाशित होगा तब उस समय की हिन्दी और उर्दू काव्य धाराओं की प्रवृत्तियां सामने आयेंगी। उर्दू की बारीकी के वे गहरे जानकार थे। उनकी इन पंक्तियों पर मैंने बार बार शेरी साहब को दाद देते देखा था।
तसल्ली कुछ तो हो जाती,
मेरी दर्दे जुदाई में,
शबे फुरकत तिरी तस्वीर,
पहलू में अगर होती
नसीब अपना दिखाता,
श्याम सुबहे वस्ल भी शायद
अगर किस्मत में अपने दर्दे फुरकत की सहर होती ....

इस तरह के जाने कितने शेर, मकते, मतले और नज़्म मेरे ज़हन में और जुबान पर है। हिन्दी और उर्दू के कवि सम्मेलन और मुशायरे तो उस समय नियमित रूप से होते ही थे लेकिन गोष्ठियां और नशिस्त भी होती थीं जिनमें खण्डवा तक के कवि और शायर आते थे। इसके अलावा स्वतंत्र रूप से भी कवितायें सुनायी जाती थीं।

मुझे याद आते हैं लाला होटल वाले स्व. लालाजी जिनका गौरवर्णी व्यक्तित्व इतना मोहक था कि उसे देखते ही रह जाएं। जितना ललित उनका व्यक्तित्व था उतना ही उनका ललित कंठ भी था। वे हार्मोनियम बजाते थे। स्वयं कविता रचते थे। उनकी कवितायें बड़ी सरल और सामाजिक एक्य की कवितायें हुआ करती थीं। उनकी कविता प्राय: हर अच्छे आयोजन की अनिवार्यता थी। दो पंक्तियां याद हैं –

एक तमाशा हमने देखा कलकत्ता मेल में,
जाने वाले झगड़ रहे थे, बैठे बैठे रेल में।

फिर इस कविता में बंगाली , पंजाबी और देश के तमाम भाषाओं के बोल थे और अंत में यही संदेश था कि हमारे पहनावे भिन्न हो, बोली भिन्न हों लेकिन हम सब भारतीय हैं, एक दूसरे से अभिन्न। कई कविताऐं पढ़ी और सुनी लेकिन ऐसी बेजोड़ और सम्प्रेषणीय कविता लालाजी के कण्ठ से सुनने के बाद नहीं सुन पाया। ऐसी जाने कितनी स्मृतियाँ हैं उस शैशव की जो हरदा के उस समय के ग्राम्य व्यक्तित्व के बीच खेलते कूदते किसी तरह शेष बची रही हैं और भी जाने ऐसे कितने संस्मरण हो सकते हैं।

आगे के समय में जब खुद कुछ लिखने लगा तब का वातावरण याद आता है।

आदरणीय माणिक वर्मा, अजातशत्रु, शिवशंकर वशिष्ठ, जटाशंकर सूरी, मनोहर गार्गव और रमेश सुगन्धी ये सब बड़े मंदिर में इकट्ठे होते। उस समय बड़े मंदिर की दूसरी मंजिल बन रही थी। या तो नीचे बैठते या फिर इस अधबनी मंजिल पर। माणिक जी तो खण्डवा से आये ही थे। वे तब गीतकार थे और उनका दर्पण शीर्षक गीत बहुत मशहूर था। कचहरी के पास बने को-ऑपरेटिव बैंक में वह गीत पहले पहल सुना था। व्यंग्यकार वे बहुत बाद में हुए। अजातशत्रु तब तक राधेश्याम यादव से अजातशत्रु हो गए थे। माणिक जी का घर प्रताप टॉकीज के पास पुराने बिजली घर के पीछे बन रहा था। उसकी अधबनी छत पर भी गोष्ठियां होती। इसमें विशेष रूप से माणक सोकल आते। यों उनकी नवरंग स्टूडियो के सामने ब्राण्डी की दुकान पर भी गोष्ठी हो जाती। परसाई जी भी आते, बड़े प्यार से मिलते। अपने लोकरे सर की आते ही याद करते थे। भवानी दादा भी आते। प्रेमशंकर रघुवंशी तब हरदा में बसे नहीं थे, वे सिवनी से आते थे। उन्होंने भवानी दादा का शानदार अभिनंदन सिवनी में किया था और मुझे याद है कि दिल्ली के एक कवि ने जब माणिकजी के संबंध में कुछ विपरीत कहा तो वहां मौजूद हरदा के सभी साहित्यिक और गैर साहित्यिक व्यक्ति उन्हें पीटने पर आमादा हो गए थे। शायद पहला अखिल भारतीय कवि सम्मेलन तब हरदा में हुआ था, जिसमें बेकल उत्साही, बालकवि बैरागी, आत्मप्रकाश शुक्ल और संतोषानंद आये थे। भोर तक कवि सम्मेलन मिडिल स्कूल ग्राउन्ड पर चला। वह कवि सम्मेलन **'सरस्वती साहित्य सरोवर'**नामक संस्था के तत्वावधान में हुआ जिसके संयोजक थे श्री शिवनारायण प्रलय। इस कवि सम्मेलन को सफल बनाया नरेन्द्र और लखन मौर्य जैसे उत्साही युवकों ने, पूरे गांव ने चन्दा दिया। मेरे मित्र नन्हें पान वाले ने नि:शुल्क पान खिलाए और भाई एकनाथ ने यदि कोई आर्थिक कसर रही तो उसे पूरा कर दिया।

शैल चतुर्वेदी तब स्थापित हो रहे थे। उनकी चल गई कविता मशहूर थी। वे टिमरनी से आते थे और तिवारी स्टोर्स पर बैठकर कविताएं सुनाते थे। तिवारी स्टोर्स के संचालक तीनों भाई श्री विजय शंकर, श्री कृपाशंकर, श्री उमाशंकर तिवारी साहित्यानुरागी थे। उमाशंकर जी स्वयं बड़े अच्छे कवि थे। तिवारी स्टोर्स साहित्यकारों का एक बीच बाजार में घण्टाघर से लगा हुआ अड्डा था। वहीं बैठते थे मेरे गुरू श्री अलकेश मिश्र जो कमल उपनाम से बड़ी सुन्दर कविताएँ रचते थे। उनकी दो पंक्तियां हैं -

सागर होकर भी रीत गया है मन,
अब झरनों से कैसे झरें नयन।

मुन्नालाल पंडितजी की दुकान से तमाम पत्र-पत्रिकायें हासिल की जाती और सारिका तथा धर्मयुग को सामूहिक रूप से पढ़ा जाता।

यों तो हर शहर और गांव के अपने संस्कार होते ही हैं लेकिन साहित्यिक संस्कारों

के संदर्भ में हरदा जैसी दूसरी मिसाल शायद ही मिले। यहां जो साहित्य समझते हैं और नही समझते हैं उन दोनों का समर्पण साहित्यिक आयोजनों के प्रति सदैव से अनूठा रहा है। मुझे याद है कि किसी भी छोटे बड़े व्यक्ति से मांग की तो उसने वह दिया जिसकी हम उम्मीद नहीं करते थे। जब कभी मैं किसी भाषण या वाद विवाद प्रतियोगिता में हरदा के बाहर जाता तो जिन्हें खबर रहती वे मुझे छोड़ने जाते, उत्साह बढ़ाते और लौटने पर हाथ में आठ आना या एक रूपया रख देते। पंडित रामभाउ जी शास्त्री ने मेरा विद्यारंभ कराया था। वे मुझे और भाई आजाद जैन को वाद विवाद के लिए तैयार करते थे। उनके जैसा देवोपम मनुष्य दिखाई नहीं देता। मुझे आज भी लगता है कि वे शायद तपस्यारत ऋषियों के बीच से हमें कृतार्थ करने चले आये थे। मेरे अनुज निर्मल का कण्ठ बहुत अच्छा था। वह कविताऐं भी लिखा करता। वे उसे बड़े दुलार के साथ सिखाते। उस समय के जाने कितने मित्र और अग्रज हैं जिनके पास उस समय की असंख्य स्मृतियां होंगी।

हरदा में जब कॉलेज खुला तो साहित्यिक गतिविधियाँ और बढ़ीं। श्री हरिकृष्ण दत्त ने इस वातावरण को समृद्ध किया। वे पंडित नंददुलारे वाजपेयी के शिष्य थे और विट्ठलभाई पटेल के मित्र। उन्होंने कॉलेज में अनेकों साहित्यिक कार्यक्रम करवाये।

हरदा में साहित्यिक संस्कार आज भी जीवित हैं। भाई श्याम साकल्ले, धर्मेन्द्र पारे और ज्ञानेश चौबे जैसे प्रतिभावान व्यक्तित्व आज हरदा की इस साहित्यिक अस्मिता को जीवित रखने में महती भूमिका निभा रहे हैं।

यह एक छोटी सी रूपरेखा है हरदा के साहित्यिक व्यक्तित्व के एक विशेष कालखण्ड की जो निकट अतीत का है और भविष्य के सर्जनात्मक्ता की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण भी है।

सम्राट हर्षवर्द्धन के समय से लेकर आज तक हरदा की ऐतिहासिकता को अनुभव किया जा सकता है। इस संदर्भ में श्रद्धेय जगदीश दुबे जी ने बहुत कार्य किया जो अभी तक अप्रकाशित है। इसे अवश्य प्रकाश में आना चाहिए। उन्होंने स्व. वाकणकर जी के साथ हरदा और हंडिया के क्षेत्रों का भ्रमण किया। कच्छप घात के चिन्ह उन्होंने खोजे और हरदा के प्राचीन इतिहास की कड़ियों को जोड़ने की चेष्टा की। मराठाकालीन हरदा के संबंध में विशेष अनुसंधान की आवश्यकता है। खिरवड़कर, केकरे और नाईक परिवारों से इस संबंध में विशेष जानकारी मिल सकती है। शायद यह बहुत से लोगों को मालूम नहीं होगा कि हरदा में तात्याटोपे भी आये थे और एक मंदिर में ठहरे थे।

भाषा और बोली की दृष्टि से भी हरदा व उसके आसपास के क्षेत्र के संबंध में कार्य होना चाहिए। भाई धर्मेन्द्र पारे ने स्व. शांडिल्य गुरूजी के कार्य को आगे बढ़ाया है और

उन्होनें कोरकू जनजाति की बोली के संबंध में मौलिक शोध कार्य किया है। महाकौशल और मालवा के संगम पर बसी यह बस्ती जॉर्ज ग्रियर्सन के लिए भी बड़ी महत्वपूर्ण रही। यहां की भुवाणी बोली अपने आप में बड़ी मौलिक है। अजातशत्रु जी ने इस ओर कार्य किया है जो मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

हरदा के जिला बन जाने के बाद अब उसके इतिहास को तरतीब देकर संवारा जा सकता है। हरदा के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपने गौरवमय अतीत के साथ प्रगट होना चाहिए। यह अपने आप में बड़ा सुखद तथ्य है कि भाई कमल पटेल और सुरेन्द्र जैन जैसे युवा समर्पण भाव से इस पुराने गांव को अपने संस्कारों के साथ, एक भव्य नगर के रूप में परिणत करने के लिए तत्पर हैं। ऐसे उत्साह को सच्चा मार्गदर्शन और सहयोग दोनों अपेक्षित हैं।

हरदा शिवत्व का पर्याय है। उसने गरलपान कर अमृत बांटा है। वह हरदा इसलिये है क्योंकि उसे हर ने दिया है। वह हर की देन होने के कारण हरदा है। उसका शिवत्व अपराजेय है और वह अपराजेय रहेगा।

85, इंदिरा गांधी नगर, इंदौर

हरदा .... दिल और दिमाग दोनों

हुमैरा जैदी

आँखों में मेरी अश्क कोई सबब नहीं,
नज़रों को धो रही हूँ, दीदार के लिए।

हरदा ..... जबसे मुझे हरदा पर कुछ लिखने के लिये कहा गया है, तब से ही दिल और दिमाग दोनों अजीब सी कैफियत से गुजर रहे हैं। जिन्हें लफ़्ज़ों में बयान करना मेरे लिए मुश्किल है। यादों के सैलाब उमड़े पड़ रहे हैं ... जो कभी-खुशी और कभी ग़म का माहौल बनाकर कभी मेरी आँखों से अश्क बनकर मेरा दामन तर कर जाते हैं, तो कभी ख़ुशी बनकर होठों पर देर तक के लिये मुस्कुराहट बिखेर जाते हैं। समझ में नहीं आ रहा है कि कहां से शुरू करूं और कहां खत्म ...।

चलिये अपनी पैदाइश से शुरू करती हूँ, मेरी पैदाइश हरदा के कुलहरदा वार्ड में श्री अनवर जैदी के यहां पांचवी संतान के रूप में हुई। दो बड़े भाई व दो बड़ी बहनों के बाद मैं पाँचवी और आखिरी औलाद थी, मेरे पिता जिन्हे हम अब्बूजी कहते थे। अब्बूजी मुझे प्यार से खुरचन कहते थे। माँ बाप और भाई बहनों की लाड़ली। मेरी परवरिश बिल्कुल लड़कों की तरह हुई। हर वह काम जो मेरे भाई करते थे, मेरा भी करना ज़रूरी था। मैंने कभी भी लड़कियों वाले खेल नहीं खेले अंटी, गोटी, कबड्डी, गिल्ली डण्डा, फुटबाल, पतंगबाजी, गुलेल चलाना, पेड़ो पर चढ़ना, छतों पर बिना सीढ़ी के चढ़ना, निशानेबाजी एयरगन से और साइक्लिंग। साइकल लंबे वक्त तक चलाने वाली शायद मैं हरदा की पहली ही लड़की थी - जिधर से गुज़रती थी, लोग खासकर बच्चे कहते थे वाह ! देखो लड़की साइकल चला रही है। बंदूक का निशाना तो आज भी मेरा परफेक्ट है।

हरदा मैंने अपनी शादी के बाद छोड़ा, तब हरदा तहसील हुआ करती थी। घंटाघर मेरी लाइफ के अब तक के घंटाघरों में सबसे ऊँचा ... हरदा का घंटाघर, जवाब नहीं। सड़कें तो कुल मिलाकर ४-५ ही थी। बांबे रोड, हंडिया रोड, खेड़ीपुरा रोड, बारह बंगला रोड और हॉस्पिटल रोड। मगर वहाँ के रहने वाले लोग बहुत ही मोहब्बती थे। एक दूसरे की पूछताछ थी। सभी एक दूसरे को पारिवारिक तौर पर जानते थे। एक दूसरे के बच्चों पर नज़र रखते थे। कोई भी बड़ा किसी के भी बच्चे को किसी ग़लत बात पर फ़ौरन टोक देता था और डाँट भी देता था, जिसका बिल्कुल बुरा नहीं माना जाता था। किसी भी क़ौम में भेद भाव नहीं था, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी मिल जुलकर रहते थे। इसी क़ौमी एकता के तहत हरदा में कभी कोई दंगा-फसाद नहीं हुआ। आज़ादी के पहले भी और बाद भी। इन्दिरा गांधी की हत्या के समय इन्दौर (जो हरदा के बहुत करीब है) का बहुत बुरा हाल हुआ मगर हरदा के बुजुर्ग फ़ौरन मीटिंग करके वातावरण एकदम शांत बनाए रखते थे। घंटाघर के आस-पास ही सारे मार्केट थे। सब्जी बाजार, मछली बाजार, कपड़ा बाजार, गल्ला बाजार। मैं जब बहुत छोटी थी तो अपने अब्बूजी के साथ साइकिल पर आगे डंडे पर डटी रहती थी, और जब अब्बूजी किसी से बातें करते करते पैदल चलते तो मैं उतरकर साइकल के दूसरी तरफ से कैंची साइकल चलाया करती थी और इसी तरह मुझे साइकल चलाना आ गई। हाँ घंटाघर का नाम आये, और बाबूलाल (पागल) का नाम नहीं आये ये कैसे हो सकता है। अब्बूजी बताते थे कि बाबूलाल एक मिलट्री मेन था, मगर किसी लड़ाई में उसकी याददाश्त जाती रही। उसे मिलेट्री से पेंशन भी मिलती थी, मगर वह पागल होने की वजह से पैसे किसी को भी दे देता था। मुझे याद है वह अब्बूजी के पास आता था कभी कहता था आलूगोंडा खाउंगा तो कभी कहता कि स्पेशल चाय पियूंगा। तब स्पेशल चार आने में आती थी, अब्बूजी उसे फौरन चार आने दे दिया करते थे। मुझे लगता था कि इतने पैसे क्यों देते हैं ? तब मुझे सिर्फ १० पैसे ही मिला करते थे। उसकी आदत थी, वह घंटाघर के स्टेच्यू के सर पर एक हाथ रखकर दूसरा हाथ हिला हिला कर नेता स्टाइल में भाषण दिया करता था। मैं जब भी घंटाघर जाती तो अब्बूजी से कहती बाबूलाल कहाँ है ? उसे देखूंगी, उसे देखे बिना वापसी नही होती थी। हरदा में दो ही टॉकीज थे। फिल्में बहुत जल्दी-जल्दी बदलती थी। चार-पाँच दिन ही एक फिल्म चलती थी। हम लोग हर इतवार को पहला शो जाया करते थे। चाहे दारासिंग, मुमताज की फिल्म हो या किंगकांग की या दिलीप, वहीदा की। उस जमाने में भी हरदा में कई फिल्मों के टिकटों का ब्लेक हुआ करता था। हमारे यहाँ एक रफीक नाम का लड़का काम करता था, वह ब्लेक करके ही अपनी पढ़ाई का खर्च निकालता था। गृहस्थी, सन् ऑफ इंडिया, हकीकत और खानदान, ऐसी कई फिल्में थी जो खूब चलीं और खूब टिकट ब्लेक से मिले। भक्त प्रहलाद, लवकुश, अलीबाबा चालीस चोर जैसी फि ल्में टेक्स फ्री होती थीं और स्कूल से हम बच्चों को टॉकीज ले जाया जाता था, बहुत मजा

आता था। जादूगरों के प्रोग्राम्स टॉकीज में ही हुआ करते थे। सरदार हजारा सिंग का इलेक्ट्रिक गिटार का प्रोग्राम भी प्रताप टॉकीज ही में हुआ था। इतवार को मेटनी शो अंग्रेजी फिल्म आती थी। इसके अलावा भी खूब स्टेज प्रोग्राम्स होते थे, गुजरातियों के गरबे होते, मोहरमों पर अखाड़े निकलते। यदि कोई मेहमान घर आते थे, तो हंडिया घूमने का एक प्रोग्राम जरूर रखा जाता था। खूब तैयारी एक दिन पहले से होती थी। बड़े बड़े खानदानी टिफिन में खाना रखा जाता, चाय पकोड़ी का सामान और और स्टोव साथ जाता था। पहली बस से जाते और आखिरी बस से लौटते थे। ब्लेक एण्ड व्हाइट केमरा जरूर साथ जाता था। मेरे बड़े भाई फ़ारूक जैदी को बचपन से ही फोटोग्राफी का शौक था।

मुझे याद है जब मेरा काशी बाई कन्या पाठशाला में पहली क्लास में नाम लिखवाया गया था तो मैं जिस क्लास में बैठी उसमें मेरा नाम नहीं था। २-३ दिन बाद मुझे ढूंढती हुई लाजवन्ती बहनजी आई और वहां से मुझे चलने को कहा। तुम्हारा नाम मेरी क्लास में है, मैंने वहां जाने से इंकार कर दिया, उन्होंने बहुत देर समझाया मगर जब मैं अपनी जगह से हिली नहीं तो उन्होंने मुझसे कहा कि चलो हम तुम्हारी बहुत अच्छी दोस्त बनवाएंगे। मैं शायद तब भी दोस्ती का मोल समझती थी, उनके साथ हो ली। उन्होंने मेरी दो दोस्त बनवाई, सईदा और किश्वर सईदा। खुदा की कुदरत देखिये कि इसी किश्वर नाम की एक लेडी जो कोटा में थीं, मेरी आज बहुत अच्छी दोस्त है। अब जयपुर के कॉलेज में अंग्रेजी की प्रोफेसर है। तब हमें तीसरी क्लास से पाँचवी तक एक ही बहनजी पढ़ाया करती थीं। हमें मनोरमा बहनजी ने पढ़ाया। पहले पढ़ाई पर स्कूलों में बहुत ध्यान दिया जाता था। जमकर पढ़ाते थे खूब रिवीज़न करवाते थे। हम सभी बहन-भाई पढ़ने में बहुत तेज थे। मेरे साथ पाँचवी तक गीता अग्रवाल और उर्मिला वाजपेयी थीं। हम तीनों क्लास केप्टिन थे और रोज़ाना जो शुद्धलेखन और मनगणित के टेस्ट होते थे, उसकी स्लेटे जांचने में हम टीचर के साथ मदद करते थे। स्कूल पैदल ही जाते थे, हाथ में स्लेट लेकर जाना पड़ता था। चूंकि उस पर रोज़ाना एक तरफ नकल और दूसरी तरफ क्लास के हिसाब से गिनती, उल्टी गिनती या पहाड़े लिखकर ले जाना होता था। बस्ते में रखने पर मिट जाता था अगर स्लेट का काम करके नहीं ले जाते थे तो स्केल से हथेलियों पर मार पड़ती थी। अगर टीचर ज़्यादा ही ख़फ़ा होती थीं तो स्केल खड़ा करके मारती थीं। स्कूल मैं अपनी बड़ी बहन मेमूना ज़ैदी के साथ जाती थी। हमारी कभी लड़ाई हो जाती थी तो स्कूल जाते वक़्त हम जुदा ऐसे होते थे कि मैं सड़क के एक तरफ और वे दूसरी तरफ चलती थी। मगर मैं जल्द ही उनसे जा मिलती थी। हम सभी पढ़ने में बहुत अच्छे थे हम बहनों को खूब डिस्टिंक्शन मिलते थे। बड़ी बहन ताहेरा ज़ैदी को जब संस्कृत में डिस्टिंक्शन मिला तो उन्हें कॉपी समेत सारी कक्षाओं में घुमाया गया था। देखो एक मुस्लिम बच्ची संस्कृत में इतने अच्छे नंबर लेकर आई है। शुरू से आखिर तक उनकी कॉपी में एक सी राइटिंग होती थी। मेरा गणित में डिस्टिंक्शन आता था और मैमूना का अंग्रेजी,

गणित में। मगर इसके बावजूद मैं खेल में सब कुछ भूल जाती थी। खासकर होम वर्क करना फिर जैसे-जैसे स्कूल का वक्त करीब आता था, मेरा दिल धक-धक होता था। आपको ये जानकर हैरत होगी कि मेरी मंमी को हिन्दी का एक शब्द भी नहीं आता था। वैसे वो पढ़ी लिखी तो थी, उर्दू-अरबी हिसाब सब कुछ। वे मेरे स्कूल टाइम से पहले मेरा सारा होम वर्क करवाती थीं। किचिन में ही हम दरी पर बैठ जाया करते थे, हिन्दी का पूरा पाठ वह पहले मुझसे पढ़वाकर सुनती थीं, फिर पूरे प्रश्न-उत्तर खाली स्थान, वाक्य सब करवाती थीं। गणित में भी जोड़ घटाना गुणा भाग सब करवाती थीं। उन्होंने हमें निबंध तक लिखवाए थे। तब १५ अगस्त, २६ जनवरी, देखने योग्य स्थान, चांदनी रात में नौका विहार, पं. जवाहरलाल नेहरू, गाँधीजी, निबंध के विषय हुआ करते थे।

प्रायमरी पास होकर जब मिडिल स्कूल में आई तो बहुत गर्व हुआ। इतना बड़ा स्कूल, इतना बड़ा ग्राउंड और पीरियेड्स में पढ़ाई। २६ जनवरी को सारे हरदा के स्कूलों के कार्यक्रम मिडिल स्कूल ग्रांउड पर ही होते थे। झंडा फहराने के बाद जन गण मन ग्रांउड पर होता था जिसे वर्मा मेडम म्यूजिक टीचर तैयार करवाती थीं। मेरी बड़ी बहन और लाला हलवाई की बेटी लल्ली दीदी, यह गान माइक पर गाती थीं, तब हमें अपने दोस्तों में बहुत गर्व होता था। सबसे आकर्षक कार्यक्रम बाथोले सर का भाँगड़ा होता था। तब ये पंजाबी भाँगड़ा बहुत नया माना जाता था। क्या मज़ा आता था ? उसका गीत खुद बाथोले सर गाते थे। भाँगड़े से ज्यादा उन्हें गाता देखने में मज़ा आता था। सर बेहाल हो जाया करते थे। मेरे भाई भाँगड़ा में हिस्सा लेते थे, रंग-बिरंगी पोशाकें, बहुत मज़ा आता था। गार्जियन की कुर्सी दौड़ भी होती थी। मिडिल स्कूल में मेरी बहुत अच्छी दोस्त रहीं। दो ग्रुप थे, एक बोहरा फ्रेंड्स का, जिसमें रूही नफीसा, रशीदा, हुसैना और कनीज़ बानो मेरी अच्छी दोस्त थीं, जिनसे मैं आज भी बज़रिये फ़ोन-जुड़ी हुई हूँ। दूसरा ग्रुप था, इन्दू चंद्रवंशी, अरूणा सराफ, निर्मला पाठक, ऊषा जुनेजा वग़ैरह का, इन लोगों से अब जुड़ाव नहीं है। शायद अपनी इस किताब के ज़रिये कुछ खोए हुए लोग मिल जाए। हमारी आठवीं क्लास बहुत शातिर बच्चों की थी। सुना था कि कोई क्लास टीचर बनने को राज़ी नहीं होता था, फिर गंगेले मैडम को हमारी क्लास टीचर बनाया गया,जो कि उस वक्त की बहुत दबंग टीचर थी, पढ़ाती भी बहुत अच्छा थी उनके पान खाने की स्टाइल मुझे बहुत पसंद थी। तब में पान खाने की बहुत शौकीन थी, मगर खाने नहीं दिया जाता था। मैं सोचती थी कि बड़ी होकर मैडम की तरह ही पान खाया करूंगी। आठवीं पास करने पर, अब्बूजी मम्मी ने मुझे लेडिज एटलस साइकिल गिफ्ट की थी और इस बात का मुझे आज तक फक्र है कि पूरे स्कूल में सिर्फ मेरे पास साइकिल थी। तब हमारी टीचर मिसेज विनीता सक्सेना के पास साइकिल हुआ करती थी। इसी ज़माने में हम बहनों ने रेडियो प्रोग्राम्स में हिस्सा लेना शुरू किया, रेडियो सीलोन और आल इंडिया रेडियो की उर्दू सर्विस पर हम तीनों बहनों के खूब नाम आया करते थे, ताहेरा ज़ैदी, मैमूना

ज़ैदी और हुमैरा ज़ैदी। हाई स्कूल में मैने साइंस ले ली थी और मेरी बाकी सारी दोस्तों ने आर्ट्स, इसलिये वह क्लास की बातें और शरारतें कम हो गई। साइंस में मेरी दोस्ती इन्दु पाटनी से हुई जो बहुत लंबे अरसे तक चली और उसकी बेवक्त मौत के साथ खत्म हुई। उसी के साथ विजयलक्ष्मी जैन से दोस्ती हुई, हम तीनों के बहुत यादगार दिन गुजरे खूब बैठकें जमती थी, शेरो -शायरी की महफिल जमती थी। एक साल मैंने हरसूद में पढ़ाई की। कॉलेज में एडमिशन का वक्त आया तो मेरी मम्मी बीमार थीं। हरदा में साइंस कालेज नहीं था। होशंगाबाद या भोपाल जाना पड़ता, उसके लिए मैं तैयार नही थी। तब मेरे बड़े भाई फारूक ज़ैदी ने सलाह दी कि कामर्स ले लो, चूंकि मेरा गणित बहुत अच्छा था इसलिए इसके लिये मैं राजी हुई। मेरे फादर ने कॉलेज में बात की तो तब मोदी सर प्रिंसपल थे, उन्होंने कहा के हम एक लड़की को एडमीशन नहीं देंगे, कम से कम ३ लड़कियाँ हों , फिर अब्बूजी ने सुरेश कुमार सेजपाल से बात की, जो खुद भी उस वक्त एम.कॉम. कर रहे थे उन्होंने मुझे घर पर आकर पढ़ाया और इस तरह मैंने हरदा कि पहली बी.कॉम.पढ़ी, लड़की होने का गौरव प्राप्त किया।

अब्बूजी अठारह साल एक माह की उम्र में निर्विरोध पार्षद चुने जाने वाले हरदा की हिस्ट्री में पहले शख्स रहे। बहुत स्मार्ट और एक्टिव मेन। सुना है हमारे दादाजी के वक्त में कोई कोर्ट कचहरी या पुलिस स्टेशन नहीं जाता था। सभी के झगड़े मेरे दादाजी सुलझाया करते थे, उसी रिवायत को अब्बूजी ने जारी रखा। मेरे दादाजी से मिले कुछ दवाओं के नुस्खे और मंतर। अब्बूजी ने आधे सर का दर्द, पीलिया, कुत्ते के काटे का मंतर, बिच्छू के काटने पर उसका उतारा, इगतरा बुखार और भी बहुत कुछ बिना किसी फीस के जिन्दगी भर किया हम भी इस सेवा में लगे हुए हैं। हरदा में एक डा. भार्गव थे, वह तो लोगों से मज़ाक मे कहते भी थे लगता है हरदा में बस दो ही डॉक्टर हैं, एक अनवर बाबू और दूसरे प्यारू नाई। प्यारू नाई भी पीलिया को अचूक झाड़ा करते थे। अब्बूजी दिल के बहुत मज़बूत थे रेल्वे लाइन के पास घर होने की वजह से रेल्वे लाईन पर हुए कोई हादसे, किसी के कट जाने पर फौरन पहुंचते थे और हॉस्पिटल वगैरह पहुचाने में मदद करते थे। घर वालों को संभालते और मशवरे देते थे। एक बार एक औरत को उसके पति ने पेट में चाकू मार दिया, वह घर से बाहर सड़क पर भागती हुई आ रही थी। अब्बूजी पेट्रोल पंप के पास खड़े हुए थे। देखा वो चिल्लाती हुई आ रही है, उसकी साड़ी सड़क पर घिसट रही है और पेट में से आंतड़िया बाहर लटक रहीं हैं। अब्बूजी ने उसकी आंतड़ियाँ पेट के अन्दर करके उसी की साड़ी से लपेटी और जाते हुए तांगे को रोककर फौरन हॉस्पिटल ले गए। इसी तरह एक सच्चा किस्सा और है जो सिगांजी में रहने वाले श्री ओमनारायण शुक्ला का है। वे और उनके बड़े भाई अपने ही घर में खेल रहे थे, तब खिड़कियों में सलाखे नहीं हुआ करती थीं। ओम भईया खिड़की में से सड़क पर आ गिरे, अब्बूजी वहीं से गुजर रहे थे, दौड़कर उठाया देखा सर के पिछले हिस्से

की गोल सी टिकली अलग हो गई। पीछे से छेद हो गया, अब्बूजी ने फौरन उस टिकली को देखा, उसकी धूल साफ करके सर पर ठोंककर लगाई और अपना मफलर सर पर लपेटकर दरवाजा खटखटाया, तो ओम भईया की माताजी रामायण पढ़ रही थी। उन्होंने कहा यह हमारा बच्चा नहीं है, वो तो अंदर है फिर अब्बूजी ने मफलर मे लिपटा हुआ चेहरा बताया तो भागी हुई आई। उनके पिताजी रेलवे मे थे इसलिए रेलवे हॉस्पिटल मे इलाज हुआ ओम भईया को कई दिनों तक होश नहीं आया माताजी ने एक दिन अब्बूजी की गोद में ओम भईया को डालकर कहा कि अगर ये बच्चा जी जाए तो आपका, उस दिन से वे अब्बूजी के बेटे हो गए थे। डॉ. रोशन ने अब्बूजी को शाबासी दी थी कि इतना अच्छा सर का ऑपरेशन तो मैं भी नही कर सकता था। बहुत सही जोड़ा है और हवा नहीं लगने से बच्चे को नुकसान नहीं हुआ। मेरे अब्बूजी गरीबों के लिए मसीहा थे। गरीबों को हर तरह से मदद करते थे, किसी की नौकरी लगवाना किसी को सिलाई मशीन दिलवाना, किसी के घर अनाज डलवाना और यतीम लड़कियों की शादी का खर्च उठाने का तो उन्होंने जिम्मा ही ले रखा था। हरदा में उन्होंने बिना ब्याज के रूपया उधार देने का एक बैंक खोला था, जिसका नाम कर्जे-हसना रखा था, जो आज भी चालू है। इसी तरह मेरी मम्मी भी कमाल की लेडी थीं। क्या घर, क्या बाहर हर जगह हर दिल अज़ीज। जो उनसे एक दफ़ा मिलता था तो भूलता नहीं था। मुझे तो आज तक समझ नहीं आता कि उनके दिन के २४ घंटों में कितनी बरकत थी। वह इतना काम करती थी कि तआज्जुब होता है घर के रोजमर्रा के कार्यो के अलावा खूब खिदमत लोगों की करती थीं। किसी को कपड़े सीकर दे रही हैं किसी को खाना खिला रही हैं। उस दौर में अच्छी तरह अरेंज करना जबकि न तो कुकर थे न गैस के चूल्हे, फुर्ती इतनी कि मैं समझती हूँ, आधा दर्जन लोगों का काम अकेले करना। लोगों से मिलना जुलना भी खूब होता था। हरदा में कोई पार्क या ऐसी कोई जगह तो थी नहीं जहां इंटरटेंमेंट के लिये जाया जाता। बस ले देकर दो टॉकीज़ थे और घरो में आना जाना बहुत होता था। शादियों में घरों के एक-एक कमरे मेहमानों के लिए दिये जाते थे। नहाने धोने का इन्तेजाम किया जाता था। हरदा में जब भी मुशायरे वगैरह होते थे तो लेडीज शायरा हमारे घर पर ही रूकती थीं। मेहमान-नवाजी तो इस ग़ज़ब की थी मम्मी में कि बयान से बाहर। दुधमुहेँ बच्चे से लेकर बुजुर्गों तक की मेहमान नवाज़ी। हमारे घर में कोई भी आता तो बिना खाए पिये नहीं जा सकता था। हम बहनों में भी ये चीज़ आई है हाजिर जवाब और हाजिर दिमाग, बहुत मज़ाक, बहुत अच्छी, शेरो-शायरी का शौक, धार्मिक प्रोग्राम करना और सब जगह जाना, हमारे टीचर्स से मिलना, उन्हें घर बुलाना हमारी दोस्तों तक से बाते करना, लतीफ़े सुनना, बिल्कुल फ्रेंडली मगर विकार के साथ रहना उनकी आदत थी।

न हाथ थाम सके, न पकड़ सके दामन
बहुत करीब से उठकर चला गया कोई ...।

१ दिसम्बर १९७६ को मम्मी असमय ही हमे छोड़ गईं। हम लोग छोटी उम्रों के ही थे, बहुत बड़ी कमी के साथ जिन्दगी को आगे बढ़ाया। मैं यूं तो छोटी थी, सबकी लाडली थी मगर मम्मी के जाने के बाद सभी भाई बहनों ने मुझे और एक दूसरे को बहुत संभाला। मेरी बड़ी बहन ताहेरा ज़ैदी ने मेरी उज्जड़ तबीयत को बहुत सुधारा, समझाया और आज भी वे मेरी मार्गदर्शिका हैं। वे भोपाल में है। मेरे जीजाजी श्री मुज़फ्फ़र अली बहुत हेल्पिंग नेचर के हैं वे भी हरदा वालों के लिये सहायता को हमेशा तत्पर रहते हैं, वे लोकल बाडीज के आफ़िस में है जिसमें नगर पालिकाएं वगैरह आती है। हरदा का किसी का भी काम हो वे सीधे अनवर बाबू के दामाद के पास पहुंचते हैं। मुज़फ्फर भाई बिना किसी का कोई पैसा खर्च कराए सारे काम करवाते हैं। हरदा का ज़िक्र हो तो दो लोगों का ज़िक्र करना मैं ज़रूरी समझती हूँ एक हरदा के हाजी लोहार जिन्हें हाजी बाबा के नाम से जाना जाता था। वे भी हरदा के लिये फ़रिश्ता सिफ़त आदमी थे। पैसा खूब था और पैसे के साथ दिल भी बहुत बड़ा था। किसी भी मुसीबत जदा की मदद करते थे। हंडिया में बाढ़ के वक्त पहुंचने वाले पहले आदमी होते थे। सुना था कि एक बार हंडिया में बाढ़ आई है वे अपनी जीप में बैठे सीधे कमलेश हलवाई के यहां पहुंचे और कहा कि सब्जी पूड़ी बनाओ और चने की जितनी बोरियां उनकी जीप में आई वे भुने चने लेकर हंडिया रवाना हुए। उन दिनो बाढ़ पीड़ितों को स्कूलों में ठहराया जाता था। वह किसी को भी खाली हाथ नहीं लौटाते थे। चाहे कोई भी चंदा हो, शायद सबसे ज्यादा चंदा देना, हाजी बाबा की हॉबी थी।

दूसरी हस्ती हैं, अन्नापुरा में रहने वाले मौलवी वजाहत हुसैन। जिनकी फरहत सराय में दीनी किताबों की दुकान भी थी। वह बहुत बुजुर्ग हस्ती थे सुना है एक बार हरदा में बारिश नहीं हो रही थी। सभी धर्म अपनी-अपनी तरह दुआएँ कर चुके तो लोग उनके पास गए कि आप दुआ करें। बहुत पीछे पड़े तब उन्होंने हाँ की। और कहा कि आज शाम ४ बजे तक बारिश हो जाएगी। खुद उसी वक्त उठकर ईदगाह की तरफ चले गए, जो वक्त उन्होंने दिया था वह ईदगाह से भीगते हुए जब लौटे, तो घंटाघर पर घुटने-घुटने पानी था। लोगों ने उन्हें कंधों पर उठा लिया था। इसके चश्मदीद गवाह सईद पेन्टर थे, मुझे नहीं मालूम अब हैं या नहीं ?

उनकी एक आदत और थी, जब तक मैं हरदा में थी, वहां सात मस्जिदे थीं। वे प्रतिदिन मस्जिदों की टॉयलेट साफ किया करते थे। ये होती है सही सेवा, मस्जिद में तो हर कोई अन्दर की सफाई कर देता है। मगर टॉयलेट की सफाई करना बहुत बड़ा काम है। चूंकि वे मेरी मम्मी के गुरू भाई थे, इसलिये हमारे घरों में बहुत आना जाना था। हम उन्हें मंमा (मामा) कहते थे। मामी जी आज भी अपनी छोटी बेटी के पास भोपाल में है। जिस रात मेरी मम्मी का इंतकाल हुआ था, रात तीन बजे, इतनी सर्दी में सुबह ५ बजे आने वाली

मामीजी ही थी, जो अकेली हॉस्पिटल आई और हमारे सर पर हाथ रखने वाली पहली वे ही थीं। वह रात मैं आज तक नहीं भूली। मामा ने फरहत सराय में अन्दर एक मस्जिद बनाई थी जिसमें पानी बाहर के नलों से भरकर ले जाया जाता था। बहुत मुश्किल होती थी। वे सबसे कहते थे, मगर कोई कुछ कोशिश नहीं करता था आखिर में खुद ने पानी पीना छोड़ दिया। जब तक वहां बोरिंग नहीं हो जाती तब तक मैं पानी नहीं पियूंगा। अब्बूजी को यह बात पता चली उन्होंने हरदा के ख़ास-खास लोगों से कहा, चन्दा हुआ, बोरिंग वाले से बात हुई वह भी कम पैसे लेकर बोरिंग करने को राज़ी हुआ और कहा आप कुछ दिनों में मुझे बाकी रकम दे देना। इस तरह वहां बोरिंग हुई और १३ दिन प्यासे रहने के बाद मंमा ने बोरिंग से निकला पानी ही पिया। क्या बात है, कैसे-कैसे लोग, कैसी-कैसी ज़िदें। आज हम सोचते हैं, तो आँखे नम हो जाती हैं। फ़ख्र होता है कि हमारे हरदा में कैसे-कैसे लोग रहे हैं, काश हम भी अपनी जिन्दगी में कोई ऐसा काम करें कि आने वाली नस्लें हमें इसी तरह याद करें, जैसे आज हम इन लोगों को याद कर रहे है। सन् २००२ जुलाई १० को अब्बूजी दुनिया से चले गये। अब्बूजी इस दुनिया से कूच कर गए। तभी से हरदा जाना नहीं हुआ है। अब छुट्टियों के पहले कोई भी इन्तेजार करने वाला जो नहीं रहा।

आंखे किसी की राह में बिछाता नही कोई,
ये कौन तेरे शहर के आदाब ले गया।

मगर हाँ हरदा से रिश्ता तो उमर-उमर का है। वहां अब भी मेरे माँ-बाप की मिट्टी है। हरदा मे अभी मेरे एक बड़े भाई मो. सिद्दीक ज़ैदी है। बहुत बुलाते है, मगर जिन्दगी की भाग-दौड़ में वक्त नहीं निकाल पाती हूँ, मगर हरदा मेरे दिमाग में, दिल में, यादों में बसा हुआ है। कभी हरदा से दूर अपने आप को नहीं कर पाती। वहीं मेरे अब्बूजी जन्मे, मैं जन्मी और मेरी इकलौती बेटी नकीला का जन्म भी वहीं हुआ है। नकीला अब बाम्बे में एम.एससी. कर रही है। बी.एससी. उसने जयपुर के करीब वनस्थली यूनिवर्सिटी से किया है और यूनिवर्सिटी में टॉप किया और गोल्ड मैडल लिया है। यह मेरे लिए बहुत फख्र का मुक़ाम है। कहीं न कहीं इसमें हरदा का असर जरूर है। हरदा के लोग बहुत जगह हैं बहुत आगे गए हैं, मेरे मौसाजी जो भोपाल में थे, वे तो हमेशा कहते थे कि हरदावासी हर जगह मिल जाता है, चाहे देश हो या विदेश।

खाने पीने की चीजों के बिना हरदा का ज़िक्र खत्म नहीं हो सकता। सबसे पहले हरदा का नाम आते ही चतरू जी के केशरिया पेड़े, मेरी बेटी कहती है कि मुंह में पेड़ा रखते ही मुझे हरदा की न जाने क्या-क्या बातें याद आती हैं। मैं भी बचपन से खा रही हूँ मगर तारीफ की बात ये है कि न तो कभी उसके मज़े में फर्क आया है, न साइज में, न डिजाइन में, न कलर में। उसके बाद मुझे हरदा की मावे की जलेबी, जो वहां सिर्फ श्रावण सोमवार

को बना करती थी और अब्बूजी हर सोमवार पूरे महीने याद से लाया करते थे, बहुत याद आती है अब नमकीन मुंह कर लें तो वह, शंकर चॉट वाले के यहां की कचौड़ी।

इतना ही लिखकर अब खत्म करती हूँ। बेसब्री से इन्तेजार है, उम्मीद है कुछ जाने पहचाने लोगों का पता निशान भी मिलेगा।

४ छ ४१ विज्ञान नगर, कोटा (राजस्थान)

हरदा प्रसंग

लाल्टू

जल्दबाजी में संस्मरण लिखना खतरों से खाली नहीं है। बदकिस्मती से इन दिनों मैं वक्त का मारा हूँ। कई सारे काम बाकी पड़े हैं और ज्ञानेश चौबे ने तीसरी मेल भेज दी है कि भाई, हरदा में बिताए दिनों को याद करो। इस तरह लिखने में संभव है कि कुछ बहुत प्रिय लोग या कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ छूट जाएँ, इसलिए पहले ही मुआफी की फरियाद है दोस्तों ।

स्वभाव से ही मैं परिस्थितियों से समझौता करने में नाकाबिल हूँ। शिकायत करते रहने की पुरानी गंदी आदत है। यह भी इस संस्मरण की सीमा होगी, यानी कि शिकवे खूब मिलेंगे। हरदा में मैंने मात्र डेढ़ साल की अवधि बिताई, एक पूरे जीवन काल में यह समय थोड़ा ही है, पर कुछ बात हैं कि वो डेढ़ ही साल मुझे नहीं भूलते हैं और न ही हरदा के साथियों ने मुझे भुलाया है। मई 1988 से, नवंबर 1989 तक मैं हरदा में 'एकलव्य' संस्था में कार्यरत था, मुझे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) की विशेष फैलोशिप मिली थी, संयोग की बात है कि एकलव्य के कर्णधारों ने तय किया कि हमें हरदा केन्द्र में ही काम करना है, जबकि हमारा अपना चयन पिपरिया केन्द्र था, इसके पीछे कुछ निजी कारण थे। फैलोशिप के लिए आवेदन करने के पहले पता होता कि संस्था हमारी राय को नजरअंदाज कर अपना निर्णय हम पर थोपेगी तो हम नहीं आए होते। जब तक हमें पता चला, देर हो चुकी थी और हम एक तरह मन मसोस कर ही हरदा आए थे।

इसके पहले 1987 में एक बार एक दिन के लिए हम हरदा आए थे। उन दिनों मैं

पंजाब विश्वविद्यालय में केमिस्ट्री विभाग में व्याख्याता के पद पर था। 1987 में अमरीका से लौटकर वहीं नौकरी कर ली थी। अकादमिक माहौल की अपनी सीमाएँ थीं और स्वैच्छिक संस्थाओं के खुले क्षेत्र में काम करने की तीव्र इच्छा मन में थी। 1986 में एकलव्य द्वारा संचालित होशंगाबाद विज्ञान प्रशिक्षण कार्यक्रम के ग्रीष्मकालीन शिक्षक प्रशिक्षण शिविर के लिए उज्जैन आया था। अगले दो सालों में दो तीन बार संस्था के विभिन्न केन्द्रो में आ चुका था। संस्था के कई साथियों के साथ अच्छी दोस्ती हो चुकी थी, पर साथ ही गंभीर मतभेद भी पनप रहे थे। 1988 की गर्मियों में हमें हरदा में काम शुरू करना था। पहले अप्रेल में कैरन पहुँची और मैं मई में विश्वविद्यालय के काम निपटाकर आने की तैयारी में था। इसके कुछ दिनों पहले पिपरिया में किसी गाँव में स्थानीय लोगों और पुलिस में झड़प हुई थी। एक सिपाही ने खुद को लोगों के हाथों निहत घोषित कर दिया था। गाँव के सभी बच्चे बूढ़े, मर्दों को पुलिस ने जेल में डाल दिया था। नागरिक अधिकार कार्यकर्ता इसका विरोध करते थे। अक्सर वे होशंगाबाद आते और एकलव्य के दफ्तर में ही ठहरते, पुलिस को इससे नाराजगी थी। इस नाराजगी का शिकार हमें होना पड़ा। कैरन को तीन दिन में देश छोड़ने की नोटिस मिली (छः महीने बाद यही नोटिस फिर से एक सिपाही लेकर आया था, जब हम एक बाल मेला के आयोजन में व्यस्त थे ... अपना माल असबाब समेट अपने देश वापस जावें) मैं दो दिनों के लिए आया था। हम दोनों होशंगाबाद से हरदा के बीच खटारा बसों की यात्रा और बेतहाशा गर्मी से परेशान थे कैरन को थोड़े समय पहले गंभीर शारीरिक समस्याएँ भी हो चुकी थीं। होशंगाबाद के पुलिस स्टेशन में हम बैठे हुए थे तो एक क्लर्क ने जोर से दूसरी ओर बैठे अपने सहयोगी को पुकारते हुए कहा, 'अरे वो आतंकवाद वाली फाइल लाना, चंडीगढ़ में दो साल में पुलिसकर्मियो के असभ्य बर्ताव का मैं आदी हो चुका था, फिर भी ये बातें भूलती नहीं, एस.पी. साहब के साथ मुलाकात की। मैंने समझाया कि हम लोग विज्ञान शिक्षण के काम के लिए आए हैं और हमारा सरकार से कोई विरोध नही है। उस बेवकूफ ने कहा - आपको विदेशी नागरिक से शादी करने का अधिकार किसने दिया ?

मई की बेतहाशा गर्मी और यात्राओं से परेशान थका हुआ मैं। उस बेवकूफ की बात पर हँसे बिना न रह सका और बोला, भारत के संविधान में नागरिकों पर ऐसी कोई रोक नही है, और उठकर चला आया। अगले डेढ़ सालों में कैरन को बार-बार होशंगाबाद पुलिस मुख्यालय के चक्कर काटने पड़े।

हरदा केन्द्र में मेरा काम, होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम के कार्यकर्ता के रूप में था। शिक्षकों की मासिक गोष्ठियों में जाना, कभी-कभी स्कूलों में जाना और इनसे जुड़े प्रशासनिक कार्यों से मैं जुड़ा था। केन्द्र में अंजली नरोन्हा प्रभारी थीं और अनवर जाफरी वरिष्ठ अधिकारी थे। डेढ़ साल गुजरने तक संस्था के काम से मैं कुछ हद तक ऊब गया, कुछ अन्य मतभेदों

की वजह से फैलोशिप की अवधि के छः महीने पहले ही हम लोग वापस चंडीगढ़ चले गए। इन डेढ़ सालों में निजी तौर पर अनवर और अंजली का स्नेह हमें मिला, कई छोटी-मोटी आफतों में उन्होंने हमेशा हमारा ध्यान रखा। अनवर के अनुभव से मैंने बहुत कुछ सीखा जो बाद में देर से समझ में आया, इसके बारे में आगे और लिख रहा हूँ।

एक और संस्था में बाहर से आए अंग्रेजी के उच्च शिक्षित लोग थे, दूसरी ओर स्थानीय कार्यकर्ता थे, जिनमें धर्मेन्द्र पारे, गोविंद और शोभा चौबे प्रमुख हैं। संस्था की लाइब्रेरी में बच्चे-बूढ़े हर तरह के लोग आते थे। लाख शिकवों के बावजूद जो बात सबसे ऊपर है, वह है कि सबका अनंत स्नेह हमें मिला, बौद्धिक कसरतें होती रहती थीं। सरकारी शालाओं के सभी अध्यापकों के साथ हमारा नाता जुड़ा, हर्णे जी, साकल्ले जी (दोनों) शोभा और अन्य महिला अध्यापक, लक्ष्मी नारायण चौधरी जिनकी कहानी कहने की कला और बच्चों की कविताएँ दूर-दूर तक फैलीं, चूँकि केन्द्र में आए दिन होने वाली बैठकों में अन्य इलाकों से भी शिक्षक आते थे, इसलिए टिमरनी, खिरकिया, सिवनी आदि कई इलाकों के अध्यापकों से गहरा नाता जुड़ा, जिनमें उमेश चौहान, नेपाली जी आदि कई नाम याद आते हैं।

एक हिन्दी रचनाकार के रूप में हरदा में बिताये डेढ़ साल मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण थे। इसी समय हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री प्रेमशंकर रघुवंशी के आत्मीय स्नेह का पात्र बना। उनसे लगातार बातचीत होती और बहुत कुछ सीखने को मिलता, एक रोचक प्रसंग याद है, कैरन ने घर में दीवार पर, नो स्मोकिंग का छोटा एक स्टिकर लगाया, प्रेमशंकर घर आए, चाय के बाद सिगरेट पीने लगे, कैरन ने स्टिकर की ओर इंगित किया, प्रेमशंकर बोले, फिर तो मैडम आपको बाहर जाना पड़ेगा।

एक-दो बार माणिक वर्मा से भी मिला, अशोक वाजपेयी (जाने माने नहीं, हरदा वाले जो कम जाने गए) नरेन्द्र मौर्य मेरी कविताओं को सुनते और संशोधन के सुझाव देते। नरेन्द्र मौर्य से भी मुलाकात हुई, पर उनसे कभी जुड़ न पाया, उन दिनों मैं युवावस्था के आदर्शों में बंधा था, जिनमें नरेन्द्र मौर्य का आचरण ठीक नहीं बैठता था। बाद में मेरे इस तरह के आग्रह, मेरी सीमा बन गए और हिन्दी के बहुत सारे कवियों, कथाकारों से मैं जुड़ नहीं पाया।

हरदा के अनुभवों में सबसे महत्वपूर्ण जो बातें याद आती हैं, वे सामाजिक राजनैतिक प्रसंग ही हैं। केन्द्र में एक आयरिश समाजवादी व्यक्ति फिलिप बर्न भी था, वह शहर के एक छोर पर (मिल्क डेयरी से आगे) वर्कशाप में काम करता था। यह अनवर का अनोखा

प्रोजेक्ट था, जिसमे वह बतौर स्थानीय बढ़ई था। अन्य श्रमिकों को मशीनो का उपयोग करने का प्रशिक्षण दिया जाता था, फिलिप की अलग दुनिया थी, जिसमें बाकी लोग शामिल न थे। अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध के उन वर्षों में देश के हिन्दी क्षेत्रों में सांप्रदायिकता का विष फैलता जा रहा था, हर रोज की बातचीत में यह दिखता था, जहर उगलते परचे बाँटे जा रहे थे। दीवारों पर नारे थे - हिन्दुस्तान में रहना है तो हिन्दू होकर रहना होगा। ऐसा दिन भी आया, जब बाबरी मस्जिद को तोड़कर बनाए जाने वाले मंदिर के लिए भेजे जाने वाली ईंटों के शिला पूजन की फेरियां लगने लगीं। मैं सिंधी कालोनी में रहता था, पास ही पुराने गांधीवादी बुजुर्ग सोकलजी के मकान में ऊपर संस्था की लाइब्रेरी थी नीचे एक ओर दफ्तर और दूसरी ओर अनवर और अंजली का घर था।

लाइब्रेरी में युवाओं से बातचीत होती, डर लगता था कि इंदौर और देवास की तरह यहां भी कभी भी दंगे छिड़ जाएंगे। हरदा छोटा शहर था, पर गली कूचों में भी आबादी घनी बसी थी। मैंने युवाओं को दंगे के खिलाफ तैयार होने को कहा। इन दिनों मैंने अनवर को अथक मेहनत करते देखा, जो मेरे लिए रोमांचक अनुभव था। अनवर कभी अकेले, कभी मुझे साथ लेकर शहर के बुजुर्गों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के पास जाते और उनसे यह वादा लेते कि जो कुछ भी हो जाए, हम शहर में दंगे नहीं होने देंगे। मुझे लगता था कि इस तरह हमें सफलता नहीं मिलेगी (बाद में मैंने अनुभव किया कि अनवर की समझ बहुत गहरी थी और उन दिनों हरदा में दंगो को रोकने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। यह हरदा के इतिहास में लिखा जाना चाहिए), मैं युवाओं की टीम तैयार करने की कोशिश करता रहा, पर माहौल इतना सांप्रदायिक था कि कोई सार्थक-हस्तक्षेप संभव नहीं लगता था, फिर मिलाद-उन-नबी का जुलूस और एकलव्य की पहल पर शहर की कई युवा संस्थाओं द्वारा पान सुपारी बांटने का दृश्य, वह अद्भुत अनुभव था। 'ला इलाही इल्लिललाह' सुनकर मैं आंतकित हो रहा था, पर सब कुछ शांतिपूर्वक हुआ, फिर यही दृश्य रामलीला के बाद दशहरे में रावण के पुतले जलाने के बाद देखा। जब मुसलमान भाइयों ने हिंदुओं को पान-सुपारी खिलाई। उस साल इंदौर में भयंकर दंगे हुए थे, पर हरदा शांत रहा, उन्हीं दिनों एक रात हरदा में बिजली चल गई, मैं इंदौर के दंगों की खबरों से बहुत उदास था। लोड शेडिंग के दौरान पूर्णिमा का चाँद खिला, जमीन पर चाँदनी बिछ गई। मैंने एक छोटी कविता लिखी थी - लोड शेडिंग पूर्णिमा की रात

आस्मान में चाँद नहीं
तुम हो
ज़मीन पर
बिछी

नर्म हलकी ठंड
ओढ़ उसे
सुगबुगा रहा अंधेरा
मेरे अंदर।

अंदर सुगबुगाता अंधेरा मेरा डर, मेरी उदासी थे। उन दिनों बहुत भावुक था, आज भी हूँ।

युवाओं की छटपटाहट चारों तरफ दिखती थी। खास तौर पर लड़कियों में यह आसानी से देखा जा सकता था। लाइब्रेरी में आती एक लड़की, वंदना पालीवाल शहर में अपने मामा के घर आई थी, उसकी बेचैनी को देखकर ही मैंने 'छोटे शहर की लड़कियाँ' शीर्षक से कविता लिखी।

उन डेढ़ सालों में हमने नुक्कड़ नाटक किए, कॉलेज में पढ़ाया, पता नहीं क्या-क्या किया। हेमलता मिश्र निजी कॉलेज में प्रिंसिपल थीं। उनसे पता चला कि स्थानीय कॉलेज (जहां प्रेमशंकर रघुवंशी, शुक्ला जी आदि) पढ़ाते थे और जहां इन दिनों धर्मेंद्र पारे पढ़ा रहे हैं, केमिस्ट्री अध्यापक ने आत्महत्या कर ली थी। वह अच्छा शख्स था, जिसमें अपने विषय और विद्यार्थियों के प्रति अद्वितीय प्रतिबद्धता थी। यह जानकर मुझे तकलीफ हुई कि उसकी मौत के बाद विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए केमिस्ट्री का शिक्षक उपलब्ध नहीं था। मैंने निःशुल्क पढ़ाया। मैंने मिडिल स्कूल के बाद हिन्दी में विज्ञान पढ़ा नहीं था। इसलिए मेरे लिए यह कठिन काम था। उन दिनों मैंने जाना कि हिन्दी में जिस तरह की भाषा में विज्ञान की सामग्री लिखी जाती है, वह हिन्दी भाषियों के खिलाफ षड़यंत्र है। शब्दावली का चयन देखकर लगता था कि तकनीकी शब्दों को बनाने वाले कब्जियत का शिकार रहे होंगे। अधिकतर शब्दों की उत्पत्ति के बारे में हिन्दी तो क्या संस्कृत के अध्यापकों को भी कुछ नहीं पता था। एक दिन अंग्रेजी longitudnal के लिए हिन्दी में शब्द दिखा 'अनुदैर्ध्य' बहुत सोचकर पकड़ न पाया कि कैसे यह शब्द बना। केन्द्र में बी.एससी. पास किए गोविन्द से पूछा, उसे भी कुछ पता न था। बहुत सोच कर खुद ही समझा कि 'ध' नहीं 'घ' होना चाहिए, अनुदैर्घ्य, अपनी ही लंबाई के पीछे-पीछे जो है। इसी तरह अंग्रेजी के आम शब्द Reversible और Irreversible के लिए हिन्दी में उत्क्रमणीय और अनुत्क्रमणीय शब्द हैं, जिनका सिर पैर किसी को नहीं पता (प्रेमशंकर जी भी नही बता पाए थे) दुःखी मन से मैंने ज्ञानरंजन को लंबा खत लिखा था कि हिन्दी में विज्ञान लेखन और वैज्ञानिक शब्दावली के बारे में गंभीरता से सोचा जाना चाहिए, इन्ही चिंताओं को मैंने अपनी 'भाषा' सीरीज की दूसरी कविता में भी लिखा।

हरदा में कई अनोखे लोगों से मिला था, अनवर के माता-पिता, अली अशरफ और मोमिना दोनों बेहतरीन ज़हीन इंसान थे। उनके दिलों में हर किसी के लिए अगाध स्नेह था। अली अशरफ से मिलना मेरे लिए जीवन के कीमती क्षणों में से है। बाद में उनके संस्मरण पढ़कर मन में उनके प्रति और भी श्रद्धा बढ़ी। हरदा छोड़ने के महीने भर पहले हरसूद में बाँध विरोधी बड़ी रैली हुई तैयारी के दौरान दो बार वहां गया। होविशिका से जुड़े रावत और अन्य अध्यापकों के साथ पहले से ही परिचय था। अब भी तकलीफ होती है कि कैसे जीता जागता शहर डूब में खो गया। रैली के दिन पुलिस की पुरानी समस्या के डर से गया नहीं, अनवर ने पहले ही सावधान किया हुआ था।

हरदा में बिताये वे दिन मेरे अंदर हो रहे बुनियादी परिवर्तन के दिन थे। उन्हीं दिनों मैंने ऐसी कविताएँ-कहानियाँ लिखीं जो बाद में याद की गई। 'हंस' पत्रिका में उन दिनों लिखी दो कहानियां आई, सत्येन कुमार संपादित 'कहानियाँ' मासिक चयन में भी कहानी आई। इधर उधर कविताएँ प्रकाशित हुई। बाबा नागार्जुन से पहली मुलाकात हरदा में हुई। इसके पहले मेरी भाषा पर बांग्ला का प्रभाव गहरा था, वहाँ रहकर भाषा सुधरी।

मैं कोलकत्ता शहर में जन्मा पला हूँ, हरदा छोटा शहर था। छोटे शहर और पास के गाँवों की सामंती संस्कृति के साथ निजी स्वभाव में मेरा मेल होना असंभव ही था, संस्था में नियम था कि सार्वजनिक रूप से मद्यपान नही करना है। चूँकि निजी तौर पर हमलोग दारू पीते थे, इसलिए मुझे यह पाखंड लगता। एक बार जब अमरीका के न्यूयार्क शहर में पहली बार एक काला (अफ्रीकी मूल का) व्यक्ति (हैरोल्ड वाशिंगटन) युवा मेयर चुना गया, हमने इस खुशी में बीयर खरीदी और एक दो मित्रों को भी बुला लिया। इन्हें आम भारतीय युवाओं की तरह पीने का सलीका आता न था और मुझे हिदायत देनी पड़ी कि ढंग से कैसे पीना चाहिए। हरदा आवास के दौरान यह पाप कर्म मैंने किया।

हरदा छूट गया पर सचमुच कभी छूटा नहीं। वे सभी चेहरे रह-रह कर याद आते हैं। आश्चर्य होता है, कि इतने कम समय में इतना प्यार कैसे मिला। खुद पर भरोसा बढ़ता है, सचमुच हरदा प्रसंग यहां खत्म नहीं होता यह चलता रहेगा। जब भी वक्त मिलेगा, हरदा को कागज पर उतारते रहेंगे, अभी शुरूआत हुई है।

आई.आई.टी.परिसर हैदराबाद

हरदा, जहाँ सूख रहे हैं बचपन के कपड़े

कृष्णाकान्त निलोसे

उन दिनों जब हरदा जीवन्त शहर हुआ करता था, तब उसकी धड़कन की ध्वनि, हृदय में स्थित 'घंटाघर' के माध्यम से मीलों दूर तक सुनाई दे जाती थी। तब लोग कहते - ''देखो हरदा 'समय' को ध्वनि दे रहा है।'' और .. सचमुच जब भी जरूरत पड़ी, हरदा ने समय को अपनी आवाज दी है। देशप्रेम यदि आत्मा की घटना है तो वह ऐसी संस्कृति में पल्लवित होती है, जहाँ समय और संस्कृति अन्तर्गुम्फित होते हैं, और ... हरदा एक ऐसा कस्बा था, जहाँ संबंधो के पवित्र ताने-बाने की व्यवहार के करघों पर बुनाई हुआ करती थी। इसी भावना द्वारा अभिसिंचित हरदा की माटी ने बच्चों से बूढ़ों तक के हृदय में देशभक्ति की भावना को जन्म दिया। लड़कपन की उस उम्र में विधवा माँ का इकलौता बेटा होते हुए भी, हरदा मिडिल स्कूल के पास के थाने पर तिरंगा फहराऊँ, फिर चाहे सीने पर गोली ही क्यों न खानी पड़े, यह मेरी आत्मिक अभिलाषा थी।

स्मरण रहे प्रार्थना की कोई भाषा नहीं होती। अजनाल का प्रवाह हरदा के कल्याण के लिए एक अहोरात्र प्रार्थना है नदी की। उसका गतिवान बना रहना ही, हरदा का गतिवान बना रहना है। एक बंध की तरह अजनाल प्रकृति का एक कवच है, हरदा की सुरक्षा के लिए। इस परंतपा नदी में निर्मल जल सतत् प्रवाहित होता रहे - यही मंगल कामना है।

एकान्त में
देकर स्मृतियों को आमंत्रण
उतरता हूँ

नींद का मुहाना बार-बार
पहुँचता हूँ
सपनों के घाट पर
जहाँ सूख रहे हैं
मेरे बचपन के कपड़े
जहाँ आज भी सूख रही है
माँ की चिन्दा-चिन्दा होती साड़ी
सूख रहा है
पिता के रोपे दरख्त का पत्ता-पत्ता
हरहराती हवा में
काँपता हुआ

हाँ ... स्मृतियों के एकान्त में अजनाल नदी के घाट पर आज भी सूख रहे हैं मेरे बचपन के कपड़े। सूख रही है माँ की चिंदा-चिंदा होती साड़ी, और अभी भी थमा हुआ है समय, पुकारता मुझे - 'कृष्णा कृष्णा।'

समय के अंतराल से आच्छन्न घटनाओं और चरित्रों को, स्मृति के निकुंज से शब्दों के संसार में आहूत करना, सिर्फ कठिन ही नहीं, बहुत कठिन कर्म होता है तब, शब्द और स्मृति के बीच, बहुत कुछ छूट रहा सा लगता है। संभवतः .... यही अपने भोगे हुए समय की वह अजीब सी बेचैनी है, जो छिटककर दूर जा बैठी हो, 'अजनाल' नदी की सफील पर, अपना मुँह फुलाए न जाने किस अनंत की खोज में। हरदा मेरी स्मृति के लिए कभी विस्मृत नहीं रहा, आधी-सदी बीतने के बाद भी नहीं। सिर्फ अनुपस्थित जरूर रहा है, खाली विरामों की तरह जो शब्दों के बीच रहते हैं। विगत छः दशकों से वह मेरे मानसपटल से अदृश्य भले ही रहा हो, अर्थहीन नहीं। बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा, वे ऐसे रिक्त स्थान हैं, जहाँ शब्द के स्थगित अर्थ वास करते हैं। उनकी सुरक्षा और महत्व इसी में है, कि वे अदृश्य रह कर चेतना को प्रज्वलित करते रहें। एक बड़ा और महत्वपूर्ण कार्य मेरे व्यक्तित्व को गढ़ने का जो रहा है, वह इन्हीं अदृश्य स्मृतियों के द्वारा सम्पन्न हुआ है।

स्मृतियाँ काल की समग्रता को कभी अपने में जस का तस स्वीकार नहीं करती, लेकिन संघर्ष के वे क्षण जो आत्म-स्मृति के रूप में काल के द्वारा तराशे जाते हैं, वे जरूर थके-हारे आदमी का घर-बासा, या शरण-स्थली बनते हैं। यह महज संयोग नहीं, कि काल के जिस अंश को हरदा में रहते हुए मैंने जिया है, उसने जरूर स्मृति का आकार ग्रहण कर लिया है। स्मृति भी ऐसी, जो अपनी समग्रता में उपस्थित हो, अक्सर मेरे एकान्त का दरवाजा खटखटाती रहती है, फिर वह चाहे दुखद या फिर, सुखद क्यों न हो, अपने आपको और

साफ चमकीली बनाती जाती है। अपने अतीत के अंधेरों में भटकती हुई किसी अभिशप्त आत्मा की आवाज कतई नहीं। तब वह कविता बन जाती है अनंत में गूंजती, अपने होने के अर्थ उजागर करती हुई।

हरदा न तो मेरा जन्म स्थान रहा और न ही पिता का। हरदा के पास ही 30-40 कि.मी. दूर, ग्राम पिपलानी (जो अब डूब में है) मेरे पिता की जन्म स्थली रही, लेकिन उनका कर्म क्षेत्र बाहर ही रहा। पिता की असमय मृत्यु के बाद लौटना पड़ा हरदा, तब उम्र रही होगी 8 वर्ष। मराठी क्षेत्र, (चन्द्रपुर के पास टढ़ाली) में जन्म। इस कारण हिन्दी भाषी होते हुए भी 'माय-बोली' मराठी हुई। पिता के न रहने पर हरदा शरण स्थली बना। हिन्दी स्कूल (मोहल्ला कुल हरदा) की तीसरी कक्षा में दाखिला और हिन्दी में आदेश न समझने के कारण प्रथम दिवस ही कक्षा मॉनिटर मरियम के एक चाँटे से एक दाँत बाहर आने के साथ ही हिन्दी का परिचय हुआ। उस चाँटे की गूँज तब तक मेरे मानस में गूंजती रही, जब तक कि मैनें हरदा मिडिल स्कूल की हस्त लिखित पत्रिका में 'मातृ-भूमि' शीर्षक से लेख नहीं लिख डाला। तब लोगों को भरोसा ही नही हुआ यह, उसी लड़के के द्वारा लिखा लेख है, जिसकी हिन्दी सुनकर लोग मजाक उड़ाते थे और जिसे भाषा समझ में न आने के कारण लड़की के हाथ का चाँटा खाना पड़ा। वैसे, सच कहूँ, भाषा का अन्तर्नाद तो आज तक समझ में नही आया है और तब, इस बात को छुपाते हुए मैं और भी टुच्चा हो जाता हूँ। इस आश्वस्ति के साथ, कि मेरे इस मुकाम पर पहुँचने के बाद, क्या कोई मरियम, भाषा को लेकर चाँटा मारने का साहस कभी जुटा सकेगी ?

नए शहरों या कस्बों की बात छोड़ें, तो हिन्दोस्तान में शायद ही ऐसा कोई कस्बा या शहर हो जिसकी अपनी कोई कहानी न हो। यह अलग बात है कि इतिहास की धूल में कुछ कहानियों के अंश या उनकी कड़ियाँ छिप जाती हैं। हरदा की भी अपनी कई कहानियाँ है। उतनी ही जीवन्त, जितनी कि होती हैं, इतिहास के पृष्ठों पर अभिनय करती हुई कहानियाँ। लखनऊ यदि अपने नवाबों की रंगीनियों के लिए जाना जाता हैं, तो हरदा भी अपने रईसों के आख्यानों के लिए कमतर तो कतई नहीं। हरदा में एक से बढ़कर एक रईस और मालगुजार हुए। प्रमुख रहे हैं, शुक्ल जी, बल्ली पटेल, भमोरी पटेल, सेठ लक्ष्मीनारायण बलवटे, राय साहब सेठ हरिशंकर, नंदा पटेल इत्यादि। ये नाम ऐसे हैं जिनके रइसी के किस्से बरसों बाद भी लोग के मानस पटल पर समय की गूंज बन उभरते रहते हैं, लेकिन वहीं दूसरी ओर हरदा में दो व्यक्ति ऐसे भी हुए हैं, जिनका होना आज भी मुझे नींद में बेचैन करता रहता है। यही नहीं, उन दोनों व्यक्तित्वों को हरदा की पहचान से हटा दें, तो सच कहता हूँ हरदा, हरदा ही न रहे। कॉमरेड लच्छु कप्तान से ही सीखी है मैंने, संघर्ष की बारहखड़ी। चालीस के दशक में जब लोग लाल झंडे से बिदकते थे तब कामरेड ने लाल

झंडे का वर्चस्व स्थापित किया। कॉमरेड लच्छु कप्तान आजीवन सर्वहारा वर्ग की आवाज बुलंद करते रहे। सरमायेदारों के खिलाफ उनका हवा में घूंसा तानकर भाषण देते रहना, मुझे लेनिन की याद दिलाता रहता था। हरदा को ही कप्तान अपना बे दरो दीवार का घर मानते थे, और दलित और बे-सहारा लोगों को अपना रिश्तेदार। ऐसी ही हरदा की जनवादी रंग में डूबी बहन मंजूला ढमढरे की जिंदादिली याद आती है। हरदा ने उन्हें क्या दिया, यह तो नहीं मालूम लेकिन कप्तान ने हरदा को जो दिया वह कभी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा। कॉमरेड लच्छु कप्तान को याद करते हुए, उनके बारे में बाबा तुलसी दास की ये दो पंक्तियाँ काफी हैं -

जे पर भनित सुनत हरषाहीं ।
सो वर पुरूष बहुत जग नाहीं ।

नहीं, बाबुलाल, यह नाम हरदा के लिए बीता हुआ नाम कभी भी नहीं रहेगा। क्योंकि, हरदा अपनी स्मृतियों के लिए भूला हुआ समय कभी रहा नहीं है। अभी भी हरदा की संवेदना की कोरें टूट-फूट नहीं गई हैं। वह अभी भी जीवन्त है, अपनी स्मृतियों की धड़कनों में। गुजरते हुए शहर के बीचों-बीच घंटाघर वाले चौक में, रात के गहरे सन्नाटे में सुनी जा सकती है, फौजी बाबूलाल की आवाज, आज भी। लगातार बड़बडाते हुए मृत या निश्चेष्ट नहीं हुई उसकी आवाज या गूँज। उसकी आवाज में युद्ध के प्रति घृणा का एक कसाव था, कि क्या कुछ पकड़कर तोड़ डाले, एक कशिश कि जाकर चट्टानों से भिड़ जाये, एक उन्माद कि बाल नोच डाले, एक दुख जिसमें चारों तरफ नंगे काँटे ही काँटे।

लोग उसे पागल कहते थे, क्योंकि वह उजालों से घबरा, अंधेरों से बात करता था। जीवन की आहट वाली देहरी लाँघ, जड़ता की चुप्पी में खो जाता था। आकाश की ओर वह अपनी आँखे खुली रख अपने खोए हुए समय को नापता हुआ, निरंतर चलता ही चला जाता था। बिना थके लगातार, मरे हुए दिन की सूनी आँखों से न जाने किस अनंत में वह टटोलता रहता था, मनुष्य का भरोसा। क्या कहा .... आपने नहीं सुना है उसका अंतहीन विलाप, विश्व युद्ध में मानवता की मृत्यु पर ?

हृदय से सोचने और जीने वाले शहर का नाम है, 'हरदा'। यहाँ जो भी आया उसी का होकर रह गया और जिन्हें नियति हरदा से बाहर ले गई, उनके लिए भी हरदा का होना साथ-साथ रहा है ठीक ही कहा गया है - ''उधौ मोहे बृज बिसरत नाही'' । जैसे हर शहर का इतिहास होता है, वैसे ही उसकी अंतरात्मा भी होती है। उन दिनों जब हरदा जीवन्त शहर हुआ करता था, तब उसकी धड़कन की ध्वनि, उसके हृदय में स्थित 'घंटाघर' के माध्यम से मीलों दूर तक सुनाई दे जाती थी। तब लोग कहते - देखो हरदा 'समय' को ध्वनि दे रहा

है। और सचमुच जब भी जरूरत पड़ी, हरदा ने समय को अपनी आवाज दी है। देशप्रेम यदि आत्मा की घटना है तो वह ऐसी संस्कृति में पल्लवित होती है, जहाँ समय और संस्कृति अन्तर्गुम्फित होते हैं, और हरदा एक ऐसा कस्बा था जहाँ संबंधो के पवित्र ताने-बाने की व्यवहार के करघों पर बुनाई हुआ करती थी। इसी भावना द्वारा अभिसिंचित हरदा की माटी ने हर व्यक्ति के हृदय में देशभक्ति की भावना को जन्म दिया। लड़कपन की उम्र में विधवा माँ का इकलौता बेटा होते हुए भी, हरदा मिडिल स्कूल के पास के थाने पर तिरंगा फहराऊँ, फिर चाहे सीने पर गोली क्यों न खानी पड़े, यह मेरी आत्मिक अभिलाषा थी। मनुष्यता और भाईचारा हरदा की पहचान रहा है। रहीम पिंजारा मेरा नाना, तो अकबर पिंजारा मेरा मामा रहा है। ईद की सिवइयों की मिठास और मोहर्रम पर बाँटे जाने वाले शर्बत का स्वाद, आज भी मेरी जुबान पर जस-का-तस है। मुहर्रम पर पढ़े जाने वाले मर्सिया के बोल निकलते तो होठों से थे, वे बोल बरसों बाद आज भी हर मुहर्रम पर मेरी स्मृतियों में तरो ताजा हो उठते हैं। हरदा में रहते हुए, मैं कभी यह जान ही नहीं पाया कि जो धर्म मनुष्य को ऊँचा उठाने की बात करता है, वही दूसरे धर्म से सामना होती ही उसके लहु का प्यासा क्यों हो जाता है ?

इन दिनों साल में एक बार एक मुस्लिम साँई हरदा आया करता था। उसके हाथों में विभिन्न प्रकार के कड़े, उंगलियों में नाना रंगों की अँगूठियाँ और गले में आधा दर्जन से ज्यादा मालाएँ बच्चों के लिए कौतूहल का विषय होती थी। लम्बे लबादे पर उसकी लम्बी कत्थई दाढ़ी जिसपर हाथ घुमाते हुए, वह शुन्य में देखते हुए जब 'अल्ला-अल्ला' पुकार उठता था, तो लगता था किसी प्राचीन युग का मसीहा धरती पर उतर आया हो। इसी प्रकार एक चमत्कारी सिद्ध पुरूष 'बुखारदास बाबा' अक्सर हरदा आते। वे सिंगाजी सम्प्रदाय के निर्गुणी संत थे, और खेड़ीपुरा में स्व. राधाकृष्ण मण्डलोई मुंशी जी के पड़ोस में निवास करने वाले नन्नू मिस्त्री के (नत्थू मिस्त्री के ससुर) यहाँ ठहरते थे। वे जब आते तो लगता था कि स्वयं सिंगाजी लोगों के बीच आ गये हो। उन दिनों मलेरिया बहुत आम बात थी, मलेरिया ग्रस्त जब उनके पास जाता था, तो बाबा उस पर अपना कंबल उड़ाकर उसका बुखार अपने ऊपर ले लेते थे। लोगों का बुखार ले लेने के कारण ही उनका नाम बुखारदास बाबा पड़ गया था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि, जब लोग पूछते, कि बाबा जब आप लोगों का बुखार अपने पर ले लेते हो, तो क्या आप को कष्ट नहीं होता? बाबा हँसते हुए कहते - ''अरे भाई बुखार तो इस कंबल को आता है मुझे थोड़े ही''। ऐसा कह वे ओढ़ा हुआ कंबल बाहर रख देते, लोग देखते कि अब बाबा नहीं, कंबल धूज रहा है। बाबा बुखारदास एक सिद्ध योगी थे, आज यदि वे हरदा के लोगों के बीच हैं तो कल उन्हें हरिद्धार के घाट पर गंगा में डुबकी लगाते हुए देखा जा सकता था। वे अक्सर चेतना की अखण्डता पर बोलते हुए, कब चेतना को लांघ अनहद की सीमा में पहुँच जाते, पता ही नहीं चलता था। हरदा क्षेत्र की देशज बोली में वे लोगों की बीच एक अबोध बालक की सरलता से ब्रह्माण्ड के गूढ़ रहस्यों को

परत-दर-परत उघाड़ते जाते थे। ईश्वर कहाँ है, अगर उसका अस्तिस्व नहीं भी है, तो उस योगी के रूप को जो विश्व माँ की गोद सा विस्मृत हो चुका है और जो शरीर से परे हमारी चेतना में समाया हुआ है, प्रणाम करता हूँ। बुखारदास बाबा क्या थे और कैसी थी उनकी चेतना ? इसे शब्दों में बांधने के लिए सारी उम्र भी बीत जाये तो वह भी कम है। उनकी चेतना शब्दातीत है।

हरदा में एक नदी बहा करती थी उन दिनों, अजनाल था उसका नाम। सुनते हैं, वह आज भी बही जा रही है। अजनाल कब से बहती चली आ रही है, यह कोई नहीं जानता। हरदा भी नहीं, जब नहीं था हरदा अस्तिस्व में, तब अजनाल थी। ठीक इसी तरह मैं नही जानता, कि कब से वह (अजनाल) मेरे भीतर बहा करती है। मेरे भीतर जो अजनाल बहती है, सुरम्य हैं उसके घाट, और उन घाटों पर आज भी सूख रहे हैं मेरे बचपन के कपड़े। नदी का होना ही प्रवाह है। अपने अस्तित्व के लिए सतत् प्रवाहित होते रहना ही उसकी अनिवार्यता है। जीवन का यह पाठ मैंने इसी नदी से सीखा है। नदी, पहाड़, झरने सिर्फ अपने आप में सुन्दर नहीं होते, वे अपने होने से आस-पास की दुनिया को भी अलौकिक आभा से मंडित कर देते हैं। कल्पना कीजिए कि यदि हरदा में नही बहा करती अजनाल, तो हरदा कैसा होता ? जरा सोचिए चकरी घाट पर बैठ, नदी के प्रवाह को देखते हुए मैं सोचने लगता कि क्यों नहीं व्यक्तित्व मेरा नदी बनता। अजनाल जिस तरह हरदा को घेरते हुए बहती है, लगता प्रकृति ने हरदा के गले में ब्रह्म-सूत्र (जनेऊ) पहना दिया है। अजनाल बहुत ही भावुक संवेदनशील नदी है। वह छरहरी है, यही उसका सौन्दर्य है। उसकी यह भावुकता सिर्फ बरसात के दिनों में देखने को मिलती है। मिजाज में बिल्कुल पहाड़न। उन्माद में कब बिफर जाए, कोई नहीं जानता। उसके इसी स्वभाव के कारण मैं उससे प्रेम करने लगा था। उन दिनों, वह मेरी गंगा, वोल्गा और नर्मदा थी। हरदा ने उस पहाड़न को बाँधे रखने के लिए एक लम्बी दीवार बनाई थी। उसे हम सपील कहते थे। उन दिनों वह सपील मेरी चेतना का 'टेक ऑफ' हुआ करता था। इसी सपील पर रात और साँझ के मुहाने पर टँगे समय पर बैठ, अजनाल के जल में विचार की वंशी डाल, मैं अपने प्रश्नों के उत्तरों की मछलियाँ पकड़ा करता था। यह अलग बात है, कि ये मछलियाँ मेरी पकड़ में कभी आई ही नहीं।

नदी के किनारे बैठ, मैं अक्सर सोचा करता था कि लोग नदी के शोर की, उसके बतियाने की शिकायत क्यों करते हैं ? नदी बतियाएगी नहीं तो बाँटेगा कौन दर्द हमारा, मिलेगा कहाँ हमारी बाँसुरी को सुरताल। नदी के संवादों ने जाने कितनी भाषाएँ रच डाली हैं। कितनी ही संस्कृतियों में भरे है, उसने अपने रंग। नदी का चुप हो जाना, तो होता है थम जाना समय की धड़कनों का। नदी गुनगुनाएगी नहीं तो पाँखी गीत कहाँ गाऐंगे और ... जब नहीं होगी कविता, सृष्टि का अर्थ कहाँ रह पाएगा ?

लगे हाथ, अजनाल से मैं अपना रिश्ता भी बता दूँ कि वह मेरी दूसरी माँ है। उसके जल से यह देह पोषित हुई मैं इस माँ का कर्ज कब उतार पाऊँगा, यह मैं नही जानता। इस जन्म में तो नहीं। यथार्थ को भ्रम के एक रूप और भ्रम को यथार्थ के एक अलग रूप में पहचानना समान रूप से आवश्यक है। आवश्यक इसलिए, कि भोली-भाली जनता को किसी भी प्रकार के छद्‌म या पाखण्ड से यदि बचाया नहीं गया, तो यह प्रवत्ति मानव चेतना का सबसे बड़ा अहित करती है।

आज से पचास साल पहले मैंने अपने शहर हरदा को 'सहजानंद' में डूबी हुई अवस्था में देखा था। उन्हीं दिनों उस पवित्र भूमि में पाखण्ड को अवतरित होते देखा। हरदा की आज की पीढ़ी यह सोच भी नही पाएगी कि शहर का अतीत इतना भोला था कि कोई भी पाखण्डी सहजता से उसको गुमराह कर उसकी श्रद्धा और विश्वास को आहत कर चलता बन सकता था। लेकिन यह हुआ है हरदा शहर में सन् 45-47 के करीब 'कल्कि भगवान' के रूप में एक पाखण्डी धूर्त का अवतरण होना। इस कलयुगी भगवान को अवतरित करने का माध्यम थी, 'डंडा वाली बाई'। पहले कभी इनके पति न्यायमूर्ति भट्ट, हरदा में जज थे, जो बाद में म.प्र. उच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश बने। 'डंडे वाली बाई' पाखण्डी तो नही मानसिक रूप से जरूर बीमार मानी जा सकती थी, वे कृष्ण प्रेम की चेतना में इतनी एकाकार हो गई थी, कि वे उस धूर्त को कल्कि अवतार मान बैठी। भगवान हरदा आये, तब हरदा जगह-जगह बन्दनवारों से सज चुका था। लोग आल्हादित थे कि भगवान हमारे बीच आ रहे हैं। कुछ सरल लोग तो अपना सर आकाश में उठाये भगवान के विमान की राह देखते तो कोई ट्रेन की राह देखता। मतलब यह कि सारा शहर कृष्ण रंग में रंग चुका था गिरधर के संग नाच-नाचने की आकांक्षा तो स्त्री-पुरूष सभी को हो रही थी। कहने का मतलब यह, कि भोली-भाली जनता भक्ति के प्रभाव में इस कदर आ चुकी थी, कि बिना सोचे लोग डंडे वाली बाई के रौ में आ, उस भगवान के चक्कर में आ गए। आना ही था, आखिर चक्करधारी अवतारी जो थे। नर-नारी, आबाल-वृद्ध, सेठ-साहूकार, वकील-मुवक्किल और डाक्टर-रोगी सभी को प्रभु ने अपनी माया के जाल में ऐसा बांधा, कि लोगों को अपने लूटे जाने का होश ही नहीं रहा। भगवान जब ट्रेन के फर्स्ट क्लास से उतरे, तो उनको रिसीव करने के लिए एक बहुत बड़ा हुजुम फूल-मालाएँ लेकर खड़ा हुआ था। भगवान स्वयं शार्ट स्किन के सूट में और राधा जी जार्जेट की साड़ी में, लिपस्टिक और स्नो पावडर से पुती हुई थी। एक चलित समारोह में भगवान का जुलूस गढ़ी मोहल्ला में स्थित सेठ हरिशंकर के यहाँ पहुँचा। रायबहादुर सेठ हरिशंकर उन दिनों अपने दयालु स्वभाव के लिए लोगों में प्रसिद्ध थे, उन्होंने अपने घर के सारे गहने राधा जी और भगवान को अर्पित कर दिये। यहाँ मैं लूटे जाने वाले लोगों के नाम उजागर नहीं करना चाहूंगा, लेकिन इतना अवश्य कहूंगा कि हर आदमी जो भगवान की शरण में पहुँचा, वह लूटा गया और बेवकूफ जरूर

बनाया गया। भगवान के चरण धोकर उनका चरणामृत लोगों के बीच प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता था। उस चरणामृत को पाने के लिए लोग एक दूसरे पर टूट पड़ते थे। प्रभु को जो नैवेद्य लगाया जाता था, उसे झूठन तो नही कह सकते, क्योंकि यह भगवान का अपमान होता, इसलिए लोग उसे प्रसाद कहकर श्रद्धा से स्वीकार करते। मुझे भी यह प्रसाद मिला, लेकिन मैंने लोगों की आँख बचाकर उसे सड़क पर फेक दिया। डर जरूर लग रहा था कि भगवान मुझे पाप जरूर देगें, दिन में प्रभु लोगों को दर्शन एवं, धर्मोपदेश देते और रात में नगर की सुन्दर महिलाओं को गोपियाँ मान महारास रचाया जाता था। भला हो कुछ नास्तिक लोगों का जिन्होंने आंदोलन कर पुलिस प्रशासन को जगाकर कलयुगी भगवान का भंड़ाफोड़ किया। भंड़ाफोड़ करने वाले लोगों में प्रमुख थे, आर्य समाज के अग्रणी, मिश्रजी वकील साहब और उस धूर्त भगवान को हरदा से भागना पड़ा। उस भगवान के हृदय में जो हरदा बस गया था उसे उन्होंने जस का तस छोड़ गोपुर के लिए प्रयाण किया। क्या आपने कहीं और कभी ऐसा भोला शहर देखा है ? मैंने तो नही।

वैसे इस बात को नकारा नही जा सकता, कि भगवान और राधा जी बेहद कोमल और सुंदर थे। उनके चेहरे पर बेहद नूर था। हाँलाकि यह बात और है कि भक्तों को दर्शन के पूर्व वे घंटों मेकअप के लिए समय लगाते, और चेहरों पर रंग-रोगन पोतते थे। लोग जब कहते - ''प्रभो आखिरी समय करीब आ रहा है, प्रलय अब दूर नहीं, कृपा कीजिए भगवान और ... तब, भगवान अपना स्मित बिखेरते हुए कहते - ''चिन्ता न करो तुम मेरे हृदय में हो। तुम सिर्फ मुझे अपना प्रेम दो।'' और ऐसा कहते वक्त उनकी निगाह अक्सर महिला मंडली की ओर होती थी। 'प्रेम' शब्द का उच्चारण सुनते हुए, उन दिनों प्रेम शब्द को बोलना और सुनना, छोटे बच्चों के लिए एक अलिखित निषेधाज्ञा थी, यह निषेध सिर्फ स्त्री-पुरूष के प्रेम पर ही था। तब मैं यह सुनते आया था कि भले लोग प्रेम नहीं करते। वैसे हरदा में लोग प्रेम जरूर करते थे, लेकिन छुप कर।

मेरी प्राथमिक शिक्षा को लेकर स्मृति जो बताती है, वह धुंधली है। दूसरी मराठी के पाठ जो मैंने पिता के रहते हुए मुर्तिजापुर (महाराष्ट्र) में सीखे, वे पौन सदी बीतने के बाद भी जस के तस याद हैं। नहीं भूल पाया हूँ गलती, कक्षा में प्रवेश के साथ लड़की के हाथ का चाँटा और दाँत के टूटने के अलावा कोई भी घटना मेरे बाल मस्तिष्क पर प्रभाव नहीं डाल पाई है। प्राथमिक शाला तो शिक्षा की वह सीढ़ी होती है, जहाँ से ज्ञान के आकाश की बुलंदियों को छूने की इच्छा होती है। यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं मिला। मिडिल स्कूल में पहुँचते ही परिदृश्य में आमूल-चूल परिवर्तन होता है। बड़े-बड़े दरख्तों से आच्छादित, विस्तार से कई प्रखण्डों में फैला शाला भवन, उसका सुंदर कांफ्रेंस हॉल, खेल का मैदान और बैठने और लिखने के लिए सुंदर डेस्क यह सब हमें मुहैया हुआ। यहीं मिडिल स्कूल में आकर मेरी

मुलाकात गुरू-शिष्य की एक ऐसी परम्परा से हुई, जो न तो समय के सस्ते भुलावों से भ्रमित होती है और न ही, जोखिम भरी चुनौतियों से मुँह मोड़ती है। यहीं आकर आत्म संघर्ष और भारतीय संस्कृति के गुरू-शिष्य संम्बधों से साक्षात्कार हुआ।

अपने इन्हीं साधुमना गुरूओं के बीच बैठ भारतीय सभ्यता के आत्मबोध का पाठ पढ़ा, जिसके प्रकाश में मैं समझ पाया आदमी के स्वयं आदमी होने का अर्थ। मिडिल स्कूल के प्रधानाचार्य स्वर्गीय गंगा विष्णु जी जोशी (दद्दा) ऋषि परम्परा से थे। इसीलिए उन दिनों हरदा मिडिल स्कूल एक गुरूकुल लगता था। यद्यपि उन दिनों हिन्दी राष्ट्र भाषा घोषित नहीं हुई थी, फिर भी, हिन्दी के बीज गहरे बोने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अंग्रेजों के राज्य में उनका साहस तो तब सराहनीय था, जब स्कूल में तिलक जयन्ति मनाई जाती थी, और अंग्रेजी शासन से डरे बिना सभागृह के ब्लैक-बोर्ड पर रंग बिरंगी चाक से तिलक महाराज का राष्ट्र के नाम लिखा हुआ संदेश होता था 'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर रहूँगा। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत भाषण होते थे, संकल्प लिये जाते थे। वन्दे मातरम का गान गाते हुए सारा विद्यालय एक अनूठी राष्ट्रीय चेतना की लहर से आलोड़ित हो उठता था। ''सर बांधे कफनवा हो, शहीदों की टोली निकली'' और मोहे रंग दे बसंती चोला तब हमारे लोक प्रिय गान होते थे। मिडिल स्कूल में पढ़ते हुए तिलक जयन्ति पर जोश भरी राष्ट्रीय कविताएँ मैंने भी पढ़ी थीं। शीर्षक आज भी याद - ''बंद करागार में है देश मेरा, जाग यौवन जाग तोड़ो आज कारा।'' एक और कविता उन दिनों लिख डाली थी -

भारत तुझको बढ़ना होगा, बलि वेदी पर चढ़ना होगा
तोड़ डाल बंधन को अपने, आजादी को पाना होगा ।

हांलाकि इन कविताओं का पाठ मंच से थर-थर काँपते हुआ था, लेकिन मुझे प्यार करते हुए दद्दा की आँखों की कोरें जरूर भीग गई थी। इस प्रकार यह मेरी अपने गुरू के द्वारा काव्य दीक्षा हुई, और ... मैं कवि कहलाने लगा। उन दिनों श्रेष्ठ शिक्षकों की एक जमात थी। शिक्षा के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक नाम थे। सर्व आदरणीय एवं पूज्य गंगा विष्णु जी जोशी (दद्दा), देशपाण्डे सर, आर. लाल सर, मुल्ये मास्टर, डी.सी. शर्मा, केकरे सर, तिवारी सर, दवे सर, श्री किशन जी गुहा, हरगोविन्द गार्गव साहेब, शुक्रे गुरूजी, गौर सर, लोकरे सर, अजगर अली सर, मेहता सर, जी.के. जोशी सर, विजय तिवारी, नारायण प्रसाद जी गुहा इत्यादि। ये कुछ नाम याद हैं जिन्हें मै प्रातः स्मरणीय मानता हूँ ।

उन दिनों शाला में पढ़ते हुए उत्सव एवं वैष्णव भाव की प्रतीति होती थी। माता-पिता तो सिर्फ जन्म देने तक थे, बच्चे को मनुष्य बनाना हमारे गुरूओं का काम था। माँ बच्चे को जन्म देते समय जरूर उदात्त होती है, लेकिन गुरू जानता है पुष्प को विकसित कर फल

के रूप में प्रस्तुत करना। और यह गुरू के जन्मजन्मान्तर की साधना है। उनके पुण्यों का फल है, कि आज उनके असंख्य विद्यार्थी जगह-जगह अपने नाम का परचम लहरा रहे हैं। स्व. जोशी दद्दा ने उस दिन मेरी पीठ थपथपाई न होती, तो मेरे भीतर का कवि तो तभी मर गया होता। मैं अपना काव्य जीवन, श्रद्धांजली रूप में 'दद्दा' को अर्पित करता हूँ।

उन दिनों हरदा 'उत्सव नगर' हुआ करता था। पहलवान सखाराम दादा, देश के नामी पहलवान थे, उनके पहलवानी के करतब किसी गामा पहलवान से कम नहीं थे। मोहल्ला-मोहल्ला अखाड़े हुआ करते थे। डोल ग्यारस और मोहर्रम पर ये अखाड़े अपना प्रदर्शन करते थे। खेड़ीपुरा के एक अखाड़े में जहाँ के खलीफा बाबू पहलवान और रद्दू पहलवान थे, मैं जोर करने जाता था। 79 वर्ष की आयु में आज भी मेरी मसल्स ताकतवर हैं, यह उसी अखाड़े का प्रतिफल है। होशंगाबाद जिले में हरदा, हॉकी का एक केन्द्र हुआ करता था। हिन्दुओं और मुस्लिमों के तीज त्यौहार, दोनो ही कौमें बड़े प्रेम से मनाती थी। हिन्दु-मुस्लिम दंगा क्या होता है यह हरदा में रहते हुए कभी कल्पना भी नहीं की। पूज्यनीय दादा भाई नाईक मध्यप्रदेश के विनोबा और हम सबके लाड़ले चाचा स्व. महेशदत्त जी मिश्रा जो अर्से तक पूज्य बापू के सचिव रहे, और जनता के बीच हरदा के गांधी के नाम से जाने जाते थे। ये दोनों ही हमारी राष्ट्रीय चेतना को प्रज्वलित करने का काम करते थे। शहीद ठाकुर गुलजार सिंह का त्याग भी हरदा के लोग कभी भूल नहीं पायेंगे। इसी श्रृंखला में स्व. चन्द्रगोपाल मिश्र, स्व. रामशंकर जी जोशी, श्री चंपालाल जी सोकल, सेठ सूरजमल सराफ , नर्मदा प्रसाद जी गार्गव, श्री जलखरे, श्री पटाले एवं श्री रामेश्वर अग्निभोज कुछ ऐसे नाम हैं जो स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन इतिहास में नक्षत्र की तरह चमकते हैं।

यही नहीं, पुरूषों के साथ महिलाएँ भी कंधे से कंधा मिलाकर आगे रही हैं, जिनमें प्रमुख हैं, श्री रामशंकर जी जोशी वकील साहब की माँ श्रीमती अयोध्या बाई जोशी, बिट्टन भुआ, लक्ष्मी बाई जलखरे, कमलाबाई, जस्सी शाह एवं ठाकुर सुमित्रा बहन इत्यादि। युवाओं में भाई मांगीलाल जी गुहा ने जो मार खाई उसे देख भूत भी भाग खड़े हुए थे। इस अवसर पर एक प्रसंग का स्मरण करवाना आवश्यक मानता हूँ, वह यह कि जब श्री रामशंकर जी जोशी सत्यागृह आन्दोलन में उतरे तब उनकी माँ श्रीमती अयोध्या बाई ने अपने बेटे को तिलक लगा एवं आरती उतारते हुए कहा 'बेटा मैं तुझे देश के लिए बिदा कर रही हूँ, अपनी माँ के सम्मान की लाज रखना।'

यदि पूज्य विनोबा ने कुछ दिन हरदा का आतिथ्य स्वीकार किया होता, तो जबलपुर की जगह हरदा को निर्विवाद रूप से 'संस्कारधानी' का दर्जा दिया होता। दादा भाई नाईक, जो मध्यप्रदेश के विनोबा माने जाते थे, और जिन्होंने अपना सर्वस्व सर्वोदय-आंदोलन के लिए निछावर कर दिया, उनके अकेले का त्याग ही देखकर विनोबा जी हरदा के बारे में कुछ

सोचते तो सही, कि जिस खदान का यह रत्न है, वह खदान कितने रत्नों से भरी हुई होगी। 1876 में अंग्रेज सरकार ने हरदा का कारोबार अपने हाथ में लिया और एक म्यूनिसपल कमेटी की स्थापना की। 1920 से लोकतांत्रिक ढंग से चुने हुए नुमाईंदों का कमेटी में लोक प्रशासन शुरू हुआ। बहरहाल, हरदा तो हरदा ही है, महाकौशल क्षेत्र में उससे कोई सुनियोजित शहर शायद ही कोई हो। शहर का ड्रेनेज सिस्टम कुछ इतने वैज्ञानिक ढंग से बनाया गया कि बारिश में पानी का जमाव कहीं होता ही नहीं है। मुख्य बाजार की संरचना भी कलात्मक है। सराफा, किराना बाजार और बजाजखाना का सुनियोजित ढंग से विस्तार अपने आप में अनोखा है, 'गूगल अर्थ' पर इस शहर की बनावट का सौंदर्य आप निहार सकते हैं। शहर को घेरती हुई अजनाल उसके सौंदर्य को और भी अधिक बढ़ा देती है।

स्मरण रहे प्रार्थना की कोई भाषा नहीं होती। अजनाल का प्रवाह हरदा के कल्याण के लिए एक अहोरात्र प्रार्थना है नदी की। उसका गतिवान बना रहना ही, हरदा का गतिवान बना रहना है। एक बंध की तरह अजनाल प्रकृति का एक कवच है, हरदा की सुरक्षा के लिए। इस परंतपा नदी में निर्मल जल सतत् प्रवाहित होता रहे - यही मंगल कामना है।

हरदा ने मुझे इतना कुछ दिया है, कि उसे वापिस लौटाना मेरे लिए संभव है ही नही। उसे कहाँ से छूऊँ और कहाँ छोड़ूँ, यह मेरी समझ से परे है। उस पर एक आंचलिक उपन्यास लिखा जाए, तो भी वह कम है।

आनंद नगर चितावद रोड, इंदौर

हरदा और मैं

अजात शत्रु

सन् 1960 तक जब मैने खंडवा से मैट्रिक पास की, हरदा के मात्र दो मोहल्लों को जानता था, खेड़ीपुरा और अन्नापुरा को। खेड़ीपुरा इसलिए कि वहाँ मेरे मामा रहते थे। शिवलाल यादव जो घड़ी सुधारने का काम करते थे और जिनके घर मैं माँ-मौसी के साथ जाया करता था। अन्नापुरा की याद इसलिए है कि वहाँ महाराष्ट्रीयन रहा करते थे और मेरे गाँव पलासनेर, के मालगुजार, जैसा मैने सुना था, गनपतराव केकरे थे। उस वक्त हरदा से मेरा कुल परिचय इतना था कि वहाँ सरवन हलवाई की होटल थी। उसके सामने नदी की तरफ जाने वाली पैड़ियाँ थीं, इन पैड़ियाँ, के सामने खले होते थे और उन्हीं में से एक खले में गाँव की बैलगाड़ियाँ छूटी रहती थीं। इन्हीं में से एक बैलगाड़ी में, जो मेरे बचपन में नानी की बैलगाड़ी होती थी और बाद में मेरे मामाओं की, मेरी माँ की मौसेरी बहन के भाइयों की गाड़ी में, मैं बैठा होता था। तब मेरा काम था, बैलगाड़ी में बैठकर जोत-साँवल देखना। नानी या मामा मुझे सरवन हलवाई की दुकान से मिठाई खरीदकर दे जाते और उसे खाते खाते मैं गाड़ी की चौकसी करता रहता।

हरदा में मेरे पहले मित्र श्री रमेशचंद्र सुंगधी बने, जो आज तक मित्र है। हरदा के किसी भी मोहल्ले में मैं कभी रहा नहीं, गो मेरे लेखक-वेखक होने की वजह से और उस क्षेत्र में मेरा कुछ नाम हो जाने की वजह से अनजाने और स्वाभाविक तौर पर यह माना जाता रहा है कि हरदा से मेरा वैसा ही संबंध है, जैसे मैं वहाँ पैदा हुआ था। मेरे लेखन की शुरूआत खंडवा से हुई थी और 'पलासनेर' तथा 'बंबई' तक महदूद रही। आसपास के बारे में कौशिकजी के 'व्हाइस ऑफ हरदा' में हास्य-व्यंग्य स्तंभ 'घंटाघर से बाबूलाल' के अंतर्गत में मैंने खूब लिखा और जी भरकर लिखा। अब यह समझा जाना अच्छा लगता है कि मैं हरदे

का लेखक हूँ। बाहर भी मैं खुद को हरदा का बताता हूँ।

यह याद करते हुए कि मुझे अपने भीतर जमे हरदा को एक नदी की तरह कागज पर रवाँ कर देना है, मुझे थ्रिल (रोमांच और पुलक) से भरता है। पिछली यादों में जाना जो एक साथ कभी नहीं कही जा सकती, और एक साथ कह डालने की असहय बेचैनी सी करती है, मेरे लिए भूले हुए घर की तरफ लौटने जैसा लगता है। एक ऐसा घर जो बहुत दूर है, बहुत पास है, साँस में आता जाता है, और शब्दों में हजार हजार ढंग से पकड़ा जाकर लाख लाख ढंग से छुआ हुआ है। ऐसा लगता है कि मै हरदे के बारे में लिखने बैठूं तो सब कुछ लिख जाऊँगा, पर जानता हूँ कि सबकुछ लिख जाऊँ तो भी हरदा बचा रहेगा। ऐसा इसलिए कि देखा हुआ शहर, और पहचाने हुए लोग यथार्थ भी होते हैं और सपना भी और इस गड्मड् को कभी भी शब्दों में पूरा पूरा उतारा नहीं जा सकता, क्योंकि शब्द भी सपना होते हैं और सपना सपने को कभी भी लोहे की संसी की सी सख्ती से पकड़कर हूँ-ब-हूँ नहीं कह सकता। मेरे लिए आज के और बीते कल के हरदा को बखनना यथार्थ और स्वप्न के कोहरे के सुन्न पर चलना है। यह सब लिखते वक्त मैं एक किस्म का सपना देख रहा हूँ। मेरा 'मैं' होना जाने कितने जमानों की याद समाये हुए है। सोचता हूँ, ऐसा अनंत अतीतों की धुँधली चाँदनी के बॉर्डर लैंड पर जीते हुए कम लोग होते हैं शायद। ऐसा समझ लीजिये मैं एक किस्म से 'मधुमती' फिल्म का 'आनंद बाबू हूँ।' याने यादें मेरे जीवन में सबसे बड़ा रोल अदा करती हैं।

एक तीखी, साफ याद के रूप में हरदा मेरी जिंदगी में सन् 68 और उसके आसपास के वर्षों से जुड़ा हुआ है। तब मैं लिखना शुरू कर चुका था, और बतौर कॉलेज-लेक्चरर सिवनी मालवा, बिलासपुर और बुरहानपुर से गुजरता हुआ बंबई के उल्हासनगर में सेटल हो चुका था। गाँव पलासनेर और हरदा आना जाना लगा रहता था। सच यह है कि इस अंचल से मेरा लगाव बाहोश और बेहोश इतना गहरा है कि बचपन से आज तक मैने बाहर की गर्मी और दीवाली नहीं देखी। समर-वेकेशन और दीवाली-वेकेशन में मैं सदा यहीं रहा और ये मौके मुझे बतौर स्टुडेंट और प्रोफेसर हमेशा मिलते रहे। अब भी जबकि मैं रिटायर हो चुका हूँ और मेरा सारा परिवार बंबई में ही सेटल्ड है, मैं ज्यादातर हरदा-पलासनेर में ही रहता हूँ। और मात्र लेखन-कार्य करने बंबई (उल्हासनगर) जाता हूँ। मै चाहता भी हूँ कि इस अंचल के सिवा - खास तौर पर पलासनेर के सिवा मेरी मौत कहीं न हो।

हरदे से मुताल्लिक मेरे सबसे खुशनुमा दिन उस दौर के हैं (यानि 68-75 के) जब रमेश सुगंधी, श्री कृष्ण टेमने, चंद्रकांत शर्मा चिंतक, स्व. शिवशंकर वशिष्ठ, जगदीश दुबे, ईश्वर दुबे, कंचन चौबे, दिवंगत कवि तानाजी, दिवंगत सेठ साँवरीप्रसाद अग्रवाल और प्रभु व्यास जैसे लोग मेरे खास दोस्त थे। उस वक्त हम ज्यादातर टेमने मास्साब के टीन वाले मकान (खेड़ीपुरा) में जुटते थे या देर रात तक हरदे की सड़कों पर घूमा करते थे। हम

सबको ताकत और प्रचंड वेग से जोड़ने का तत्व था, बातचीत। सभी विषयों पर बातचीत और घनघोर बहसें, जो शून्य तक जायें। उस वक्त साँवरीप्रसाद अग्रवाल, मार्क्सवाद पर एक तरह से क्लास चलाते थे और हम सब अपनी अपनी अकल से उसका बचकाना विरोध या सतही समर्थन करते हुए भाषा में उलझे रहते थे और भाषिक तौर पर बात को जमाते या उखाड़ते, अपनी अपनी विजय के बेहूदा नशे में चूर रहते थे। हम नहीं जानते थे और जैसा आज भी बहस-बहादुर नहीं जानते कि सारे समाधान भाषा के पार है। जहाँ जीवन और व्यवहार, तथा उसका वैविध्य और अंतर्विरोध एक अछूते एकत्व के रूप में देखा जाता है और हम मात्र साक्षी हो चुके होते हैं। शरीर के स्तर पर सुख-दुख भोगते हुए भी। एक बार स्व. विजय शंकर तिवारी, माणक सोकल, खंडवा के स्व. प्रभु भाई, साँवरी प्रसाद, कंचन चौबे और स्व. वशिष्ठ गुरू वगैरह की उपस्थिति में मार्क्सवाद पर रात आठ बजे से जो बहस शुरू हुई तो सारी रात से गुजरते हुए सबुह आठ-नौ बजे पर जा टिकी। हममे से कोई नहीं सोया, चंदा करके चाय बनती रही, और दोस्ताना माराकाटी चलती रही। मगर क्रूर स्पष्टता की इस विकट हद तक मुझे हरदे ने, युवावस्था की उन बहसों ने और इस छोटे से, गुमनाम शहर के मित्रों ने पहुँचाया, जिन्हें हरदा के बाहर आज कोई जानता भी नहीं होगा।

यह भी बता दूँ कि हरदा की तरफ से मेरे खास दोस्त, जीवन भर के खास दोस्त, मात्र तीन आदमी रहे। स्व. शिवशंकर वशिष्ठ 'गुरू', कंचन चौबे और जगदीश दुबे। (अजब इत्तेफाक कि ये तीनों शिक्षक ही थे)। वशिष्ठ की रूचि धर्म और अध्यात्म में थी, कंचन इसके विपरीत विकट मार्क्सवादी और रहस्यवाद (आब्स्क्यूरेंटिज्म) विरोधी थे, और जगदीश पुरातत्व प्रेमी, तंत्र-मंत्र के समर्थक और भारतीय इतिहास के गहन अध्येता थे। मैं धर्म अध्यात्म में भी रूचि रखता था और कंचन के सुदृढ़ बुद्धिवाद में भी। ये सब दोस्त मुझे प्यारे लगते थे, क्योंकि इनकी संगत में बुद्धि और रूह का ऊँचा सफर तय होता था। मैं वशिष्ठ के अध्यातम प्रेम में सुर से सुर मिलाता हुआ, कर्मकांडी धर्म का विरोध भी करता था और कंचन के स्पष्ट बुद्धिवाद और मार्क्स वैचारिक वैदिग्ध्य का सम्मान करते हुए उनके खिलाफ भी पड़ता था। जगदीश एक निर्मल, निस्कलुष और संस्कृति प्रेमी इंसान थे। उपनिषदों में उनकी श्रद्धा गहन थी। इसलिए एक बेहतर इंसान और निष्कपट, निष्कंटक मानसिकता के धारक होने के कारण वे मुझे बहुत भाते थे। उनकी संगत में मन घुलता था और निष्कलुष सुख प्राप्त होता था। इतने सारे, भिन्न भिन्न विचारधारा वालों .. के साथ मेरी इसलिए पट गई कि इनके समर्थन या विरोध करने पर मैं अपना कोई नुकसान नहीं देखता था। और भी कुछ लोग याद आतें है, जिन्हें हरदे के बाहर कभी जाना नहीं गया। जैसे दिवंगत तानाजी, दिवंगत माणक सोकलजी और दिवंगत उमाशंकर त्रिवेदी जी। त्रिवेदी जी बहुत अच्छे श्रोता पाठक और विश्लेषक थे। एक तरह से वे हमारे बौद्धिक पेट्रान थे। वे अच्छी रचनाओं को सुनकर तारीफ करते, हौंसला बढ़ाते। सोकलजी मजाकिया इंसान थे और चेहरे तथा आँखों से उतने

डरावने भी। मगर बच्चों जैसे थे। मजाकिया इतने कि नाजरजी घंटाघर से भाषण देते तो खास ख्याल रखते कि श्रोताओं की भीड़ में खड़े सोकलजी से उनकी आँख न टकरा जाये। उस वक्त तमाम स्थानीय कवियों में (विख्यात माणिक वर्मा को छोड़कर) हरिवल्लभ उपाध्याय ही आगे थे। यत्र-तत्र उनकी रचनाएँ छपती थीं। बहुत अच्छी श्रृंगार कविताएँ लिखते, जो छंद-मीटर के हिसाब से बेहद चुस्त और गेय रहती थीं। 'प्राणमणि, कर दो न प्रीतभरी बात री' की उन्होंने बहुत मधुर धुन बनाई थी। इस धुन पर मैं फिदा था। हरिवल्लभ, मैं हरदा आता, तो भोजन कराये बगैर नहीं जाने देते। कहते थे 'दुनिया में सारी बात झूठ, भूख फंडामेंटल है, अतिथि घर आये, तो पहले भोजन कराओ' कविता-कहानी की ऐसी तैसी, ऐसे ही थे, चंद्रकांत शर्मा, 'चिंतक'।

वर्तमान नये दोस्तों में शिवराज मास्साब (कबड्डी फेम) और मसनगाँव वाले नारायण पटेल है। नारायण पटेल खास पढ़े लिखे नहीं हैं। मगर अंतर्दृष्टि इतनी तेज है कि अद्वैत वेदांत की गुत्थियों से उलझते हैं और तत्काल कोई साफ-सुथरा, संक्षिप्त, सुशब्दित उत्तर फेंक देते हैं। इस देहाती इंसान से ज्यादा प्रखर हरदा में मैंने किसी को नहीं पाया। इन्हें और कंचन चौबे को मैने मेटाफिजिक्स के तहत सैकड़ों खत लिखे और यह पत्र लेखन आज भी जारी है। शिवराजसिंह.. ? इन पर लिखते मेरी कलम काँपती है और खाँटी, जमीनी समझ में .. इनके धड़बगल नहीं लगता। इस शख्स को कागज पर उतारने के लिए मुझे कम से कम सौ पेज चाहिए। जीवन में सबसे ज्यादा प्रभावित मैं इसी शख्स से रहा। इस हद तक कि 'शुभ तारिका' (अंबाला) में मैंने अपने जीवन का सबसे लंबा रेखाचित्र लिखा (40 पेज) और वह भी हरदा के मात्र एक शख्स को लेकर। बेहद मानवीय, निष्कपट, खरे अक्खड़, सामने जहर और पीठ पीछे तारीफ में शहद घोलने वाले, जिस तिस किसान-मजदूर की मदद में रोज सरकारी दफ्तरों में खड़े रहने वाले, आये दिन लंबी यात्राओं पर रहनेवाले, वह भी किसी दोस्त की बेगार में, खाली खीसे, शहर में बिना मडगार्ड की सायकिल पर, कोलंबसी करने वाले, चतरू की होटल पर सुबह सुबह रिक्शेवालों को बुलाकर नाश्ता कराने वाले, 'पेट में डाल ले कुछ साले' बारह बजे तक रिश्ता खींचता है। और साहित्य से घनघोर चिढ़ने वाले, 'अजातशत्रु, खेड़ीपुरा के मेहतरों के साथ झाड़ू लगाओ, भूख हड़ताल करो', ऐसे शिवराजसिंह मेरे लेखन के हीरो हैं। इस दुर्घर्ष व्यंग्यकार का सिर इसी शख्स के सामने झुका।

नाईक साहब से बहुत दोस्ती रही है। उनकी विद्वता, विकट सूचनाप्रधान ज्ञान, राजनैतिक विश्लेषण, बोलचाल की मिठास-सौम्य मनोरंजक बतकही और धाँसू अंग्रेजी का मैने लोहा माना। महेश कौशिक, स्थानीय 'वॉइस आफ हरदा' के जनक और भारी अर्थाभाव के बावजूद उसे वर्षों चलाने-खींचने वाले, मेरे निकट के यार हैं। अपनी नजर में

जीवन का सबसे ताकतवर व्यंग्य-लेखन मैने इन्ही के अखबार में किया और वही व्यंग्य-संग्रह छोड़ जाना चाहता हूँ, पुस्तकाकार में वह निकले या नही। यह अखबार न होता, और व्यंग्य-लेखन के बहाने बंबई में मैं सालोंसाल इस अंचल को सुमर न पाता, तो कभी का मानसिक मौत मर चुका होता। अंचल का मुझ पर बहुत बहुत उपकार कि वह बार बार विषय बनकर मेरे लेखन में आता रहा, और मुझे शून्य से लेखक बना गया। मेरी कोई शक्ल नहीं, अगर हरदा और आसपास का अंचल मेरी रूह नहीं। सुरेश लोहाना मेरे अध्यात्म-प्रेम के अंतरंग साथी और हम दोस्तों (दयाराम भाटी, महेश कौशिक, विजय मिश्रा और रज्जू सेठ वगैरह) के बीच के 'वल्लभ भाई पटेल'। इन्हें क्या कहूँ बेहद पायेबंद और भरोसे के आदमी हैं। श्रीराम शरणम में अजातशत्रुजी का मकान इन्होंने ही बनवाया। वे सिर्फ चेक देते गये, शायद सुरेश के घाटे का ही पर दोनों के बीच कभी कोई हिसाब नहीं रहा। अजब किस्मत कि अजब अजब दोस्त मिले और मैं सारी लापरवाही और अव्यवहारिकता के बावजूद खड़ा रह गया।

बहुत नाम छूट जा रहे हैं, बहुत क्या बहुत बहुत, मगर विस्तार भाव से उनके लिए विस्तृत लेख यहां नहीं हो पा रहा। मगर इस वक्त वे जेहन मे हैं, प्रोफेसर प्रेमशंकर रघुवंशी, प्रोफेसर धर्मेन्द्र पारे, कैलाश मण्डलेकर, प्राणेश चौबे, दीपक लाईट, बंटी बांगर्ड, राजेन्द्र चौहान, मनीष परसाई, भाई शफीक नादां, मंसूर अली मंसूर', राजू अग्रवाल, दिनेश अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा, देवेन्द्र और बीते दौर के एम. पी. मिश्रा। इन सबसे मुझे बातचीत में कुछ न कुछ हासिल होता रहा। मेरी लेखकीय वाकेब्युलरी पर इन सबका प्रभाव है अकेला लेखक जैसी कोई चीज नहीं। अपने बूते कुछ नहीं होता। हमारी तुम्हारी नाक के नीचे का हर लेखक चाहे कितनी दूर और अलग थलग नजर आता हो, हजार हजार प्रभावों का टोटल है। अनुपयोगी कोई शख्स नहीं घर के आगे की नीव तक नहीं।

एक बार 'धर्मेन्द्र' ने मुझसे पूछा था कि लिखने का नजरिया बचा होगा ? और मैंने कहा था कि यही नई पीढ़ी और दूसरे लोग यानी एक एक आदमी, एक एक पते का कितना उपकार होता है, हमारे अंतस्तम को गढ़ने में। हमें संवेदनशील, समाजसेवा और 'केयरिंग' बनाने में। इसे नई पीढ़ी समझे, जाने और दिल-दिमाग खोलकर अपने आसपास से जुड़े, जाने कि अकेला आदमी नरक है अपना ही नरक। गुपचुप या प्रगटतः भोगता हुआ। झुठला वह लाख ले जितना। एक वाक्य में कहूँ तो यह कि जागे बगैर, मिटे बगैर, रस नहीं आता। सच्चा रस आहर्यात्मेक रस।

हरदा मेरे भीतर एक और कारण से बसा है। वह है लोकल डिटैल्स, और उनसे छनकर आती गंध, स्वाद और संगीत बनती हुई स्मृति-तरंगे। एक शहर के बारे में हम

सोचते हैं, तो वहाँ के सिर्फ इंसान याद नहीं आते। सारी टोपोग्राफी, स्पेसियल सेटिंग, स्थापत्य और वनस्पति-जगत भी याद आते हैं। स्पेस और वनस्पतियों के बीच का आसमान तारों के साथ ही याद आता है। तो कितना कितना है एक हरदा मेरे भीतर, बंबई से आता हुआ पंजाब मेल, स्टेशन के पहले की टर्निंग, धडधड़ाता पुल, नीचे बहती नदी, कपड़े धोती औरतें और छप् से कूदकर नंगे नहाते बच्चे, शहर की तरफ मुड़ती सड़क, जैसे चलती गाड़ी की खिड़की सी फेंक दी गई और नागन की तरह बल खाती दूर जा रही है। तभी सड़ाप से आँखों पर छींट की चादर डालता सा मकानों का सिलसिला, कवेलू वाली छतें, छतों के एंटिने, आँखों को हौले से चूमती मस्जिद की सफेद मीनारे, नीचे किसी मकान का हरा रंग, सुस्ताता चलता टिमरनी गेट, वाहनों की भीड़, जबरन हाथ देता एक शरारती बच्चा, माल गोदाम, रूके हुए, अकेले खड़े, अनाथ डब्बे। बात करते और अनसुने पड़ते हम्माल, डब्बे के समानांतर, नीचे नीचे जाती बकरी, और रूकते रूकते गाड़ी का स्टेशन पर रूक जाना ...। याद रखिये, अपना शहर याद आता है, तो दुनिया में आप कहीं भी हों, रेल्वे स्टेशन से याद आता है, बशर्ते आप दूर के किसी शहर से आ रहे हों, जहाँ आप बस चुके हों और फिर रेलगाड़ी से ही आते जाते रहें।

बचपन की याद है हरदे की सो ताँगे याद आते हैं। उसमें जुते बीमार और मरियल घोड़े याद आते हैं। एक घोड़ी भी याद आती है, जिसकी गर्दन छिल गई है और उसी पर वह वजनी जुआ लिए वह, आँसू बहाती, भागती जा रही है। सामने से लोग आ जा रहे हैं। तांगेवाला भागते चक्के में चाबुक की डंडी डालता है और टिक् टिक् टिक् टिक् की एक ध्वनि लकीर, भागते स्पेस के कागज पर छप जाती है। तांगा भागा जा रहा है। ये आया पेट्रोल पंप, ये महेशदत्त जी मिश्र का निवास, ये सामने के मटन होटल। टीन के नामपट्ट में वर्षों से झाँकता (चित्रित) बकरा, पास पड़ी हुई सूखी घास, ये नारायण टॉकीज (आज गिरा दी तो क्या) ये पुलिया, ये श्रीराम होटल, ये चतरू की दुकान, एकनाथ सेठ का मकान। कमर पर बच्चे और माथे पर गागर लिए, पत्थर-मिट्टी की मूर्ति। हार्डवेयर की दुकानें, गोल टोपी पहने मुल्लाजी, बंसल डाक्टर साब का क्लीनिक। अभी भी बैठे हुए मुन्नालाल जी की स्टेशनरी दुकान। आगे जूता सिलता गरीब मोची, और ये लो भैया, घंटाघर। ये सब मेरी सत्तर साल की उम्र में भी दिमाग से नहीं जाते। पता नहीं चलता, मैं हरदा में हूँ या हरदा मेरे में है। मेरी अंतड़ी अंतड़ी तक हरदे से उलझी है। घंटाघर को पिन चुभाओगे तो दीवाल से राधेश्याम का खून रिसने लगेगा, राधेश्याम याने यह ढपोंग अजातशत्रु। घंटाघर से बाबूलाल कॉलम का।

पूछते हो स्पंदन में क्या क्या समाया है ? क्या क्या नहीं समाता, भाई, जन्मभूमि के शहर का ... झाड़ पेड़ तक याद आते हैं। पैड़ियों के पास जिधर उतरते ही दाँयी तरफ मंदिर

है, कभी पीपल का झाड़ था, जो आज भी है। उसके कौवे, शाम की काँव काँव, पट पट गिरती छीट याद है। दिमाग के आंगन में अब वह रांगोली बन गई है या 'अभिज्ञान शांकुतलम' का श्लोक।

गुप्तेशर मंदिर के सारे वृक्ष याद आते हैं। बैरागढ़ के चढ़ाव की बगली इमली याद आती है। बड़े मंदिर का पीपल याद आता है। खेड़ीपुरे का कबीट-वृक्ष, सड़क पर खड़ी नीम और डॉ पारे के घर के आसपास दूब-भरा पठार याद आता है, जिसकी तरी जेहन में खूब खूब है। जैन मंदिर, विटठ्ल मंदिर, हरदुल बाबा का ओटला, स्टेशन-पास का गिरजाघर, उस पर सिनेमा-सीन की तरह 'फेड-इन' होता वर्तमान गुरूद्वारा और मालगोदाम के सामने पड़ता रेल्वई का मंदिर, कैसे भूल जाऊँ यह सब ? हरदे के जर्रे जर्रे से बना है मेरा अंतस्तम। .. असंख्य दृश्यों की इस इबारत को मेरे मन के कागज पर से पोंछे दोगे, तो फिर खुद अजातशत्रु बचेगा क्या ? मेरा मतलब है, भीतर वाला अजातशत्रु। शहर मन पर एक प्रिंट होता है और यह प्रिंट ही फिर .. स्पंदन करता इंसान होता है, जिसके आसपास हाड़-माँस होता है। हरदा मुझमें स्पंदन नहीं करता। मै स्वयं हरदा हूँ। देखो कि नारायण टॉकीज टूट गई, तो मेरा हाथ भी टूटकर गिर पड़ा। शायद मै हरदे में ही रहता पर खंडवा, 'नील कंठेश्वर' से एम.ए. करने के बाद जब यहाँ के आर्ट्स एडं कॉमर्स कालेज में (जो अब सरकारी हो गया है) वेकेंसी पर अप्लाय किया, तो मेरा सेलेक्शन नहीं हुआ। किसी 'रामसिंग' का हुआ, उस वक्त मै बहुत ढब्बू, संकोची तथा ग्रामीण और गरीब पृष्ठभूमि से आने के कारण बेहद दीनता-ग्रस्त था। इंटरव्यू में मेरा परफार्मेंस अच्छा नहीं रहा और मैं मौका गंवा बैठा।
बाद में कुसुम महाविद्यालय, सिवनी मालवा में (जो सन् 68 में ही खुला था) मैं चुन लिया गया और वहां ज्वॉइन कर लिया, वैसे 'रामसिंग' के न आने पर हरदा-कॉलेज से बुलावा आया, पर मै नहीं गया। एक तो नाराज था, दूसरे 'कुसुम' वालों से विश्वासघात नहीं करना चाहता था। यह भी कि गरीबी के कारण जाने क्यों और किस जिद से मुझमें यह भाव प्रगाढ़ हो गया था, कि किसी ने एहसान किया है, तो उसे कतई धोखा नहीं देना चाहिए। हाँलाकि यह आदर्श टिका नहीं, क्योंकि जब बिलासपुर के सरकारी कॉलेज में इमर्जेंसी एप्वाइंटमेंट मिल गया, तो प्रिंसिपल शिवबिहारी जी त्रिवेदी (कुसुम महाविद्यालय) से क्षमा-वमा मांगकर सरकारी कॉलेज में घुस गया।

बाद में पी.एस.सी. सेलेक्शन नहीं हुआ, तो बिलासपुर से भी नौकरी गई। उधर, राजिम की हाईस्कूल मास्टरी का सरकारी आफर मैने ठुकरा दिया, क्योंकि बनना सिर्फ प्रोफेसर चाहता था। फिर बुरहानपुर के कादरिया कॉलेज में नौकरी और समर वेकेशन लगते सेवा-खत्म का नोटिस, सो, उसी गर्मी में उल्हासनगर (बंबई) अप्लाय कर दिया, जहाँ लेक्चरर की वांट निकली थी। यहाँ चुनाव हो गया और दो साल बाद नौकरी में पक्का कर

दिया गया। कई वर्षों बाद प्रिंसिपल डॉ. आहूजा ने बताया, जानता है यादव तेरा सेलेक्शन क्यों किया था ? मैने सोचा, वो कहेंगे - इन्टरव्यू में इम्प्रेस किया था। वो बोले - तेरी हाइट अच्छी थी। उस वक्त हमें सिर्फ एक लंबे और तेज-तर्रार नौजवान की जरूरत थी। पढ़ाना-घढ़ाना बाद की बात। खैर, रिटायर मैं प्रभावशाली प्राध्यापक के बतौर हुआ और जीवनभर इस बात को याद रखा (हरदा के कारण) कि सतही प्रभाव पर मत चलो। साक्षात्कार देने वाले में आत्मविश्वास पैदा करो और भरपूर स्नेह-नम्रता जताते हुए, उससे उसका 'बेस्ट' उगलवा लो। इस सिद्धांत के तहत मैं अपने कॉलेज को दो काबिल और 'शुरू में डरपोक' (एक ने तो इंटरव्यू में एक लफ्ज नहीं कहा पर मैं उसकी तरफ से लड़ गया) प्राध्यापक दे आया। खैर, पूरे जीवन पर नजर डालकर कहूँ तो यह अच्छा ही रहा कि जवानी और उसके रचनात्मक वर्षों में हरदा मुझसे छूट गया।

बंबई में मुझे सीखने-समझने और बौद्धिक तौर पर जागने का बड़ा माहौल मिला। एक से एक दुर्लभ, मँहगी किताबें, एक से एक धुआँधार और विकट इन्टेलेक्चवल, विदेशी पत्र पत्रिकाओं की आसान उपलब्धि, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जन्म लेते और बढ़ते नये नये विचार, बंबई जैसी मेट्रोपालिटेन सिटी में व्याप्त ऑब्जेक्टिव सोच और दूसरों के क्रिया-कलाप में टांग न अड़ाने, निंदा-ठिठोली न करने की प्रवृत्ति, बौद्धिक स्वतंत्रता, निरापद जीवन और हर तरह का खुलापन (जो कई एंगलों से सोचता है, और क्षमा करने की ताकत रखता है)। इन सबके कारण मैं सोच में बहुत उदार हो गया और इससे व्यवहार भी प्रभावित हुआ। गरज कि हरदा मेरे खून में बहता है। मगर मै इसकी आत्मा का विकास भी चाहता हूँ। आप चाहें तो मुझ पर हँस या गरिया लें। पान की दुकानें बहुत हैं यहाँ। सबसे मीठी स्मृति खुद घंटाघर को लेकर है। शहर के तमाम राजनैतिक भाषण, बढ़िया, सुसंकात, जोशीले, और अल्लभ गल्लभ यहीं होते आये हैं।

यहाँ से हमारा यार, जमना जैसानी भी बोलता था, जिसके भाषण में रेकार्ड भीड़ होती थी और गाँव गाँव से लोग सुनने आते थे। अपने भाषण के कारण वह जिलाबदर हुआ, (शायद) पीटा गया, गालियाँ खाईं। उसका भाषण ज्यादातर भावुक होता था और लोकल बोली में चलता था। 'के भैया होन, हनी गोंइ।' वह 'चपरगट्टू' जैसे शब्द इस्तेमाल करता था। नई पीढ़ी जाने कि शरद यादव का भाषण भी यहाँ से हो चुका है। भीड़ ऐसी थी कि ललकारते, गरजते युवा यादव का हाथ सामने खड़े श्रोता की ठुड्डी से एक या दो इंच दूर रह जाता था। कामरेड लच्छू कप्तान इसी घंटाघर से ताल ठोंकते थे। उनका भाषण क्या था। बाढ़ से भरी नदी होती थी, जिसमें कंकड़ पत्थर, बोल्डर, कोमल मछलियाँ, और मुलायम कछुए बहते जाते थे। अपने भाषण में वे रूला देते थे। नगराध्यक्ष होने के बावजूद एक छोटी सी टापरी में रहते थे, जो नगरपालिका भवन के बगल से थी। सिगरेट का यह चैन स्मोकर,

बहुत बदहाल होकर दुनिया से गया। करूणावान और बेहद आक्रामक मंजुला बाई जो समर्पित मार्क्सवादी थी और हिंदीं अनुवाद का दास कैपिटल चाट गईं थीं, यहीं से आग उगलती थीं। बोलने में बहुत मुँहफट अपने विश्वासों में मजबूत। एक जमाने में नगरपालिका के कम्युनिष्ट मेंबर यहीं से बोलते थे। प्रताप टॉकीज के सामने जो होटल थी, उसके मालिक सीधे सच्चे जोशीजी, जो बहुत मोटा चश्मा लगाते थे, नपातुला भाषण करते थे। मगर विरोधियों की खाट खड़ी कर देते थे।

गाँधी के निधन के बाद घंटाघर पर जो शोक सभा हुई थी, उसमें एक किसान नेता, भाषा पर कमांड न होने के कारण बोल गये 'गाँधीजी क्या मर गए हमको आफत में पाड़ गये।' श्रोता दे हँस, दे हँस कैसी प्यारी, मासूम गलती थी यह। इस 'घंटाघर' पर पिछड़े दिनों 'लंगड़ी' हुई। जीवन में कभी मैंने 'लंगड़ी' देखी नहीं थी। इस बार मन मारकर मैं बैठ गया। मगर चित जो लगा था, तो रातभर उठा नहीं। रोना आ गया कि मेरा अंचल लोकगीतों और भजनों में इतना समृद्ध है और मैं 'लंगड़ी' से दूर-दूर रहा। वाह वह छोटा सा बालक गजब ढोलक बजा गया। मैं सन्न, भीड़ ने उसे हाथों पर उठा लिया। अजातशत्रु, अंग्रेजी का प्रोफेसर बंबई निवासी चालीस साल का, फूट फूटकर रो पड़ा।

मित्र वशिष्ठ चले गये गोलापुरा वाले, मरने की उम्र नहीं थी, फिर भी। कंचन चौबे खटिया-पकड़े बैठे हैं। राजेन्द्र माथुर की टक्कर का यह पत्रकार, संपादकीय लेखक ..... काहिली के कारण कुछ नहीं कर पाया। एक जीनियस रोते, पिनपिनाते, असली से ज्यादा नकली दु:ख पालते ... बुझ गया। मेरे कथन और सोच को उसने बहुत मांजा था मगर, जैसा एक स्थानीय बुद्धिजीवी ने कहा - 'वह एक ऐसा बच्चा था, जो बूढ़ा पैदा हुआ।' मेरे लिए उसे भूलना असंभव है।

कलेक्टेरेट बहुत दूर है। तहसील कचहरी में बहुतायत से छायादार झाड़ नही है। काश ! कोई वृक्ष-प्रेमी कलेक्टर हरदे में पोस्ट होता। बार-रूम में भी 'टाइम्स ऑफ इंडिया' नही आता। दीपिका सूरी सिने-सोसायटी स्थापित कर गईं। युवा पीढ़ी विश्वस्तर की कला फिल्में देखती। मगर अपना प्यारा हरदा 'पुनि बैतलवा डाल पर।' जरूरी फायदा चाहे जिसका हुआ हो। पर नारायण टॉकीज टूट गई और मीठी यादों का एक आधार-स्तंभ ढह गया। नवजातों को बधाईं कि वे ऐसी याद से मुकर रहेंगे। मैं इसी अंचल में फिर से आना चाहूँगा और ऐन यही मिजाज लेकर, जो मैने पाया है। मैं अपने आपमे बहुत संतुष्ट व्यक्ति हूँ। पैसे का लोभ मुझे नहीं सताता किसी से तुलना करके खुद को बड़ा या छोटा समझने की प्रवृति मुझमें नहीं। मैं कुछ पाना नहीं चाहता, एक अजब किस्म की फकीरी और लापरवाही है मुझमे। यही मैं फिर से पाना चाहता हूँ। लेखक शायद नहीं बनना चाहूँगा, क्योंकि वह

छोटी सी बात है। मैं संत या परोपकार वादी विशिष्ट पुरूष भी नहीं बनना चाहता, क्योंकि यह भी लिमिट है।

मैं एक चिंतक बनकर आना चाहता हूँ और उसी तरह शून्य में खो जाना चाहता हूँ जैसा अब तक करता रहा हूँ। अपने को पा न लूँ और वही थिगा हुआ वर्तमान न हो जाऊँ जो मैं अभी भी हूँ। बस भाषा उसे जानने नहीं देती।

यह अंचल मुझे पसंद है। यहाँ के गाँव, देहात, जंगल मुझे पसंद है। यहाँ की फ़िजा, लोग, सादगी और खानपान मुझे पसंद है। जमीन और घास से प्यारा, पवित्र और निष्कलुष क्या है ? मै अंचल की इसी भूमि से, सारे भोजन से, चिड़िया से, पत्तों से एकाकार हो जाना चाहता हूँ। बताओ, इस अंचल के सिवा मैं और कहाँ जन्म लूँ, जो मेरी यादों में बसा है और आदतन प्यारा है। जन्म जन्म से जंगल का प्रेमी, भ्रष्ट सन्यासी, मैं इसी वनप्रांतर में आना चाहता हूँ, जो कभी विगत का हरदा था, पलासनेर था, बारंगा था, सुकरास था, और झाड़ पर बैठी होलगी था।

आलेख खत्म हुआ, मेरे दोस्तों जानता हूँ, बहुत कुछ छूट गया होगा। बहुत से नाम जिक्र में न आ पाये होंगे। मगर उन सबको मैं भूल गया हूँ ऐसा नहीं ...। सच यह है कि यह शहर तो क्या, एक तिनके पर भी, पूरा पूरा नहीं लिखा जा सकता। एंगल छूटते रहेंगे, मूड बदलते रहेंगे, और हर बार वही चीज नया चेहरा, नई ताजगी लेकर आती रहेगी। तो एक बखत में जितना लेखक हो गया, उसे स्वीकार करें और याद रखें कि, इसी हरदे में मुझे और भी लिखना है। हिसाब बराबर हो जाएगा।

204 शिवशंकर अपार्टमेन्ट उल्हासनगर, मुंबई

बचपन की कुछ यादें और साहित्यिक परिदृश्य

कैलाश मंडलेकर

नीमसराय से हरदा की दूरी, कोई बहुत ज्यादा नही है। यही कोई 15-20 किलोमीटर होगी पर उन दिनों मेरे लिए हरदा बहुत दूर हुआ करता था। यह 1964-65 का दौर था। इतवार की छुट्टी में मैं, पिताजी के साथ हरदा जाता था। पिताजी, हरदा को हरदे कहते थे। गाँव में हर कोई जो हरदा जाता था। हरदा को हरदे ही कहता था। हरदा को हरदे कहना शायद लोगों की आदत में शुमार था या फिर वे हरदे कहकर अपने को ज्यादा शहरी और सभ्य समझते रहे हों। बहरहाल मुझे ठीक याद नहीं कि, मैं हरदा जाने को इतना उत्सुक क्यों रहता था ? सप्ताह में सोमवार से शनिवार तक रोज हरदा जाने की कामना किया करता था। इतवार की छुट्टी में पिताजी मान जाते थे, 'हौ चल' मैं पिता की उंगली पकड़कर कुड़ावा स्टेशन तक आता, वहाँ से 12 की पैसेंजर से हरदा पहुँच जाता था। रास्ते में ट्रेन की खिड़की से नदी, पुल ओर खेत देखना बहुत अच्छा लगता था।

हरदा में रेल्वे स्टेशन के पास की होटल में गुलाब जामुन खाना मेरा पहला कार्यक्रम होता था। मैं कहता नहीं था लेकिन पिताजी होटल में ले जाते वे गुलाब जामुन नहीं खाते थे। वे होटल के नौकर को जिस रौबदाब से गुलाब जामुन लाने का कहते थे, वह बहुत हैरत में डालता था। मुझे गुलाब जामुन बहुत पसंद थे। तब गुलाब जामुन बड़े बड़े बनते थे, और मैं तीन चार खा लेता था। उस होटल के नौकर का नाम पूनम था। वह एक मझोले कद का अधेड़ व्यक्ति था, जो काली और बहुत मैली कुचैली बनियान पहने रहता था। उसके बाल घुंघराले और खूबसूरत थे। मैं उसके बालों को देखकर प्राय: उसी तरह के बाल रखने की कल्पना करता था। होटल से फारिग होकर हम लोग घंटाघर के नजदीक लगने वाले बाजार

में जाते थे। वहाँ बायीं तरफ जिधर सब्जियों और फलों की दुकानें लगती थीं, उधर एक जूता पालिश करने वाले व्यक्ति की छोटी सी दुकान थी। उसे दुकान कहना भी ठीक नहीं होगा। दरअसल वह दुकान एक छतरी के नीचे लगती थी, छाता वह धूप से बचने के लिए लगाता था। एक छाते के नीचे उसकी समूची दुकान आ जाती थी। छाते के नीचे बैठने वाला दुकानदार, लाल रंग की टोपी लगाता था। पिताजी उसे नेताजी कहते थे। पिताजी उसकी छतरी के करीब बैठकर अपने जूतों पर पॉलिश करवाते थे। पॉलिश के दौरान पिताजी अपनी जेब से कमल किशोर बीड़ी का बंडल निकालकर दो बीड़ियाँ सुलगाते थे। एक वे स्वयं पीते दूसरी नेताजी को देते। ये दोनों आपस में बहुत गंभीर किस्म की बातें करते थे। उनकी चर्चाओं में अक्सर कांग्रेस, कम्युनिस्ट और जनसंघ पार्टियों की बातें होती थीं। बातों के दौरान वे खूब ठहाके लगाते थे, जिन्हें मैं मूर्खों की तरह देखता रहता था।

बचपन हरदा और नीमसराय के बीच गुजरता चला गया। गाँव से हरदा आने का सिलसिला निरंतर चलता रहा। घर से, माँ बाप से और थोड़े बड़े होने पर गाँव की प्रेमिका से रूठकर हरदा आते रहे। हरदा आने के कई आकर्षण थे। सबसे बड़ा आकर्षण सिनेमा था। फिल्म का पहला शो, प्रताप टाकीज में देखते थे, दूसरा नारायण टॉकीज में। सेकेंड शो के बाद गाँव लौटने को कोई गाड़ी नहीं बचती थी। रात गुजारने के लिए रेल्वे का प्लेटफार्म था या जीजलबाई की धर्मशाला। मैंने अपने कई मित्रों के साथ उन दिनों जीजलबाई की धर्मशाला में रातें गुजारी हैं। धर्मशाला में कई तरह के लोग ठहरते थे। कोर्ट में केस लड़ने वालों से लेकर हंडिया में माई में नहाकर लौटने वालों तक, भाँति भाँति के लोगों के लिए जीजल बाई की धर्मशाला एक मात्र सराय थी। अर्सा हो गया, मैने जीजलबाई की सराय नहीं देखी। अब हरदा में, ठहरने के लिए बड़े बड़े होटल बन गए हैं।

साहित्य के प्रति रूचि कब पैदा हुई इसका ठीक ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता लेकिन कॉलेज में पहुँचते ही कवि सम्मेलन सुनने की लत जैसी हो गई थी। उन दिनों हरदा के व्यंग्य कवि और देश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार माणिक वर्मा मेरे लिए सबसे बड़े हीरो थे। उन्हें मंच पर कविता पढ़ते हुए देखना सुनना अच्छा लगता था। उन्हें देखकर मन में उनके जैसा कवि होने का इरादा मजबूत होने लगता। बाद में माणिक दा से मेरी कई मुलाकातें हुई, हरदा में, खंडवा में और भी जगहों पर। एक बार हरदा में अग्रसेन जयंती पर आयोजित एक कवि सम्मेलन का मैंने संचालन भी किया, मंच पर माणिक वर्मा भी थे। आयोजन के केन्द्र में प्रो. प्रेमशंकर रघुवंशी थे। माणिक दा से जब भी मैं मिला, जीने का एक नया उत्साह लेकर लौटा, बहुत अच्छा व्यंग्य लिखते हो यार, अरे गज़ब कर दिया, लिखो यार तुमसे बहुत उम्मीदें हैं, क्या रवानी है तुम्हारी कलम में ? कुछ इसी तरह के जुमलों से हर बार माणिक वर्मा मुझे नवाजते रहे हैं। मैनें माणिक वर्मा को कभी उदास, सुस्त

और बुझे हुए नहीं देखा। वे हमेशा खुशी और उल्लास से भरे हुए हौंसला अफजाई करते हुए ही मिलते रहे। ओछी बातें, हल्के मजाक और कटुक्तियाँ माणिक दा के वार्तालाप में दूर दूर तक नजर नहीं आती। दरअसल माणिक वर्मा हिन्दी के बड़े कवि हैं। उन्हें व्यंग्यकार या हास्य कवि कहकर सीमित नहीं किया जा सकता। यथास्थितिवाद और जड़ता को तोड़कर नए समाज की रचना और प्रगतिशील जीवन मूल्य कविता के मूल, औजार हैं। श्रोताओं की अपार भीड़ को संबोधित करते हुए जब वे कहते हैं कि, भाई साब एक ग़ज़ल कह रहा हूँ आशीर्वाद दीजिए ! तब यकीनन उन्हें किसी आशीर्वाद की जरूरत नहीं होती। हकीकत यह है कि, उनके भीतर अपने शब्दों और अंदाज ए बयां को लेकर जिस तरह का दमकता हुआ आत्म विश्वास मौजूद रहता है, वहाँ आशीर्वाद की झड़ी अपने आप लग जाती है। माणिक वर्मा आपको भीतर तक छू कर अचानक चले जाते हैं। वाह करना या आह करना आपकी मजबूरी है।

माणिक वर्मा की कविता भुआणे और निमाड़ की मिट्टी से बनती है। हरदा और निमाड़ के असंख्य जनपदीय जनों के दुखों पर शायरी अजमाने की शौकिया लफ्फाजी माणिक वर्मा की कविता का चरित्र नहीं है। माणिक वर्मा गहरे सामाजिक सरोकारों के रचनाकार हैं। खामोश और निहत्थे आदमी के साथ जिस किस्म का भाई चारा और अपनापन उनकी ग़ज़लों में आता है वह ऊपरी नहीं है। माणिक वर्मा उस दुख और पीड़ा को लम्बे अर्से तक झेलते रहे हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं कि, माणिक वर्मा ने हिन्दी व्यंग्य कविता को ठीक उसी ऊँचाई पर जाकर स्थापित किया जिस ऊँचाई पर हिन्दी गद्य को परसाई जी ने पहुँचाया। इस बात का खुलासा स्वयं परसाई जी ने भी किया है। यह सच है कि माणिक वर्मा का व्यंग्य कई बार हँसाता, गुदगुदाता भी है लेकिन हँसी उनके व्यंग्य का यथेष्ट नही है। उन्हें सुनकर आप हँसेंगे तो यकीन कीजिए तिलमिलाना भी पड़ेगा।

दरअसल माणिक वर्मा की कविता मध्यम वर्गीय आदमी के खंडित सपनों का कोलॉज है। जिन लक्ष्यों इच्छाओं और सपनों को लेकर इस देश का आम आदमी आजादी की लड़ाई में शामिल हुआ था उसके सपनों का क्या हुआ ? क्या उसके हिस्से में वह मुकम्मिल आजादी आई जिसकी बात गाँधीबाबा करते थे। गाँव से अपने अरमानों की पोटलीं बाँधकर जो आदमी शहर आया था, वह चौराहे पर अजनबी की तरह खड़ा है। उसे शक है, यह उसका शहर नही हैं, यह उसका देश नहीं है, कभी धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान में, रंगों की पिचकारियों की मोहक गज़लें कहने वाला हरदा का यह ग़ज़लकार, अचानक व्यंग्य की तरफ मुड़ जाता है। फार्म अब भी गज़ल का ही है पर सवालातों की शक्ल में।

आप कहते हैं किसी के पास भी माचिस न थी
जल गया फिर कैसे अपना गाँव रमजानी चचा ।।
जिसके आँचल की कभी सौगंध खाते थे सभी,
क्यों है उस राधा के भारी पाँव रमजानी चचा ।।

गौर करने लायक बात यह कि, यह रमजानी चचा केवल एक पात्र नहीं वरन गांवों की सरलता, भोलेपन और सांप्रदायिक सौहार्द का प्रतीक भी है। मजार के पास लोबान जलाते रमजानी चचा में मुझे कई बार हरदा के फाईल वार्ड के किसी मुस्लिम बुजुर्ग का चेहरा दिखाई देता है।

हरदा के बारे में कहा जाता है कि, यहाँ की मिट्टी उर्वरा है, जो सच भी है। यहाँ की मिट्टी में गेहूँ और कपास ही नहीं होता साहित्य की फसल भी खूब लहलहाती है। मेरे अनेक मित्रों का कहना है कि व्यंग्य तो हरदा की जमीन में खूब पनपता है। व्यंग्य के प्रति मेरा आंरभ से ही रूझान रहा आया है। मैने अपने व्यंग्य लेखन की शुरूआत नई दुनिया से की। यह बात संभवतया आठवें दशक की है। उन दिनों कभी कभार अजातशत्रु भी नई दुनिया के लिए व्यंग्य लिख दिया करते थे। उनके किसी व्यंग्य पर टिप्पणी करते हुए मैने उन्हे मुंबई के पते पर पत्र लिखा। उनका तुरंत जवाब आया और पता चला कि वे हरदा के ही हैं, मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने मेरे व्यंग्य के प्रोत्साहन के लिए अनेक पत्र लिखे। अजातशत्रु जी से मिलने मैं पलासनेर आता रहा हूँ। इस इलाके में वे सर्वाधिक चर्चित और साहित्य के मर्मज्ञ एवम् विद्वान व्यक्ति हैं। बाद के वर्षों में उन्होंने नईदुनिया में अनेक वर्षों तक व्यंग्य लेखन किया जो बहुत चर्चित हुआ। हरदा और भुआणे के किसानों की समस्याएँ तथा इस इलाके के रेल कामगारों की तकलीफों को लेकर वे आज भी व्यंग्य लेखन करते हैं। अजातशत्रु के लेखन में किसी तरह की गुटबाजी और मठवाद नही हैं। वे विशुद्ध रूप से मनुष्य के पक्षधर लेखकों में शुमार हैं। अजातशत्रु की रचना प्रक्रिया और जीवन दर्शन को सीधी और सरल रेखा में नहीं मापा जा सकता। वे हिन्दी के एक मात्र विश्लेषण परक व्यंग्यकार हैं। यह अलहदा बात है कि उनके वैयक्तिक तथा सामाजिक संघर्षों को, व्यापक अध्ययनशीलता को अभी ठीक से समझा नहीं जा सका। उने व्यंग्य के तल पर भी उसी अंतिम आदमी की पीड़ाएँ और दर्द विद्‌यमान है, जिसके लिए साहित्य और राजनीति में तमाम तरह की प्रति बद्धताएँ व्यक्त की जाती रही हैं। अजातशत्रु, अपने लेखन में बिना किसी घोषित प्रतिबद्धता के आज भी उस निहत्थे आदमी के साथ हैं जो हर बार राजनीति के गरीबी हटाओं नामक नारे का शिकार होता रहा है और सन 47 से लेकर आज तक किसी अनाम गाँव के दरिद्र घूड़े पर फावड़ा लेकर खाद की गाड़ी भरता रहा।

यह दुखद है कि, हिन्दी का परम्परागत समीक्षा शास्त्र आरंभ से ही साहित्य की विधाओं को सीमा में बाँधकर देखता रहा है और अजातशत्रु की कलम हर बार विधाओं की बागुड़ फलांगकर मनुष्य की मुक्ति में सृजन का सत्य तलाशती रही वरना क्या कारण है कि किसी न किसी विधा का पल्ला पकड़कर प्रायोजित आलोचनाओं के बल पर कई किस्म के छोटे-बड़े पुरस्कार एवं पदों पीठों को हथियाने की होड़ में किसी भी जुए के नीचे गर्दन झुकाने को तैयार बैठे मिलते हैं तब अजातशत्रु अपने लेखन में भाषा के मिथ्यात्व की बात करते हुए आदमी की मुक्ति का दर्शन तलाशते हुए दिखाई देते हैं। वे अशोक कुमार की ऑटोबायोग्राफी अथवा लता मंगेशकर एवम् आशा भोंसले की गायकी पर लिखते हुए गायन और एक्टिंग की उन सूक्ष्मताओं तक पहुँचते हैं जिनके तल पर शुद्ध नाद और कला के औजार गढ़े जाते हैं। और जहाँ कलाकार को खुद नहीं पता रहता कि वह खुद गा रहा है या उसके भीतर कहीं सुर का एक अजन्मा और कुंवारा झरना फूट पड़ा है।

व्यंग्य में यद्‌पि अजातशत्रु , परसाई के प्रशंसक रहे हैं, लेकिन इस बात से वे फिर भी सहमत नहीं है कि, अंतिम व्यंग्य परसाई तक सिमटकर रह जाएगा। वे अपने लेखन में हर बार व्यंग्य की अगली जमीन तलाश करते नजर आते हैं। व्हॉइस ऑफ हरदा, में छपे उनके अनेक व्यंग्य लेखों में आए ग्रामीण भोले पात्रों में वही करूणा दिखाई देती है जो चेखव के पात्रों में पाई जाती है। हालाकि यह तुलना भी बेमानी है। मुद्‌दा दरअसल यह है कि, हिन्दी व्यंग्य को अजातशत्रु इस ह्‌दयमान भौगोलिकता से परे ले जाकर मनुष्य को उसकी जन्मना अस्मिता में परिभाषित करना चाहते हैं। क्योंकि सिर्फ भूख और रोटी के सीखचों में जिंदगी को रेजीमेंट नहीं किया जा सकता। अजातशत्रु का व्यंग्य उस सनातन अस्तित्व को स्पर्श करना चाहता है जहाँ जीवन विराट चिरंतन और शाश्वत है और जहाँ कोई भी विचारधारा अंतिम नहीं हो सकती।

अजातशत्रु से बातचीत करना, तर्क करना आसान नहीं है। जैसा कि मैंने कहा है, मैं 25-30 वर्षों से उनसे बातचीत करता रहा हूँ। आरंभ में इस बातचीत के पीछे मेरे कुछ निजी स्वार्थ हुआ करते थे, बाद में हमारी बात गहरी होती चली गई। फलतः वैचारिकता और कथन के स्तर पर कई दृष्टियों से मेरा पारिमार्जन भी हुआ तथा एक नया व्यंग्य बोध भी विकसित हुआ। मैंने महसूस किया कि, अजातशत्रु से मिलकर आप हर्गिज वह व्यक्ति नही रह सकते जो उनसे मिलने से पहले रहते हैं। उनसे मिलकर लौटना कई तरह के नए प्रश्नों तथा अनंत जिज्ञासाओं से लबरेज होकर लौटना है। हरदा के निकट पलासनेर गाँव में उनके पुश्तैनी घर से लगे हुए खलिहान में युकेलिप्टस व अमरूद के दरख्तों के बीच बैठकर उनसे बतियाना एक बारगी उस दुनिया से रूबरू होना है, जो कुछ कुछ नई और सामानांतर सी दुनिया का बोध कराती है। अजातशत्रु की यह दुनिया रोमांच सी जिज्ञासाओं से भरी होती है

और बाजदफे कबीर के ब्रह्म की तरह पुहुप वास से पातरी भी।

हरदा के साहित्यिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को समृद्ध करने में, साहित्यकार व आलोचक प्रो.रघुवंशी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वे हिन्दी कविता के जाने माने हस्ताक्षर हैं तथा वामपंथी रूझान होने के कारण साहित्य के शीर्षस्थ लोगों से उनका जीवंत संपर्क रहा है। हरदा में साहित्य की नई पीढ़ी को बनाने तथा संस्कारित करने में रघुवंशी के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। प्रो. प्रेमशंकर रघुवंशी आज भी अपनी कविताओं के मार्फत, इस सृजन विमुख समाज से संवादरत हैं, तथा अपने एकांत में कविताओं को उत्सव की तरह जी रहे हैं। कविता की अंतरंगता में जीना और जीते रहना असाधारण जीवट वाले ही कर पाते हैं। क्योंकि सर्जना स्वयमेव एक पीड़ादायी कर्म है। सुधीजन जानते ही हैं कि कविता कीमत वसूलती है व इस कदर वसूलती है कि, कई बार जिंदगी को भी दांव पर लगाना होता है। प्रेमशंकर रघुवंशी इस दांव को बराबर अजमाते रहे हैं। हृदय की, फिर बड़ी आंत की गंभीर शल्य चिकित्सा और अंतहीन साहित्यिक एवम् सामाजिक मुठभेड़ों के बावजूद, उनका कवि आज भी सृजनरत है। प्रेमशंकर रघुवंशी की यात्रा गीतों से शुरू होती हैं। इन गीतों की प्रारंभिक बनक चौपाल की धूल मिट्टी और ग्राम्य उत्सवों की अल्हड़ लयकारी से सुसज्जित है। लोकधुनों का यह वैशिष्टय ही कालांतर में रघुवंशीजी की कविताओं का मूल स्वर बनता चला गया। अब जबकि वे छंदमुक्त नई कविता के एक प्रखर रचनाकार के रूप में समादृत हैं मैं उनकी कविताओं में प्राय: वही लोकराग व ग्राम्यबोध तलाश लेता हूँ जो प्रच्छन्न रूप से आकार लेती यात्राओं से लेकर नर्मदा की लहरों तक आए उनके आठ-दस काव्य संग्रहों में तथा आज तक लिखी जा रही कविताओं में मौजूद रहता है। उन कविताओं में भी जिन्हें कभी कभी मौज में आकर वे मुझे टेलिफोन पर सुना डालते हैं। मैं मित्रों से चर्चा भी करता हूँ कि रघुवंशी जी से गाँव कभी भी नहीं छूटा। यह अलहदा बात है कि उन्हें महानगरों में बसने का संयोग भी नहीं मिला, लेकिन मिलता भी तो कदाचित उनसे सिवनी और हरदा नहीं छूट पाता। इधर की कविताएँ देखकर भी यही लगता है कि, महानगर रघुवंशी की तासीर से मेल नहीं खाते। जिस रचनाकार के जीवन की प्रारंभिकता में गाँव, गली और खेतों के साथ भोले भाले ग्रामीण किसानों का साहचर्य हो उनसे गाँव नही छूट पाता। रघुवंशीजी स्वयं भी इस नास्टेल्जिया से बाहर नहीं आना चाहते। गाँव और ग्राम्य अनुभूति बाजदफे नशा ही होती है रघुवंशी जी फिलहाल इस नशे में आपार मस्तक डूबे हैं। रघुवंशी जी का हरदा फकत प्रताप चौक से लेकर शासकीय महाविद्यालय तक ही विस्तीर्ण नही हैं। वे समूचे 'भुआणे' के विस्तार को अपनी कविताओं में समाहित किए हुए हैं। रघुवंशी जी से हरदा को जुदा करके न तो हरदा का आकलन हो सकता है और न, ही रघुवंशीजी का।

हिन्दी में ललित निबंध की परंपरा को निरंतरता देने और समृद्ध करने में श्री

नर्मदाप्रसाद उपाध्याय की महती भूमिका है। पिछले तीन से भी अधिक दशकों से मैं उनसे मिलता रहा हूँ। उच्च प्रशासनिक पद पर होने के बावजूद उनमें जो विनम्रता और कलाबोध है उसकी सराहना की जानी चाहिए। श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय अपने निबंधों में जीवन की कलात्मक विविधताओं को देखते परखते हैं। उनके निबंधों में व्याप्त जीवन संपूर्ण और विविधवर्णी है। काल के लौकिक विभाजनों के बावजूद काल में जो अनंतता का सुख है वह चिंतन है। उपाध्याय जी के निबंध प्रच्छन्न रूप से इसी निरतंरता की व्याख्या है। इस व्याख्या में प्रेम और सौन्दर्य है सुख दुख के आवर्त हैं, यात्राएँ हैं इतिहास और स्थापत्य हैं। एक कलाकार की संस्कृति भी संपूर्ण रूप से विद्यमान है। उपाध्याय जी के निबंध दरअसल हमारे आसपास फैली विकरालता में शिवत्व तलाश करने के प्रयास से जन्में हैं। हमारे इर्द गिर्द यों बहुत कुछ फैला पसरा है लेकिन देखने के लिए आँख चाहिए। उपाध्याय किसी स्थापत्य को देखते समय सिर्फ गुंबदों अथवा मेहराबों के सौन्दर्य पर रीझकर नहीं रह जाते वरन वे गवाक्षों और गलियारों के बीच पसरे हुए मौन से काल के थरथराते स्पंदनों को भी सुनते हैं।

उपाध्याय जी सरल और सहज अभिव्यक्ति के निबंधकार हैं। उनके पास भाषागत उलझावों वाली भूल नहीं बल्कि विचार के विस्तीर्ण और सीधे रास्ते हैं। जहाँ यात्री अपनी बोझिल गठरी को किसी छायादार पेड़ के नीचे रखकर तने से सिर टिका सकता है। इधर लघुचित्रों पर उपाध्यायजी के विवेचना परख व्याख्यानों ने उनके व्यक्तित्व को नई ऊचाइयाँ प्रदान की हैं। उनके अनेक निबंध संग्रह पुरस्कृत हुए हैं तथा सुधीजनों के बीच समाद्रत भी। भारतीय चित्रांकन परंपरा की मौलिक समीक्षा के लिए उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का कलाभूषण, सम्मान मिला तथा चार्ल्स इंडिया कालेज ट्रस्ट लंदन एवम सिमेगर लेडर जर्मनी की फेलोशिप भी। हरदा और भुआणे की लोक परंपराओं से उपाध्याय जी को अगाध प्रेम रहा है। उपाध्याय जी का होना हरदा के लिए प्रतिष्ठा और गौरव की बात है।

लोक साहित्य के गांभीर्य और नई कविता के क्षेत्र में सर्वथा मौलिक और संपन्न भाषाशैली के लिए डॉ. धर्मेन्द्र पारे की चर्चा पिछले दो दशकों से लगातार बनी हुई है। डॉ. पारे ने भुआणे की सूदूर लोकांचलों में बसी कोरकू जनजाति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का गहन अध्ययन किया तथा अनेक शोधग्रंथ लिखे, जिनमें *कोरकू संस्कार गीत, रायसल निमाड़ी गाथा, ढोलाकुँवर, कोरकू जनजातीय गाथा, तथा कोरकू देवलोक* आदि उल्लेखनीय हैं। *कोरकू जीवन राग* नामक उनकी कृति अभी अभी आई है। इस शोध परक ग्रंथ में, उन्होंने कोरकू जनजाति द्वारा विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों का न केवल संग्रहण किया वरन उनका अनुवाद करते हुए उन पर विश्लेषण परक व्याख्या भी की है। कोरकू जनजाति है। सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि का शोधन करते हुए डॉ. पारे एक नष्ट होती सांस्कृतिक

धरोहर को बचाने का अप्रतिम काम कर रहे हैं। क्योंकि इधर नगरीयकरण और व्यवसायगत विवशताओं के चलते भुआणे की प्रमुख जनजातियों ने पलायन शुरू कर दिया है। वे अपने मूल संस्कारों, व्यवसायों और ठिकानों को छोड़कर शहरों की तरफ भागे जा रहे हैं। इस निर्बाध माइग्रेशन से न केवल उनकी भाषा छूट रही है बल्कि वे रीति रिवाज और संस्कार भी छूट रहे हैं, जो शताब्दियों से जंगल की मिट्टी और आबो हवा में पल्लवित होते रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि, डॉ धर्मेन्द्र ने जनजाति विषयक किए गए शोधकार्य को आदिवासी लोककला और तुलसी साहित्य अकादमी ने सिलसिलेवार प्रकाशित भी किया है और ये सारे ही ग्रंथ अपने मूल स्वरूप में यथावत उपलब्ध भी हैं।

डॉ. धर्मेन्द्र पारे नई कविता के क्षेत्र में एक संभावनाशील व्यक्तित्व के रूप में भी उतने ही समादृत हैं। 'समय रहते' नामक उनके काव्य संग्रह के लोकार्पण के अवसर पर आयोजित समारोह में मुझे शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस कृति का लोकार्पण देश के शीर्षस्थ पत्रकार एवम् विचारक प्रभाष जोशी के हाथों हरदा में संपन्न हुआ। इस कार्यक्रम में आसपास के अनेक बुद्धिजीवियों एवम् पत्रकारों की बहुत महत्वपूर्ण उपस्थिति रही थी। मैंने प्रभाष जोशी को डॉ. धर्मेन्द्र पारे की कविताओं के वाचन के दौरान (लगभग) विव्हल होते देखा है। यह प्रभाष जी की संवेदनशीलता भी है और डॉ. धर्मेन्द्र पारे की काव्य चेतना की सच्चाई भी। धर्मेन्द्र की कविताओं में लोक संवेदना की जो अदृश्य आँच होती है वह मुखर और अनुभुति परक होती है और यही कारण है कि, इन कविताओं की अनुगूंज दूर तक सुनाई देती है। हरदा के सांस्कृतिक कलेवर को सम्हालने तथा उसमें आत्मवृद्धि करने में डॉ. धर्मेन्द्र पारे का महत्वपूर्ण योगदान है।

हिन्दी कथा-साहित्य में श्री नरेन्द्र मौर्य की उपस्थिति को एक महत्वपूर्ण संभावना की तरह देखा जाता रहा है। नरेन्द्र ने लम्बे समय तक कहानी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति से एक वृहद पाठक समाज को आकर्षित किया। 'कोलम्बस जिंदा है' प्रस्थान, और संवाद जैसी कहानियाँ एवम् तलाश जारी है और 'रूबरू' उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं। नरेन्द्र के पास कहानी की एक मौलिक और व्यंग्यपरक भाषा है। यह भाषा मुग्ध भी करती है और कथा की पठनीयता भी बढ़ाती है। नरेन्द्र मौर्य की अधिसंख्य कहानियों के पात्र हरदा और भुआणे के हैं। श्री नरेन्द्र मौर्य की एक कहानी पर फीचर फिल्म का निर्माण भी हुआ तथा वह एक चर्चित हिन्दी फिल्म के रूप में जानी जाती हैं।

हरदा के साहित्यिक वातावरण को गतिशीलता देने के उद्धेश्य से नरेन्द्र मौर्य एवम् श्याम साकल्ले ने सतपुड़ा लोकसाहित्य परिषद की स्थापना की। इस संस्था के तहत पिछले अनेक वर्षों से व्यंग्य एवम् कथा साहित्य के समर्थ रचनाकारों को पुरस्कृत एवम् सम्मानित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम की वज़ह से हरदा में राष्ट्रीय स्तर के अनेक साहित्यकारों की

आवाजाही होती है। पिछली दफे दिसम्बर की एक बेहद ठंडी रात में, मुझे सतपुड़ा लोकसाहित्य परिषद के एक सम्मान समारोह में शामिल होने का अवसर मिला था। इस समारोह में मैंने हरदा के बुद्धिजीवियों एवम् संस्कृतिकर्मियों की एक उल्लेखनीय उपस्थिति को देखा है। नरेन्द्र मौर्य ने पिछले कुछ वर्षों से लिखना बंद कर दिया है। हरदा के साहित्यिक वातावरण के लिए यह एक दुखदायी स्थिति है। लम्बे अर्से से सतपुड़ा लोक साहित्य परिषद के कार्यक्रम भी नहीं हुए। नरेन्द्र मौर्य को इसकी निरंतरता के लिए पहल करनी चाहिए।

इस तारतम्य में श्याम साकल्ले के योगदान को भी स्मरण करने की जरूरत है। मैं साकल्ले की वक्तृत्व शैली का आरंभ से ही प्रशंसक रहा हूँ। हरदा के आस पास के इलाकों में मैने श्याम भाई जैसा तेजस्वी वक्ता और संचालनकर्ता नहीं देखा। साकल्ले जी में साहित्य की और व्यंग्य की गहरी समझ है। भुआणी के भाषा वैभव में भी उनकी अच्छी दखल है। बीच के कुछ वर्षों में उन्होंने भुआणी के शब्द सौन्दर्य पर एक कॉलम भी लिखा था जो हरदा के स्थानीय अखबार में लम्बे समय तक प्रकाशित भी हुआ। भुआणी के लोक साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में साकल्ले जी का यह अवदान स्मरणीय है।

हरदा के श्री ज्ञानेश चौबे एक संवेदनशील शिक्षक होने के साथ ही एक संस्कृतिकर्मी एवम् साहित्यिक समझ रखने वाले व्यक्ति के रूप में ख्यात हैं। देश के सामाजिक एवम् राजनीतिक परिदृश्य पर एक नागरिक के दायित्व का निर्वाह करती उनकी चिट्ठियाँ अखबारों में दिखाई देती हैं। ज्ञानेश संवदेनशील हैं और उनमें साहित्य के संस्कार भी हैं। उनमें जो अहंतुक मित्रभाव है वह अपरिचितों तक को प्रभावित करता है। साहित्य के संस्कार होने के कारण उनके पास एक समृद्ध भाषाशैली है जो साहित्यिक कार्यक्रमों के संचालन के दौरान दिखाई देती है।

पिछले कुछ वर्षों से हर वर्ष शिक्षक दिवस पर श्री ज्ञानेश चौबे एक शिक्षक सम्मान समारोह आयोजित करते हैं। इस समारोह में सुयोग्य एवम् समर्पणशील शिक्षकों को सम्मानित किया जाता है। तथा अतिथि विद्वानों को बुलाकर शिक्षा के समकालीन स्वरूप पर व्याख्यान भी करवाया जाता है। यह समारोह गरिमामय होता है, जिसमें ज्ञानेश का समूचा परिवार, बेटी के विवाह जैसी जिम्मेदारी से जुटता है। शिक्षा के व्यवसायीकरण के युग में ज्ञानेश की इस पहल का स्वागत किया जाना चाहिए।

हरदा के साहित्य पटल पर पिछले कुछ वर्षों से अर्चना भैसारे की उपस्थिति ध्यान आकर्षित करती है। नई कविता के क्षेत्र में अर्चना का उल्लेखनीय हस्तक्षेप है। इधर उनका एक कविता संग्रह भी प्रकाशित हुआ है जिसका नाम है 'कुछ बूढ़ी उदास औरतें' अर्चना की कविताओं का मूल स्वर स्त्री अस्मिता और श्रमसाध्य महिलाओं के जीवन संघर्ष पर एकाग्र

है। अर्चना की दृष्टि मौलिक एवम् विस्तृत है। उनकी कविताओं पर अभी अंतिम तौर पर कुछ कहना जल्दबाजी होगी लेकिन उनकी भाषागत मौलिकता गहराई तक प्रभावित करती है। सामाजिक वैषम्य को लेकर उनकी कविताओं में जो प्रतिरोध के स्वर हैं वह उन्हे एक अलहदा व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। मेरा यकीन है कि आगे चलकर वे हरदा की एक समर्थ और प्रज्ञावान कवयित्री के रूप में समादृत होंगी।

हरदा का साहित्यिक परिदृश्य सिर्फ इतना ही नहीं है जितना लिखा गया है। वह इससे भी ज्यादा विस्तृत और सूदूर गाँवों कस्बों तक पसरा हुआ है। इसे केवल समकालीन परिदृश्य ही कहा जाना चाहिए। पीछे लौटकर देखें तो आदरणीय प्रो. महेशदत्त मिश्र से लेकर वर्तमान में डॉ. प्रभुशंकर शुक्ल एवम् डॉ. विनीता रघुवंशी तक अनेक अग्रणी व्यक्तित्व हरदा में ही उपस्थित है। जिनके सृजन की सुवास असंदिग्ध रूप से यहाँ की आबो हवा में विद्यमान है। हरदा में नाटक, पेंटिंग तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय अनेक ऊर्जावान व्यक्तित्व काम कर रहे हैं। उनके सभी के सृजन और अवदान का आकलन होना चाहिए। मेरी जानकारी सीमित है इसलिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

38 जसवाड़ी रोड खंडवा म.प्र.

आज भी याद आता है बीता हुआ कल...

विष्णु राजोरिया

'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम' रामधुन की सामूहिक सस्वर ध्वनि के साथ, रामलाल बैण्ड मास्टर की हथेली की जोरदार थाप जब ढोलक पर पड़ती और उनकी उंगलियाँ थिरकने लगती तो ऐसा समां बंध जाता था कि लोग खिड़की, दरवाजे, खोल, सड़क पर रामधुन गाते, नागरिकों की प्रभातफेरी में शामिल हो जाते। यह नजारा देखने को मिलता था, 2 अक्टूबर महात्मा गांधी के जन्म दिवस पर। साठ साल पहले हरदा प्रखर राजनीतिक चेतना, सामाजिक समरसता, मानवीय करूणा और जनसेवी भावना से ओतप्रोत राष्ट्रीय विचारधारा के नागरिकों का नगर रहा है।

पंडित श्री जगरामजी ज्योतिषी के सुपुत्र श्री शिवकुमार एवं पुत्र वधु श्रीमती सरस्वती देवी के प्रथम संतान के रूप में मेरा जन्म 27 मार्च 1941 को गांधी चौक में हुआ था। अन्नापुरा, प्रायमरी स्कूल में टाटपटटी पर बैठकर,स्लेट पर लिखकर अ-आ-इ-ई से लेकर, राम उठ घर चल, हवा चली, पानी गिरा, नाली बही, पढ़ते रहे। गिनती तो ठीक पर पहाड़े याद करने में नानी याद आती थी। अद्धा, पौना, सवैया बाप-रे-बाप। मुझसे रटते-रटते भी याद नहीं होते। गुरूजी बांस की छड़ी जब हथेली पर मारते तो हथेली में खून और आंखों में आँसू छलछला आते। दोनों हथेली मलते हुए हाथों को जांघों के बीच दबाते और गुरूजी गरज उठते। दूसरा हाथ खोलो। कम से कम दो बेंत रोज खाना पड़तीं।

30 जनवरी 1948 को मैं यही कोई लगभग सात बरस का था। मेन रोड पर कोठीरीजी की कपड़े की दुकान के पास स्थित बाबू सेठ की होटल के सामने जबरदस्त भीड़ थी। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती जा रही थी। जिसे देखो रो रहा था, सिसक रहा था। एक हाथ ठेले

पर महात्मा गांधी की तस्वीर सजाकर रखी गई थी। फूल की मालाओं से उसे लाद दिया गया था। लोग आते गये, कारवां बढ़ता गया, गांधीजी की गोली मारकर हत्या कर दी गई थी। सब तरफ आंसुओं का सैलाब था। आंखे लाल हो रही थी। रूमाल-अंगोछे आंसुओं से गीले होते जा रहे थे। लोग हतप्रभ थे। रोते, बिलखते, सिसकते लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी।

'महात्मा गांधी अमर रहे। जब तक सूरज-चाँद रहेगा, बापू तेरा नाम रहेगा।' इन नारों के साथ जुलूस ने पूरे शहर की परिक्रमा लगाई। शनैः शनैः लोग पेढ़ी घाट पर पहुंचे। कुछ नाई बुलाये गये। श्री चम्पालाल सोकल, श्री मगनलाल कोठरी, श्री महेशदत्त मिश्र, श्री महेन्द्र दत्त मिश्र (मन्नी बाबू), श्री रामकिशन जलखरे, पंडित राधेश्याम उपाध्याय, डॉक्टर रामप्रसाद, सांवरिया सेठ, मेरे पिताजी शिव कुमार शर्मा, नर्मदा प्रसाद एवं रामचन्द्र राजोरिया, श्री मदनलाल अग्रवाल (बीड़ वाले), मुन्नालाल जैन आदि प्रमुख लोगों के साथ ही सैकड़ों लोगों ने बापू के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप अपने सिर मुण्डवा लिये। घंटाघर पर शोकसभा हुई। चारों और दुःख का सागर उमड़ पड़ा। शहर के सारे बाजार-दुकाने बंद रही। चाय पान की कौन कहे अनेकों ने उस दिन खाना भी नहीं खाया। मैं साक्षी बना इस दुःखद घटना से उपजी शोक लहर का। मैं पूरे जुलूस में साथ रहा। मैंने भी चाहा मेरे भी बाल काट दिये जायें। लेकिन लोगों के हुजूम के आगे मुझ जैसे बालक की सुनता ही कौन। अपने पिताजी और चाचाजी के साथ दुख में डूबता-तैरता मैं घर आया। दादी ने कड़ी फटकार लगाई मैं अपने बिस्तर में दुबक कर जो सोया तो दूसरे दिन आँख खुली। मुझे सुबह-सुबह सीताराम हलवाई के यहां दूध लेने जाना पड़ता था। बड़े मंदिर के पास में एक कुआं और पीपल का बहुत घना पेड़ था। वहीं पांच-सात हलवाइयों की दुकानें थीं। गंगू हलवाई के गुलाबजामुन, लक्ष्मीनारायण हलवाई की कचोरी और सीताराम हलवाई की जलेबी खाने शहर के कोने-कोने से लोग जमा होते थे। उन दिनों हलवाइयों की दुकानें अधिक और दवाई की दुकानें कम थीं। आजकल हलवाई की दुकानें कम और दवाई की दुकानें अधिक हो गई हैं। लक्ष्मी नारायण हलवाई की कचोरी से याद आया। वह अपने हिसाब से ही कचोरी बनाते थे। दोपहर 3 बजे से ही ग्राहक दुकान के चक्कर लगाने लगते। दुकान पर आते। जब बिक्री शुरू होती तो पहले घान की एक-एक कचोरी उपस्थित ग्राहकों को दी जाती। एक व्यक्ति को दो से अधिक कचोरी देने से वे साफ मना कर देते कहते - और भी लोग चक्कर लगा रहे हैं। अब कल खा लेना। कुछ लोग कचोरी के बाद मलाई के लड्डू भी खरीदते थे। सुबह के वक्त जलेबी सभी हलवाई बनाते थे। लेकिन शुद्ध घी की जलेबी के लिये सीताराम हलवाई का जो रूतबा था उसका कोई मुकाबला नहीं था। एक आने की कचोरी और एक आने की दोनाभर जलेबी खाकर जब कुएं का ठण्डा पानी पीते तो लोग डकार लेने लगते। दूध का भी चलन था, बच्चे आमतौर पर दूध-जलेबी की ही फरमाइश करते थे।

श्री मोजीलालजी दुबे ने तीसरी-चौथी कक्षा में पढ़ाया। चुटकी भर नास लेकर नाक से सुड़का लगाते थे दुबेजी। उनकी नाक के निचले हिस्से में कत्थई रंग का पाउडर सा लगा रहता था। दुग्ध धवल धोती, झक सफेद कुरता और गांधी-टोपी। हाथ में डण्डा। बस जहां कहीं दिख जाते, बच्चे भाग खड़े होते। पढ़ाते बहुत अच्छा थे। पिटाई भी अच्छी करते। आज भी उनकी याद आते ही सिहरन-सी अनुभव होती है। प्रायमरी स्कूल से ही लगी हुई मिडिल स्कूल की भव्य इमारत थी। वहां सागौन के मोटे पटियों से बनी डेस्क और बेंच पर छात्र बैठकर पढ़ते थे। हर डेस्क में चीनी की दो दवात जड़ी हुई थी। कभी फत्तू, कभी रामसिंह और कभी मन्नु चपरासी इन दवातों में स्याही भर देते थे। चौथी कक्षा पास कर पांचवी में दाखिला लिया और पहुंच गये अपने मिडिल स्कूल में।

आकर्षक प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी श्री दुलीचंद शर्मा हमारे हेड मास्टर थे। हाथ में डण्डा लिये ड्रिल मास्टर मोहम्मद अली घूमते थे। क्या मजाल कि स्कूल टाईम में एक भी लड़का क्लास से बाहर दिख जाये। श्री रमाशंकर पाण्डे गेम्स टीचर थे। व्हालीबॉल और कबड्डी में हरदा की टीम जिले में अव्वल रहती थी। हॉकी-फुटबॉल भी खूब खिलाई जाती थी। हर क्लास को एक दिन खेलने का मौका मिल ही जाता था। जाकिर अली साहब, श्री दशरथ दीक्षित, श्री रामाधार उपाध्याय, श्री बृजमोहन उपाध्याय (लल्लू मास्साब), श्री गंगाधर माकवे, श्री रामलाल दुबे, श्री शंकर लाल तिवारी, श्री जगन्नाथ प्रसाद सिरोही, श्री नर्मदा प्रसाद चौबे, श्री सिलारपुरिया आदि शिक्षक अपनी श्रेष्ठ अध्यापन कला के लिये जाने पहचाने जाते थे।

मिडिल स्कूल में एक विशाल सभागार था। हरा भरा बगीचा और वाटर रूम था। जहां से फत्तू पानी-पेशाब की छुट्‌टी में बच्चों को पानी पिलाता था। हाथ की हथेली को मुंह से लगाकर ओख से पानी पीते थे सभी छात्र। एक अच्छा पुस्तकालय था। मनमोहन, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्रिकाएं पढ़ने को मिलती थी। 14 नवम्बर को नेहरूजी का जन्म दिवस मनाया जाता था। मैं आठवीं कक्षा में था। नेहरूजी पर जिला स्तरीय निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। मेरे निबंध पर जिले में प्रथम पुरस्कार घोषित किया गया। जिला कलेक्टर हरदा आये। मिडिल स्कूल के व्हालीबॉल ग्राउण्ड पर कार्यक्रम हुआ। मुझे अपना लेख पढ़कर सुनाने को कहा गया। मैंने लेख पढ़ा। पुरस्कार में मुझे नेहरूजी की फ्रेम की हुई तस्वीर दी गई। इनाम लेकर घर आया। पिताजी को तस्वीर दिखाई। उन्हें यकीन ही नहीं हुआ। कहने लगे - 'ऐसी फोटो तो बाजार में चार-चार आने में मिलती है। इसमें तेरा नाम कहां है ? कहां लिखा है प्रथम पुरस्कार।' मेरे पास कोई जवाब नही था। इतने में ही काणे गुरूजी निकले। वे हमें, मोहल्ले के तीन चार लड़कों को ट्यूशन पढ़ाने आते थे। बहुत बुजुर्ग थे। उनकी एक आंख गाय के सींग मार देने से चली गई थी। खेड़ीपुरा नाके के पीछे

रहते थे। वे उसी कार्यक्रम से आ रहे थे, जहां मुझे कलेक्टर साहब ने पुरस्कृत किया था। कहने लगे – 'शिवकुमार तेरे लड़के ने तो गजब कर दिया। पूरे जिले में पहले नम्बर पर आया है। उसे मिठाई खिला मिठाई और आज तो मैं भी खाऊंगा।'

हर पन्द्रह अगस्त को स्कूल के बच्चों की प्रभात फेरी निकलती थी। मिडिल स्कूल ग्राउण्ड पर काशीबाई कन्या पाठशाला, कुलहरदा, खेड़ीपुरा आदि स्कूलों के शिक्षक और बच्चे एकत्रित होते थे।

हरदा नगर में कचहरी कार्यालय के पास एक सिनेमाघर था – श्रीकृष्णा टॉकीज। बाबूसेठ उसके मालिक थे। पैर में लचक थी इस कारण बातचीत में लोग उन्हें बाबू लंगड़ा भी कहते थे। हण्डिया रोड पर दूसरा टॉकीज था प्रताप टॉकीज। इसके मालिक थे सेठ श्री प्रतापचंद बाफना। टिकिट दर थी दो आना, चार आना, आठ आना और ऊपर की बालकनी बारह आना। सिंगल मशीन के कारण तीन बार रील रूक जाती थी। कुल एक दो मिनिट को पूरा हाल अंधेरे में डूबा रहता। खूब सीटियां बजती। हो हल्ला होता और कुछ पल में फिर पिक्चर शुरू हो जाती। इन्टरव्हल में गेट पास मिलते थे। अक्सर स्कूल जाने वाले लड़के इन्टरव्हल में आधी दर पर गेट पास बेच देते। जो खरीदते वह पहले उत्तरार्ध देख लेते और पूर्वार्ध की कहानी दोस्तों से पूछ लेते अथवा किसी दिन पहले आकर पूर्वार्ध देख लेते और गेट पास बेचकर घर पहुँच जाते। यह सब इसलिये होता ताकि घर वाले यह संदेह न कर सकें कि लड़का सिनेमा देखने गया था। यही कारण था कि दो आने वाली टिकट गैलरी स्कूली लड़कों से भरी रहती थी।

जत्रा पड़ाव में हाजीजी लोहार की दुकान के सामने विशाल मैदान था। नदी किनारे पर कई खलिहान और कुछ मंदिर थे। साल के दो चार महीने यहां नाटक, नौटंकी या टूरिंग टाकीज लगता था। जब नाटक नौटंकी होती, अलीबाबा और चालीस चोर, हीरा डाकू, लैला मजनू आदि नाटकों के समय खासी भीड़ रहती। जब कभी कोई डांसिंग पार्टी टॉकीज में बुलाई जाती, उस समय तांगे पर ढोलक और मंजीरे बजाते हुये पूरे शहर में एलान कराया जाता। शहर में खासोआम में यह चर्चा का एक खास विषय होता। कोल्हापुर की डांसर के कमर के झटके, पूना की डांसर की अदाएं और मोहन मास्टर के गले की गली-गली में चर्चा रहती।

एक दो साल के अंतराल में बड़े मंदिर के सामने हलवाईयों की दुकान के बाद जो लम्बा चौड़ा मैदान था, वहां रामलीला होती थी। मथुरा वृन्दावन के 20-25 कलाकार रामलीला का मंचन करते थे। आठ बजे से रात को शुरू हुई रामलीला आधी रात तक चलती। ऐसा लगता था गोया पूरा शहर रामलीला देखने आ गया हो। न घरों में चोरी होती

और ना ही घर लौटती महिलाओं के साथ कहीं छेड़-छाड़ । अमन का चमन था उन दिनों हरदा नगर।

छोटा सा कस्बानुमा शहर। प्राय: सभी एक दूसरे से परिचित। बाबू नाई, घूड़मल नाई, मोती और चुन्या धोबी, हजारीलाल हरिजन, जेठा सिंधी, मूलचंद रामदयाल किताब वाले, मुन्नालाल जैन न्यूज पेपर एजेंट, लक्ष्मी स्टोर्स वाले फ्रीडम फाइटर श्री लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, श्री चम्पालाल जी सोकल, श्री मगन लालजी कोठारी, श्री ईश्वर सोनी, श्री महेशदत्त जी मिश्र, श्री मन्नी बाबू, श्री लच्छू कप्तान, श्री विट्ठलदासजी ५०१, हरनारायण मामा, श्री बाबूलाल जी नाजर, श्री रायबहादुर हरिशंकर सेठ, श्री चांद रतनजी बाहेती, श्री रामकिशन जलखरे, श्री सीताराम पटाले, श्री सांवरिया सेठ, श्री गंधीजी, श्री नर्मदा प्रसाद राजोरिया, श्री लक्ष्मण राव नाईक, डॉक्टर रामप्रसाद जी, श्री रामनारायण जी नगर सेठ, श्री कृपाशंकरजी अवस्थी एडवोकेट, विद्यानन्दजी मिश्र, श्री नर्मदा प्रसाद जी उपाध्याय, पंडित राधेश्याम उपाध्याय (चक्की वाले), पंडित जगन्नाथजी हलवाई, 'वैद्यजी' तथा नाड़ी वैद्य रामकरण जी, नर्बदाबाई मिडवाईफ, हाजीजी, डॉक्टर छोगालालजी झंवर, श्री नन्हेलाल जी पटेल, श्री सीताराम हलवाई, श्री शुक्लजी बाड़ावाले, श्री लक्ष्मी नारायण हलवाई, श्री पण्डा बाबा चाटवाले, पंडित जगरामजी ज्योतिषी, पंडित भगवान प्रसादजी मिश्र, बिहारी बाबू (बिहारीलाल वर्मा बस वाले) तथा गया प्रसादजी (नगरपालिका वाले गया बाबू) आदि ऐसे छोटे-बड़े अनेक प्रतिष्ठित-सर्वविदित-सर्वचर्चित नाम थे, जिन्हें पूरा शहर जानता-पहचानता था। इनका अपना मान-सम्मान था। शहर की जान और शान थे, ये लोग।

हमें बचपन से ही सिखाया जाता था। हमें घर में बताते थे, बाबू नाई काका आये है, सत्तू हरिजन बाबा आये हैं, घूड़मल नाई दादा आये हैं, ईश्वर सोनी काका बुला रहे हैं। क्या मजाल जो कोई बच्चा बगैर सम्मानित सम्बोधन के किसी नाई, धोबी, हरिजन का सीधा नाम ले ले। सभी छोटे बड़े एक दूसरे का सम्मान करते थे। रामराम, नमस्कार, पांय लांगू, पंडितजी प्रणाम आदि सम्मानजनक अभिव्यक्ति के शब्द कहे बगैर कोई सम्बोधन पूरा नहीं होता था। पूरा शहर एक बड़े कुनबे की तरह था। सभी एक दूसरे को जानते पहचानते थे। एक दूसरे की सहायता करना, एक दूसरे के सुख-दुख में भागीदार रहना आम बात थी। छोटे से छोटे आदमी की शवयात्रा में भी सौ-दो सौ लोग शामिल होते थे। विवाह का आमंत्रण और मृत्यु की सूचना, शीतलमाता पूजन, गंगाजली पूजन, पंगत आदि का निमंत्रण नाई द्वारा ही दिया जाता था। जमीन पर टाट पट्टी या चादर बिछाकर अन्यथा धूल भरी सतह पर पानी छिड़ककर पातल दोने में सब्जी, पुड़ी, रायता, मिठाई आदि परोसी जाती थी। परोसने वाले बारबार अनुग्रह करके खिलाते। लाख मना करो फिर भी गरम गरम जलेबी है एक तो ले लो, अरे छोटा सा लड्डू है एक तो चलेगा, यह कहते हुए परोसगारी की

जाती।

किसी भी परिवार में विवाह लगभग पूरे मोहल्ले के लिये महोत्सव जैसा होता। गेहूं, दाल, चांवल आदि बीनने (साफ करने) के लिये पास पड़ौस की महिलाएं शादी वाले परिवार में एकत्रित हो जाती थी। सभी गीत गाते हुए गेहूं चांवल दाल आदि से मिट्टी कंकर बीन-बीन कर चुनती जाती। फिर अचार, पापड़ और बड़ी बनाई जाती। इस काम में भी मोहल्ले की महिलाओं की साझेदारी होती थी। उस समय न तो पानी के टेंकर थे और ना ही शामियाने वाले। सब कुछ स्वयं परिवार को ही करना होता था। गणेश पूजा होती। कांकण-डोरा-कलेवा बांधा जाता। शीतला माता का पूजन करने घर परिवार और मोहल्ले की महिलाएं बैण्ड बाजे के साथ गढ़ीपुरा स्थित शीतलामाता मंदिर जाती।

मंदिर के आराध्य देवता और गांव-गली के पंडित के प्रति जनमानस में अगाध श्रद्धा थी। दान धर्म में लोग धर्मशाला या नदी पर पक्का घाट बनवा देते थे। कोई भी फल जब पहली बार घर में आता, सेठ साहूकारों, महाजनों के परिवार की ओर से वह फल पहले मंदिर में देवता और अपने पंडित पुरोहित को अवश्य ही भेंट किया जाता था। छाछ न बेचा जाता था ना ही खरीदा जाता था। अधिकांश घरों में गाय-भैंस थी। इन्हीं के दूध से दही और दही मथकर छाछ और घी निकाला जाता था। सेठ प्रतापचंदजी बाफना के यहां से सालभर का घी, हमारे यहाँ दान धर्म की भावना से भेजा जाता था। आज तो पानी भी खरीदकर पीना पड़ता है।

घंटाघर हरदा की शान है, पहचान है। यह नगर की समस्त घटनाओं और गतिविधियों का मूक साक्षी और केन्द्र बिन्दु है। स्वाधीनता आंदोलन से लेकर आज तक सभी धरना, प्रदर्शन, अनशन, सभा आदि का आयोजन इसी घंटाघर के मैदान में होता है। पहले घंटाघर के ऊपर टीन की चादरों से बनी हुई एक तिकोनी केनोपी लगी हुई थी। उस पर तांबे का एक मुर्गा लगा हुआ था। यह मुर्गा हवा में दिशा सूचक का कार्य करता था। जिधर हवा का बहाव होता मुर्गे का मुंह उसी ओर घूमता था। घंटाघर के अंदर एक बहुत बड़ी लोहे की जंजीर से एक भारी बेलननुमा ड्रम लगा हुआ था। परसराम घड़ीसाज सप्ताह में एक दिन आकर लोहे की चेन को कुछ आगे-पीछे खींचते और अपने ढंग से चाबी भर देते थे। घंटाघर में जब जो समय होता उतना घंटा बजता था। इसकी आवाज चार-पाँच किलोमीटर तक सुनाई देती थी। जानकार बताते है कि श्री चम्पालाल सोकल जब नगर पालिका अध्यक्ष थे तब घंटाघर के ऊपर लगी टिन की चादर की केनोपी क्षतिग्रस्त होने के कारण हटा दी गई और वहां पत्थरों से प्लेटफार्म बनाकर उस पर गणतंत्र के प्रतीक चिन्ह की राष्ट्रीय छवि की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित कर, 15 अगस्त 1947 अंकित कर दिया गया। घंटाघर ब्रिटिश शाासन काल

में ही स्थापित किया गया था। उसके रूप स्वरूप को जब जैसा चाहा नगर पालिका अध्यक्षों ने परिवर्तन किया। यहाँ तक कि बापू की प्रतिमा और चबूतरे के मूल स्वरूप में भी जिसने जैसा चाहा वैसा परिवर्तन किया जाता रहा। हम इस ऐतिहासिक स्मारक की रक्षा करने में असमर्थ रहे हैं इसे स्वीकारने में संकोच क्यों ? आज न तो घंटाघर का घंटा बजता है न घड़ी कोई समय बताती है। घड़ियों की मरम्मत कई बार कराई गई। घड़ी बदली भी गई लेकिन आज घड़ी वक्त के साथ इतनी बदल गई कि उसने वक्त बताना ही बंद कर दिया।

सन् 1952 में चुनाव थे। आचार्य कृपलानी, डॉक्टर राममनोहर लोहिया और अनेक नेता नेहरूजी से मतभेद के कारण कांग्रेस से अलग हो गये थे। महात्मा गांधी के निज सचिव रह चुके, हरदा के प्रो. महेशदत्त मिश्र ने भी कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। प्रजा समाजवादी पार्टी (प्रसोपा) ने झोपड़ी चुनाव चिन्ह लेकर आम चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े कर दिये। प्रो. महेशदत्त मिश्र जबलपुर में राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर थे। हरदा के लोग उन्हें स्नेह और आदर से 'महेश बाबू 'कहकर सम्बोधित करते थे। प्रसोपा का चुनाव चिन्ह झोपड़ी था। महेश बाबू प्रसोपा से विधानसभा के प्रत्याशी थे। पूरा शहर महेश बाबू के साथ उठ खड़ा हुआ। बाबू सेठ की होटल के ऊपर घास-फूस की एक झोपड़ी बनाकर सजा दी गई। पूरे नगर के लिये वह आकर्षण का केन्द्र बन गई।

उस समय हरदा विधानसभा सीट से दो विधायक चुने जाते थे। एक सामान्य सीट से और दूसरा हरिजन सीट से। कांग्रेस से श्री मगनलाल कोठारी और श्री रामेश्वर अग्निभोज को और प्रजा समाजवादी पार्टी से श्री महेशदत्त मिश्र और श्री प्रेमनाथ वासनिक (नागरपुर वाले) चुनाव लड़ रहे थे। घंटाघर पर सभाएं होती थी। खूब भीड़ जमा होती। रात आठ बजे से दस-ग्यारह बजे तक आम सभा होती। महेश बाबू अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर भाषण झाड़ते थे। समाजवाद, साम्यवाद, धर्म निरपेक्षता आदि की परिभाषा समझाते। विश्व युद्ध की विभीषिका, सोवियत संघ की संघर्ष गाथा और भारत को उपनिवेशवाद से स्वतंत्र कराने का विवरण सुनाते हुये जब महेश बाबू अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक मंच पर भारत की दुर्दशा का वर्णन करते, लोग विस्मयभरी दृष्टि से देखते हुए, हर्ष और आश्चर्य में डूबने तैरने लगते। लोग वाह वाह कह उठते। गजब का नॉलेज है। बहुत विद्वान है भाई। दूसरी ओर श्री मगनलालजी कोठारी तथा श्री रामेश्वर अग्निभोज अंग्रेजों के अत्याचार, आजादी की लड़ाई, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के त्याग और बलिदान के साथ गांधी-नेहरू के सपनों के भारत की तस्वीर पेश करते। श्री अग्निभोज तो जोशभरा भाषण दे लेते थे किन्तु कोठारीजी धीर गम्भीर वाणी में अपनी बात दृढ़ता से कहते थे। शहर पर महेश बाबू का जादू सिर चढ़कर बोल रहा था। चुनाव परिणाम आये। सामान्य सीट से प्रसोपा के प्रो. महेशदत्त मिश्र और हरिजन सीट से प्रसोपा के प्रेमनाथ वासनिक विजयी रहे, दोनों विधायक बने।

श्री महेश बाबू और श्री रामेश्वर अग्निभोज इन दो नेताओं के साथ 'हरदा' जीवन पर्यन्त जुड़ा रहा। श्री महेशदत्त मिश्र की स्मृति में उनके निधन के पश्चात् जो स्मृति ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। उसका भी शीर्षक है - 'हरदा के गांधी' ।

'दादा भाई नाईक'हरदा के गौरव पुरूष माने जाते हैं। भूमि दान आन्दोलन के प्रणेता विनोबा भावे के निकटतम सहयोगी कांग्रेस के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। विनोबाजी से प्रभावित होकर दादा भाई नाईक भूदान आन्दोलन को समर्पित हो गये। आजीवन वे भूदान की ही अलख जगाते रहे। उन्हीं के सद्प्रयासों से विनोबाजी हरदा पधारे थे।

हरदा के 'नव-रत्न' का उल्लेख किये बगैर हरदा की तत्कालीन परिस्थितियों के एक बहुत महत्वपूर्ण अंश से हम वंचित रहेंगे। राष्ट्रीय स्तर पर प्रो. महेशदत्त मिश्र एवं दादा भाई नाइक ने हरदा को गौरव गरिमा से महिमा मण्डित किया। तीसरी शख्सियत थी कॉमरेड लक्ष्मी नारायण कप्तान। लोग उन्हें लच्छू कप्तान के नाम से जानते-पहचानते थे। वे नगर में दीन-हीन-दुर्बल वर्ग, विशेषकर हरिजनों के नेता थे। नगर पालिका के सभी हरिजन कर्मचारी उनके इशारे पर चलते थे। उनकी आम सभा के वे अकेले ही वक्ता हुआ करते थे। घंटे दो घंटे धाराप्रवाह भाषण में कब किस नेता के खिलाफ क्या बोलेंगे, कोई कुछ नहीं सोच सकता था। जब जैसी मर्जी हुई, किसी भी नेता की ऐसी-तैसी कर देना उनके स्वभाव का एक अंग बन गया था। सफाई कर्मचारियों के एकछत्र नेता लच्छु कप्तान कम्युनिस्ट होने का दावा करते थे। एक बार उनके आव्हान पर सफाई कर्मचारियों ने अनिश्चितकालीन हड़ताल कर दी। सड़कों पर कचरे के ढेर लग गये। पाखाने साफ नहीं हुये। शौच करने के लिये कहां जाएँ ? क्या करें ? पूरा शहर हैरान-परेशान। तत्कालीन कांग्रेसी और समाजवादी नेताओं तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने टाऊनहाल और मिडिल स्कूल ग्राउण्ड के नाले के किनारे गहरी खुदाई कर शौचालय बनाये। बांस-बल्ली और टाट से परदे और पार्टीशन बनाये गये। शौचालय में चूना रखा गया। पाखाना करने के बाद चूना डालकर लोग जाने लगे। कई दिनों के बाद हड़ताल समाप्त हो सकी।

नगर पालिका का चुनाव उन दिनों डायरेक्ट होता था। अर्थात वार्ड मेम्बर और नगर पालिका अध्यक्ष सभी के लिये मतदान होता था। अध्यक्ष पद के चुनाव में तीन प्रतिद्वंदी थे। लच्छू कप्तान, श्री विद्यानन्द मिश्र और नगर सेठ श्री रामनारायण अग्रवाल। लोगों ने सेठजी के यहां जमघट लगाया। काजू, किशमिस, बादाम मखाने के साथ जलेबी का नाश्ता, चाय वालों को चाय, दूध वालों को दूध मिला। पान तो सुबह से आधी रात तक लोग चबाते रहे। हवा बन गई। सेठ रामनारायण जीत रहे हैं। गिनती शुरू हुई। परिणाम सामने आये। सारा शहर दंग रह गया। लच्छू कप्तान नगर पालिका अध्यक्ष चुन लिये गये।

लच्छू कप्तान ने टाऊन हॉल के बाहर ही छप्पर तान दिया। यही उनका आवास और कार्यालय बन गया। नगरपालिका को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। अध्यक्ष लच्छू कप्तान ने स्कूल की फीस बढ़ा दी। छात्र भड़क उठे। हाई स्कूल में मैंने विद्रोह की चिंगारी भड़का दी। हम कुछ मित्रों, टी.डी. अग्रवाल, विष्णु कौशिक, शिव शंकर वशिष्ठ और मैंने स्कूल में हड़ताल करवा दी। शाम को घंटाघर पर आम सभा और मशाल जुलूस का कार्यक्रम रखा गया। लक्ष्मी स्टोर्स वाले श्री लक्ष्मी नारायण अग्रवाल ने हमें 12 रूपये दिये। सात रूपये में लाइट और लाउडस्पीकर लगा। पाँच रूपयें में बांस के डण्डे, फटे-पुराने कपड़े और तेल लेकर मशालें बनाई गई। सभा हुई। हम लोगों के भाषण के बाद कुछ छात्रों को लेकर हम लच्छू कप्तान के कार्यालय, उसी छप्परनुमा टापरे पर पहुंचे, जहां उनका मुकाम था। फीस वृद्धि वापस लेने की मांग की। एक दो मशाल छत पर फेंकने की कोशिश कर ही रहे थे कि पुलिस आ गई। थानेदार अगुवाई कर रहे थे। पुलिस देख कर सब भाग खड़े हुये। मैं, टी.डी., कौशिक और बसंत भागने की फिराक में थे कि थानेदार गरजा - ''चलो, ले चलो सबको थाने।'' हम सरपट भागे। जत्रा पड़ाव, अन्नापुरा, चाण्डक चौराहा और पोस्ट आफिस होते हुये अपने-अपने घर पहुंच गये। सभी को घर में डांट खानी पड़ी। फीस कम कर दी गई। हमें दूसरे दिन बुलवाकर लच्छू कप्तान ने पीठ ठोकी। मिठाई खिलाई।

चौथे शख्सियत थे हरनारायण मामा। उनके जैसा झक सफेद कुरता-धोती शहर में कोई नहीं पहनता था। कलफ लगे कुरते की बांहों पर राजस्थानी चुन्नटे बनी होती थी। बाल हमने सदा काले ही देखे। पान की गिलोरी दबाये मामा जब बाजार से निकलते सभी राम राम करते थे उनसे। पहलवानी करते थे, हरनारायण मामा। पूरे जिले में नाम था उनका। नाग पंचमी पर मिडिल स्कूल के मैदान पर जिला स्तरीय दंगल होता था। विजयी पहलवान का ढोल नगाड़े के साथ जुलूस निकलता था। पूरे शहर में नाग देवता को दूध पिलाया जाता। सपेरों को दान-दक्षिणा मिलती। घर-घर में दाल-बाटी और खिचड़ी पकती थी। शुद्ध घीं तीन-चार रूपये सेर मिलता था। छककर खाते और दंगल देखते थे सारे लोग।

नव रत्न में चार तो यह हो गये। पांचवे थे प्रमुख बाबूलाल। इनकी बानगी भी हो जाये। एक थे बाबूलाल अग्रवाल जिनकी मेन रोड पर-कोठारीजी की कपड़े की दुकान के आगे चाय की दुकान थी। उसे बाबू सेठ की होटल कहा जाता था। शहर के छोटे-बड़े नेता,छुटभैय्ये ऐरे-गैरे तथा व्यापारी आदि सभी तबके के लोग बाबू सेठ की होटल में ही अखबार पढ़ते और चाय पीते थे।

दूसरे बाबूलाल थे मित्तल मास्साब। वे ट्यूशन पढ़ाते थे। शुक्रवारा में श्वेताम्बर जैन मंदिर के सामने, कोने वाला दो मंजिला कच्चे फ्लोर और टिन की चादर का एक मकान था।

हम लोग उस स्थान को 'मित्तल युनिवर्सिटी' कहते थे। सभी छात्र इस लोकप्रिय 'टीचिंग शाप' में पढ़ने को लालायित रहते थे। कारण यह कि यहां इंग्लिश के शब्दों की स्पेलिंग रटवा दी जाती थी और गणित के सूत्र (फार्मूले) घुटवा दिये जाते थे। यहां अत्यंत गरीब से एक रूपया भी स्वीकार कर लिया जाता था। सामान्यत: मिडिल कक्षाओं के दो रूपये से पाँच रूपये और हाईस्कूल कक्षाओं के पाँच रूपये से आठ रूपये मासिक तक ट्यूशन फीस ली जाती थी। पढ़ाई सुबह सात बजे से दस बजे रात तक अलग-अलग शिफ्ट में चलती थी।

कुछ लोग बताते थे कि मित्तल मास्टर साहब की एक आटा चक्की भी थी। बाबूलालजी मित्तल इंग्लिश और गणित के पुख्ता जानकार माने जाते थे। जब वार्षिक परीक्षा होती तब 'मित्तल युनिवर्सिटी' में पढ़ने वाले छात्र चहकते हुये निकलते थे। रिजल्ट आने पर अधिकांश, सम्भवत: 90 प्रतिशत तक छात्र उत्तीर्ण घोषित हो जाते थे। मित्तल मास्साब कहते थे – ''मेरे पास कमजोर से कमजोर घोड़ा लाओ वह सरपट दौड़ने लगेगा। गधा लाओगे तो मैं क्या, मेरा बाप भी गधे को घोड़ा नहीं बना सकता।''

तीसरे बाबूलाल थे श्री बाबूलालजी नाज़र। पहले कभी कचहरी में नाज़िर रहे थे। हमने जब देखा तब उन्हें सब्जी मण्डी में उनकी चाय की दुकान पर ही देखा। स्वाधीनता संग्राम सेनानी। पक्के गांधीवादी। बाद में समाजवादी हो गये। आदिवासियों को वनभूमि का कब्जा दिलाना उनका एक सूत्रीय कार्यक्रम था। दो-चार महीनों में वे दो-चार सौ आदिवासियों का जुलूस निकालकर तहसीलदार को ज्ञापन देने अवश्य जाते थे। जनता शासन काल में आप हरदा से विधायक भी चुने गये। विधान सभा में जनता पार्टी के विधायक रहे। हरदा नगर के लिये क्या कुछ किया, इसका इस अकिंचन को ज्ञान नहीं है। नाज़रजी भले, भोले, सीधे, सच्चे इन्सान थे। सभी उनका सम्मान करते थे।

चौथे बाबूलाल थे – बाबूलाल सिनेमा वाले। श्री कृष्णा टाकीज़ के स्वामी-संचालक। लोग इन्हें बाबू लंगड़ा भी कहते थे। सफेद शर्ट-पायजामा, क्रीम कलर का या काला कोट और सिर पर काली टोपी। बाद में टोपी लगाना बंद कर दिया था। सायकल पर बैठते कम थे मगर अक्सर सायकल उनके साथ ही चलती थी। बड़े शौकीन रंगीली तबीयत के शरीफ रईस। शाम से आधी रात तक सिनेमाघर के केम्पस में ही बैठते थे। सिनेमाघर के स्क्रीन के ठीक पीछे उनका कार्यालयानुमा कमरा था। लोग कहते थे वहीं बैठकर सुरापान करते थे। दिन बदले-वक्त बदलते देर नहीं लगती। टाकीज़ छूट गया। बाबू सेठ शराब में डूब गये। पांच-दस रूपये के लिए हाथ फैलाने लगे। हरदा के लोकप्रिय पूर्व विधायक, साधु पुरूष श्री नन्हेलालजी पटेल अक्सर उन्हें दस रूपये दे देते थे। शराब की लत उन्हें ले डूबी। अत्यंत दीन-हीन दुरावस्था में जीवन की अंतिम साँसे लीं।

और अंत में पांचवे बाबूलाल। यह थे बाबूलाल उर्फ बाबू पागल। लोग बताते थे कि ये पहले कभी फौज में थे। वहां से निकाले जाने के बाद से ही पागल हो गये। खाकी हॉफ पेंट पहने-नंगे बदन बाबू पागल का मुख्य कार्यक्षेत्र घंटाघर के चारों ओर था। कहीं भी किसी भी कोने में खड़े होकर अनवरत धारा प्रवाह अश्लील गालियां देना। एक हाथ ऊंचा कर, एक उंगली को नचाते हुये, लगभग घंटे-डेढ़ घंटे गालियां बकते। मुंह से लार टपकने लगती। फेन सा निकलता। बाबूलाल चुप होते तो किसी भी दुकानदार से कहते 'एक कप चाय पिलाओ' जिससे भी कहते वह एक आना थमा देता।

बाबूलाल और भी कुछ हो सकते हैं। मेरी स्मृति में जिन्हें मैं हरदा का नवरत्न कह सकता था। जितना 'जैसा' देखा-सुना-समझा आपके सम्मुख उल्लेखित कर दिया। अन्य विशिष्ट बाबूलालों से क्षमा चाहते हुये इसे यहीं विराम देता हूँ।

डोल ग्यारस और मोहर्रम, ईद और होली हरदा के बड़े सामाजिक-धार्मिक समारोह भरे दिन होते थे। डोल ग्यारस पर सभी मंदिरों के डोल निकलते थे। अनुपम-मनोहारी साज-सज्जा के साथ डोल के आगे अखाड़े के कसरती जवान, ढाल, तलवार, बल्लम-भाले के साथ करतब दिखाते चलते थे। अग्रवाल समाज के पंचायती मंदिर और सत्यनारायण मंदिर के डोल देखने लायक होते थे। पंचायती मंदिर के डोल के आगे हरनारायण मामा भगवान शिव का स्वांग (स्वरूप) रचकर-शिव मुद्रा में नृत्य करते चलते थे। उनकी मृगछाला, जटाजूट, चन्द्रमा और डमरू की छवि देखते ही बनती थी। हरदा के आसपास के 5-10 कोस (10-15 किलोमीटर) तक के ग्रामीण अपने परिवार के साथ डोल ग्यारस के चल-समारोह (जुलूस) को देखने, बाजार करने (शॉपिंग) के लिये हरदा आते थे।

होली के दूसरे दिन सुबह 'फाग' होता, रंग खेला जाता। अधिकांश जाति समूह अपने समाज के लोगों के यहां जाते। रंग-गुलाल लगाते। स्वल्पाहार करते, कहीं भांग की ठण्डाई छानते, कहीं भांग की गोली और मिठाई खाते। होली के दिन सभी समान होते। न कोई सेठ साहूकार ना ही कोई नौकर चाकर। सामाजिक समरसता का सच्चा स्वरूप साकार देखने को मिलता था होली पर।

मोहर्रम भी बहुत धूमधाम से मनाया जाता था। यह त्यौहार शिया मुसलमानों के मातम का त्यौहार है। यह हसन और हुसैन साहब की कुरबानी का स्मरण पर्व है। सन् 1947 तक बहुत अधिक ताजिये बनते थे। भारत विभाजन के बाद अनेक परिवार पाकिस्तान चले गये। धीरे-धीरे ताजियों की तादाद कम होती गई। ताजिये पहले पुरानी सब्जी मंडी में जमा होते थे। नगर परिक्रमा और विशेषकर घंटाघर पर प्रदर्शन के बाद जत्रा पड़ाव के मेले में सभी एकत्रित हो जाते थे। बच्चे रेवड़ी और ज्वार की धानी खाते, ताजियों के नीचे से

निकलते, खूब झूला झूलते। हिन्दु मुस्लिम सभी बच्चे जमकर मस्ती करते। कबीट घाट (नदी पर) करबला में ताजिये तिरोहित किये जाते थे।

ईद पर खेड़ीपुरा नाके के पास ईदगाह पर सामूहिक नमाज़ पढ़ी जाती थी। इसमें शहर काज़ी अगुआई करते थे। नमाज़ से पहले सभी मुस्लिम भाई नये कपड़े पहनकर घर से निकलते। लौटते समय एक दूसरे से गले मिलते। ईद की मुबारकबाद दी जाती।

दीवाली का तो कहना ही क्या ? महीने भर पहले से सफाई, रंगाई, पुताई का काम शुरू हो जाता था। कुम्हार भाई दिये और गवलन की मूर्ति बनाने में जुट जाते। हलवाई खील-बताशे तैयार करने लगते। भड़भूजे धान भूनकर धानी बनाने में जुट जाते थे। घंटाघर के पास, श्रीराम होटल के बाजू वाली गली में, चाक मिट्टी, चूना, गेरू और रामरज (पीली मिट्टी) के साथ ही तारपिन के तेल और आइल पेंट की दुकानें सज जाती थीं। सब्जी मार्केट के पास पटवा की दुकानों में गाय-बैल-भैंस को सजाने के लिये रंगीन मालाएं, कौड़ी के साथ गुथी हुई घंटियों की बिक्री शुरू हो जाती थी। सराफा और किराना दुकानों के बीच के चौड़ी सड़क पर, घंटाघर के सामने स्थित, श्री रामकिशन सराफ की बिल्डिंग से लेकर ललित स्टोर्स और हरनारायण मामा की होटल तक फटाकों की दुकानें सज जाती थी। दीवाली के दिन इक्की-दुक्की दुकानों पर रंगीन बल्ब की झालर दिख जाती थी। मीठे तेल के दिये खूब सजाये-जलाये जाते थे। घर-घर में गुजिये, मीठी नमकीन, पपड़ी और सकरपारे बनाये जाते थे।

दीवाली के दूसरे दिन अन्नकूट मनाया जाता था। मंदिरों में छप्पन भोग बनाकर भगवान को भोग लगाया जाता। अधिकांश समाज के अपने-अपने मंदिर थे, जहां अन्नकूट के दिन पूरे समाज का सामूहिक भोज होता था। भोजन से पूर्व भक्तगण भगवान के सामने रूपये-आठ आने या दो रूपये चढ़ाकर प्रणाम करते और भोजन वहीं कर लेते अथवा कुछ लोग प्रसाद लेकर घर लौट जाते। तीसरे दिन भाई दूज मनाई जाती थी। बहन अपने भाई को मिष्ठान खिलाकर भेंट स्वीकार करती थी। गाँवों में कहीं-कहीं पाड़ा-पाड़ी की लड़ाई का रोमांचकारी खेल खेला जाता था। ढोल नगाड़े बजाते हुये ग्रामीणों का यह अत्यंत प्रिय मनोरंजक आयोजन होता था। सभी लोग एक-दूसरे के यहां जाकर दीवाली की बधाई देते, मिठाई खाते और मौज मनाते थे।

अलीगढ़ के लाला प्यारेलाल ने घंटाघर के निकट एक दुकान खोली थी। यू.पी. की मिठाई और केशरिया दूध के लिये लालाजी की दुकान पर शाम होते ही भीड़ उमड़ पड़ती थी। जैसे-जैसे रात गहराती, दुकान पर दूध पीने वालों की भीड़ बढ़ जाती। दस-साढ़े दस बजे दुकान बंद कर लालाजी फारिग हो जाते। शाम को बिलानागा, गुप्तेश्वर मंदिर जाते।

वहां चिलम चलती। उस दौर में बियर-व्हिस्की का नाम भी नहीं लेते थे लोग। भांग की गोली, भांग की ठण्डाई और गांजे की चिलम का चलन बहुत ज्यादा था। 'जिसने न पी गांजे की कली, उस लड़के से तो लड़की भली' यह कहकर न पीने वालों को भी सिगरेट, बीड़ी या चिलम में गांजा पिलाना सिखा दिया जाता था।

सेठ श्री हरि सराफ, श्री गोपी किशन सराफ, गोकुल पंडित, श्री भगवान पटेल, श्री राधेश्याम सेठ, श्री मिट्ठूलाल चन्द्रवंशी, श्री कज्जू सेठ, श्री ठाकुर लाल सेठ, शिवकुमार शर्मा, लाला प्यारेलाल, शंकरलाल तिवारी गोलापुरा वाले आदि गुप्तेश्वर मंदिर में नित्य प्रति जाते। भक्ति भाव से भगवान शिव की पूजा अर्चना करते, भाल पर चन्दन लगाते। भगवान शिव का 'प्रसाद' ग्रहण करते और फिर गपशप करते हुये लौट आते। पहले मंदिर जर्जर अवस्था में था। इन्हीं लोगों ने उसे व्यवस्थित रूप दिया। नियमित पूजा की व्यवस्था संचालित की और श्रमदान से कुआं खोदना शुरू किया। अधिकांश भक्तगण इस श्रमदान में शामिल होते थे। जल्दी ही पानी निकल आया। पक्का कुआं बनाने के लिये सभी के सहयोग से व्यवस्था हुई और श्री नाथूराम बेलदार ने कुएं की जुड़ाई का काम पूरा कर पुण्य प्राप्त किया।

रविवार को बाजार बंद रहता था। गर्मी के दिनों में रात्रि भोजन के बाद अधिकांश लोग घंटाघर के आस-पास पान खाने और घूमने आते थे। फुल्लू (श्री फूलचंद तेनगुरिया) और श्री राधे पान वाले की दुकानें बहुत चलती थी। घंटाघर और हलवाई चाल के बीच में गल्ले (अनाज) की दुकानें थी। गल्ला बाजार आठ बजे के आस-पास बंद हो जाता था। भगवानदास घनश्यामदास (बीड़ वाले) की दुकान के पास सड़क पर जाजम (दरी) बिछा दी जाती। लाला प्यारेलाल जी गाते बहुत अच्छा थे। श्री जयनारायण श्रीवास ढोलक पर थाप मारते और श्री टीकमसिंह गौर तबले पर संगत करते। हारमोनियम स्वयं लालाजी बजाते और थिरकती उंगलियों के साथ आलाप लेकर गाते भी जाते। 'जब दिन चक्कर के आते हैं, हर शख्स बुराई देता है, हमदर्द नहीं कोई अपना दिखाई देता है।' गज़ल की यह पंक्तियाँ मुझे आज भी कैसे याद हैं कह नहीं सकता।

चित्रकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में पचास के दशक में, दो बड़े प्रसिद्ध प्रतिभावान कलाकार थे हरदा में। श्याम पैंटर और हरीश पैंटर, श्याम पैंटर सिनेमा के पोस्टर्स - हाथ गाड़ी पर डिस्प्ले और फिल्मी बोर्ड बनाने का काम करते थे। हरीश पेंटर चित्र बनाने के साथ ही मूर्तिकला के अद्भुत कलाकार थे। मिडिल स्कूल और हाई स्कूल के वार्षिक समारोहों में भी नागरिक रूचि लेते थे। दोनों स्कूलों में एक दिन नाटक, एकांकी, मिमिक्री, एकल गान, समूह गान, आदि का कार्यक्रम अवश्य होता था। खेलकूद प्रतियोगिता के साथ ही हॉकी, फुटबॉल, व्हालीबॉल और कबड्डी की टीम इटारसी-खण्डवा, जबलपुर जैसे स्थानों पर प्रतियोगिताएं जीतने जाया करती थी। सन् 1957 के आसपास शहर में कवि सम्मेलन का दौर

शुरू हुआ। पहला बड़ा कवि सम्मेलन मिडिल स्कूल ग्राउण्ड पर ही आयोजित किया गया था। कवियों में श्री सुलतान मामा 'तराना', श्री हरीश निगम और सम्भवत: नीरजजी भी हरदा आये थे।

सत्यनारायण की कथा हर पूर्णिमा को अधिकांश स्थानों पर होती थी। रामायण के पाठ के लिये उन दिनों चौबीस घंटे का अखण्ड रामायण पाठ अथवा चौबीस घंटे का अखण्ड कीर्तन – 'रामसत्ता' आमतौर पर आयोजित की जाती थी। कहीं-कहीं भागवत कथा आयोजित की जाती थी। ब्राह्मण-पंडितों के प्रति अगाध-श्रद्धा और सम्मान भावना थी।

श्री गोपाल राव केकरे, श्री माधवराव केकरे, श्री खिरवड़कर, श्री मुमताज अली, श्री कृपाशंकर अवस्थी तथा श्री मगनलाल कोठारी, श्री रामनारायण अग्रवाल आदि प्रमुख वकीलों की तूती बोलती थी। सब्जी मंडी में युसुफ पहलवान का मलहम, मोच और शारीरिक दर्द की रामबाण दवा मानी जाती थी। लोग इसी सब्जी मण्डी स्थित बाबूलाल 'भोपाली' के यहां पान कम और गाली ज्यादा खाने जाते थे। पान खाने वाले इन्हें छेड़ देते थे। बस फिर 'भोपाली' की बेलगाम जुबान से गालियों की ऐसी बौछार होती थी कि लोग हंसते हुये चल देते। पान का मजा दोगुना हो जाता था।

गांधी चौक में, कोठारीजी के गोपाल प्रिंटिंग प्रेस के सामने ही लक्ष्मी स्टोर्स वालों का मकान था। उस मकान में किरायेदार ब्यौहार बाबू, पी.डब्लू.डी. में काम करते थे। उन्हें सभी लोग 'हरे-राम बाबू' कहते थे। हरे राम बाबू के यहां साल के 365 दिन, अनवरत अखण्ड हरे राम, हरे राम, राम राम हरे, का भजन चौबीसों घंटे होता रहता था।

डॉक्टर राम प्रसाद सम्भवत: सबसे पुराने डॉक्टर थे। डाक्टर नवले और डॉक्टर श्री छोगालाल झँवर की भी प्रेक्टिस खूब चलती थी। श्री गनपत पन्नालाल फर्म के बाजू में, चाण्डक चौराहे पर एक साधु-पुरूष चर्चित व्यक्ति थे। उन्हें शहर के लोग शिमला वाले स्वामीजी – ब्रम्हचारीजी के नाम से पुकारते थे। स्वामीजी, स्वर्णभस्म तथा रस-रसायन द्वारा इलाज के लिये प्रसिद्ध थे।

बाबा रणछोड़जी विश्नोई, श्री नन्हेलाल मुख्त्यार कनारदा, सावित्री बाई पटलन और गुप्तेश्वर मंदिर हण्डिया के महंतजी की गिनती भी उन दिनों चर्चित हस्तिओं में होती थी। सेठ श्री प्रतापचंद बाफना, सेठ श्री चांदरतन बाहेती, सेठ प्रतापचंद मूंदड़ा, श्री छगनलालजी कोठारी सेठ जोहारमलजी बड़े घर वाले, निलोबा सराफ, श्री रामकिशन सराफ, श्री गुलाबचंद पन्नालाल, श्री नन्हेलाल पटेल, रन्हाई वाले अतिविशिष्ट – सम्मानीय हरदा के प्रभावशाली सम्पन्न रईस माने जाते थे। अब न रहे वह दिन, ना ही रहे वैसे लोग। हरदा मिडिल स्कूल

से आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मैं भोपाल अपने पिताजी के पास आ गया था। दो साल भोपाल रहने के बाद मैं हरदा लौट आया। मैंने म्यूनिसिपल हाई स्कूल में दसवीं कक्षा में प्रवेश ले लिया। मेरे सहपाठी थे, पी.डी. अग्रवाल, सरदार सुरेन्द्र सिंह, टी.डी. अग्रवाल, बृज रतन मूंदड़ा, विष्णु कौशिक, प्रमोद अग्रवाल, रमेश वर्मा, शिवशंकर वशिष्ठ, बसंत कोठारी, प्रेम झँवर, एम.एल. भारद्वाज, राधेश्याम पाठक, रमेश उपरित, योगेश उपरीत, डालचंद शर्मा आदि।

हाई स्कूल में यहां न तो पूरा फर्नीचर था न ही साईन्स प्रयोगशाला में पर्याप्त उपकरण। पीने के पानी की भी किल्लत थी। नगर पालिका इस दिशा में पूर्णत: उदासीन थी। सौभाग्य से तत्कालीन मुख्य मंत्री पंडित कैलाश नाथ काटजू हरदा अस्पताल का लोकार्पण करने पधारे। जैसे ही खबर लगी मैंने अपने साथियों से ताबड़तोड़ क्लास का फर्नीचर बरामदे में लगाने का कहकर, छुट्टी की घंटी बजाई और छात्रों के समूह के साथ डॉ. काटजू के कारवां की ओर दौड़ लगा दी। हम नारे लगा रहे थे। चाहे जो मजबूरी हो, मांग हमारी पूरी हो। सहृदय मुख्यमंत्री ने हाथ के इशारे से हमें बुलाया। कुछ छात्र डरे, कुछ सहमें, लेकिन मैं, विष्णु कौशिक और राजन तेनगुरिया आदि उनकी जीप के निकट पहुँच गये। हमारे अनुरोध पर मुख्यमंत्री डॉक्टर काटजू स्कूल भवन के बरामदे तक आ गये। मैंने उन्हें बिना हत्थे की, टूटी कुर्सी पर बैठा दिया। छात्र जोश के साथ नारे लगा रहे थे – ''चाहे जो मजबूरी हो – मांग हमारी पूरी हो।''

''माननीय मुख्यमंत्री हमारे बीच पधारे हैं। मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।'' मैं इतना ही बोल पाया था कि काटजू साहब ने नाराजगी से कहा 'बस-बस काम की बात कहो। क्या चाहिये तुम लोगों को।' मैंने फर्नीचर, साईन्स इक्विप्मेंट और पीने के पानी की समस्या हल करने की प्रार्थना की। 'ठीक है, ठीक है, सब हो जायेगा।' यह कहकर काटजू साहब चल दिये। हमारा स्वर तेज हो गया। अब नया नारा गूंज रहा था। डॉक्टर काटजू जिन्दाबाद। हमारा स्कूल जिन्दाबाद। हेड मास्टर और सभी टीचर्स हतप्रभ थे। किसी को कुछ सूझा ही नहीं। यह सब कुछ पलक झपकते ही हो गया था। छुट्टी की घंटी बजाने से लेकर मुख्यमंत्री के आने-जाने तक कुल पाँच-मिनिट में ही सब कुछ निपट गया। मुख्यमंत्री जी के पीछे-पीछे सभी छात्र भी तितर बितर हो गये। ज्योग्रॉफी के टीचर व्ही.के.टी. ने मुझे बुलाकर डांटते हुए, फटकारा यही-सब सीखकर आये हो भोपाल से। मैं चुप रहा। जो होना था वह तो हो ही चुका था।

हाई स्कूल में तुलसी जयंती, तिलक जयंती, स्वाधीनता दिवस और गणतंत्र दिवस आदि समारोह पूर्वक आयोजित किये जाते थे। कहानी प्रतियोगिता, कविता प्रतियोगिता और

वाद-विवाद प्रतियोगिता भी होती रहती थी। स्कूल से एक हस्तलिखित वार्षिक पत्रिका निकाली जाती थी। छात्र कहानी, कविता, निबंध, संस्मरण, यात्रा विवरण आदि लिखकर प्रभारी शिक्षकों को देते थे। उनकी स्वीकृति मिलने के बाद उसे अच्छे पेपर पर लिखकर देना होता था। सभी सामग्री एकत्रित होने पर उसकी बाइंडिंग कर स्कूल में सुरक्षित रखा जाता था। एक छात्र सम्पादक भी बनाया जाता था। छात्र संपादक का चयन वाद-विवाद प्रतियोगिता द्वारा होता था। वह 1958-59 का सत्र था। दसवीं मेट्रिक की परीक्षा के बाद अनेक सहपाठी जबलपुर, नागपुर या इन्दौर चले गये थे। जहां उन्होंने बी.एससी. अथवा बी.काम. प्रथम वर्ष में प्रवेश ले लिया था। उसी वर्ष स्कूल में प्री-युनिवर्सिटी कक्षा आरम्भ की गई। जो कॉलेज नहीं जा पाये उन्हें इस कक्षा में प्रवेश दिया गया। मैंने और विष्णु कौशिक ने कला संकाय का चयन किया। हमारे क्लास टीचर श्री गोपीकृष्ण जोशी थे, श्री व्ही.के. तिवारी भूगोल पढ़ाते थे।

वार्षिक पत्रिका के संपादक पद के लिये स्कूल में वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। अनेक वक्ताओं के बीच सबसे अधिक तालियां मेरे लिये बजाई गई। अधिकांश शिक्षकों और छात्रों की राय बन चुकी थी। निर्णायक दल में तीन शिक्षक थे। फैसला सुनते ही हॉल में सन्नाटा छा गया। श्री राम वर्मा को संपादक चुने जाने की घोषणा की गई। कुछ उत्साही साथी आवेश में आ गये। हमारे क्लास टीचर जोशीजी ने समझा-बुझाकर शांत किया। हम लोग अपनी कक्षा में एकत्रित हो गये। जोशीजी ने समझाया। अन्याय तो हुआ है। हमें रचनात्मक विरोध करना चाहिए। शांति से सोचकर फैसला कीजिए। हम हड़ताल कराने पर आमादा थे। मुख्यमंत्री डॉ. काटजू को स्कूल घेरकर ले आने वाली घटना के बाद मुझे अघोषित हीरो मान लिया गया था। उदास-निराश हम लोग सड़क किनारे इमली के पेड़ के नीचे जमा हो गये। हमने फैसला किया हम अपनी पत्रिका अलग निकालेंगे। आनन फानन में नागरिक शास्त्र समिति गठित की गई। पत्रिका का नामकरण 'चेतना' किया गया। संपादन में हम दोनों के नाम तय किये गये, विष्णु राजोरिया और विष्णु कौशिक।

हरदा के यशस्वी पत्रकार आदरणीय श्री मदन मोहन जोशी भोपाल के सेफिया कॉलेज में हिंदी के प्रोफेसर तथा नवभारत - एम.पी.क्रानिकल में सहसंपादक थे। उन्हें पत्र लिखकर हमने चेतना पत्रिका के लिये प्रदेश के मंत्रियों के शुभकामना संदेश भिजवाने का आग्रह किया। आठ-दस दिन में ही तीन चार मंत्री-उपमंत्रियों के शुभकामना संदेश हमें प्राप्त हो गये। गांधी चौक में जितने भी सहपाठी थे। सभी व्यापारी परिवार से थे। चंदा करना शुरू किया टाऊन हाल के सामने व्यास जी का प्रिंटिंग प्रेस था। उन्होंने रियायती दर पर पत्रिका मुद्रित करने का आश्वासन दिया। धीरे-धीरे यथा आवश्यकता धनराशि जमा करने में हम सफल रहे। चेतना पत्रिका में जिला शिक्षा अधिकारी, शिक्षा मंत्री, खाद्य मंत्री आदि के

शुभकामना संदेश छापे गये। छात्रों और शिक्षकों के बीच चेतना पत्रिका वितरित की गई। जमकर वाह-वाही हुई। शिक्षकों की नजरों में हमारी इस रचनात्मक पहल से हमारा सम्मान भी बढ़ा। हम दोनों संतुष्ट और प्रसन्न थे। पत्रकारिता की नींव पड़ चुकी थी। इसी चेतना पत्रिका के अनुभव की पूंजी के बल पर मात्र 18 वर्ष की आयु में मैं नवभारत का सह संपादक बन सका। पाँच वर्ष नवभारत के सहसंपादक रहने के बाद दैनिक भास्कर में भी दो वर्ष रहा। फिर 1966 में दैनिक मध्यप्रदेश का संपादक नियुक्त हुआ। सन् 1969 से 1973 तक म.प्र. युवक कांग्रेस का अध्यक्ष तथा 1980 से 1990 तक दो बार हरदा से विधायक चुना गया। विधायक कार्यकाल में 1982 से 1985 तक म.प्र. राज्य उद्योग निगम का अध्यक्ष तथा 1988-90 में म.प्र. राज्य मंत्री रहकर, अपनी मातृभूमि की सेवा का शुभाशीष प्राप्त किया।

भोपाल प्रवास में ही विशारद, साहित्य रत्न, संपादन कला विशारद तथा हिंदी और समाजशास्त्र में एम.ए. का अध्ययन किया। इन दिनों पी.एच.डी. कर रहा हूँ किन्तु हरदा की माटी की गंध, सुबह-सुबह सुखनी नदी तक का प्रातः भ्रमण, गुप्तेश्वर मंदिर की संध्या की आरती के स्वर, श्री कृष्णा टाकीज के आसपास की मटरगस्ती और हरदा के नागरिकों, सहपाठियों तथा विशेषकर आदिवासी अंचल के दीन-हीन दुर्बल वर्ग के आदिवासियों के आंसुओं की व्यथा कथा मन को विव्हल करती रहती है। स्मृतियों के पृष्ठ खुलते जाते हैं। घटनाओं की स्मृति मस्तिष्क में घनघोर धुँआ सी उमड़ती घुमड़ती है और मीठी यादों के स्वप्न अश्रुओं के गंगाजल में डूबने तैरने लगते हैं।

बी.244 - शाहपुरा भोपाल

वे छूट चुकी गलियां

उर्मि - कृष्णा

हरदा मैंने छोड़ा तब इतनी छोटी थी कि अठन्नी मेरी मुट्ठी में छिपती नहीं थी। जाने आने वाले मेहमान बच्चों को कुछ न कुछ दे जाते थे चवन्नी, अठन्नी। बच्चे जिसमें मैं शामिल थी इसे अपनी निजी सम्पति समझकर बहुत प्रसन्न होते थे। दूसरे बच्चों को दिखा-दिखाकर अपार रौब और महत्व जताते थे। मुझे याद आती है दादाजी की बैठक वाली वह खिड़की जिसके बाहर सड़क देखने के लिए मैं पैरों की एड़ियां ऊँचीं करती और गिर पड़ती थी। फिर रोती और कोई न कोई मेरे पैरों के नीचे कभी ईंट, कभी पाट रख देता था। बीच के घर मजोटा (मझोठा) में देवालय था। उस डेढ़-दो फुट की ऊंचाई वाले देवालय में जब शाम को जीजी या माई दीया जलाती, मैं भी रोज हाथ जोड़ती। एक दिन जरा नजदीक जाकर हाथ जोड़े, गर्दन झुकाई कि दीये की लौ बालों में लग गई। दादी ने झट अपने हाथों से मसल दिया। बच गई कन्या घर भर गूंजा। दादाजी कुछ नाराज भी हुए। घर की सभी औरतें डर भी गई, सहम भी गई।

मैं नहीं कह सकती कि बाबा (दादाजी) के मन में नारी के प्रति कितना आदर-भाव रहा होगा। यह समझने की मेरी उम्र नहीं थी। पर बालिका को वे बहुत प्यार करते थे। एक बार बीमारी में मैंने आधी रात को जिद की कि चिवड़ा खाऊंगी और दादाजी किसी हलवाई की दुकान खुलवाकर चिवड़ा लाये। दादाजी की रौबदार आवाज बेटी-बहुओं को बुलाने में बहुत मीठी मधुर हो जाती थी। 'लाड़ी बाई', 'उमा बेटी' उनके सम्बोधन अभी तक कानों में गूंजते है। पढ़ने लगी तब पता चला कि दादाजी (बाबा) का नाम दीवान दौलतराम मंशी दुबे है। पिता गुरूप्रसाद दुबे को बाबा, गुरू बेटा कहा करते थे।

बाबा की बैठक की वह खिड़की उससे दीखने वाली सेठजी के घर तक की सड़क मुझे अभी तक ऐसी याद है जैसे कल ही तो मेरे नन्हें पैरों के चिन्ह इस पर बने थे। इसी पर चलकर मैं मामाजी के घर अन्नापुरा जाया करती थी इसी पर दौड़कर मैं सेठजी के बाग में लगा हरसिंगार के फूल अपने फ्रॉक में भर लाया करती थी। केसरिया डंडी के सफेद फूल खूब प्यारे सुन्दर कोमल फूल। जब सेठजी का कोई नौकर उसकी डाल हिला देता तो उसके नीचे खड़े हम बच्चों पर फूलों की बरसात हो जाती। उस खुशी के लिए शब्द नहीं। जब अम्बाला आकर मैंने प्रियतम से इसका जिक्र किया तो उन्होंने नये मकान के बाग में पहले हरसिंगार पारिजात ही लगवा दिया। झूला भी लगवा दिया। इसी सड़क पर पड़ता था कमुभुआ का घर और रिश्तेदारों के घर, और इसी सड़क पर चलकर बड़ी बुआ जी के घर भी जाती। दादा भैया से मेरी अच्छी दोस्ती थी। वे मुझ अपने घर बार-बार चाहे जब ले जाते थे। बड़ी बुआ के बड़े बेटे दादाभैया मुझसे खूब बड़े थे। इसी सड़क पर चलकर मैं माँ के साथ कन्या पाठशाला स्कूल गई थी जहां प्रधान अध्यापिका ने कहा- अभी छोटी है लड़की। मुझे तो यह सुन बहुत खुशी हुई थी कि स्कूल से छुट्टी मिल गई पर माँ (बाई) ने स्कूल भेजना शुरू कर दिया। उस स्कूल की दो अध्यापिकाओं का घर मेरे रास्ते में पड़ता था। हालांकि मैं कभी अकेली नहीं होती थी फिर भी मुझे डर लगता था उनसे।

यह खिड़की जादू का डिब्बा थी। इसमें खड़े होकर या बैठकर आम, जामुन, भाजी सब्जी बेचने वालों को देखती। आम बेचने वाले को देखकर तो ऐसा शोर मचाती कि कोई बिना दिए जा ही नहीं सकता। बाबा हरेक आम मुझे चखाते और मैं एक ही शब्द कहती 'खटंग' खटटा। दूसरा चखती तो मीठा तो होता पर मेरे पास उतना ही शब्द ज्ञान था और किसी फल से मेरा नाता नहीं था।

बाहर सड़क पर जब कोई तांगा जाता तो मैं बाहर ओटले पर भाग आती, मेहमान आने से बड़ी प्रसन्नता मिलती थी। तांगे में बैठने का चाव भी होता था। उस समय तो हरदा में तांगे केवल स्टेशन तक जाने के लिए ही चलते थे। घर से कोई स्टेशन जाता तो बच्चे को नुक्कड़ तक बैठा ही लेते। उतनी देर तांगे की सवारी का सुख पाकर मैं घर तक दौड़ आती। इसी सड़क पर ताजिए निकलते थे जिनके नीचे से हम बच्चों को निकाला जाता था। ताजिए तो देखना खूब अच्छा लगता पर उनका पीठ पर कोड़े मारना बहुत डराता।

इसी सड़क पर बरातों के तथा अन्य जुलूस देखे, धार्मिक अनुष्ठानों के लिए गीत गाती चलती औरतों को देखा। लकड़ी की मोली (गट्ठर) सिर पर धरे औरतों को लकड़ी बेचने निकलते देखा। इसी सड़क पर चलने और निकलने वाले कई लोगों को जीजी (दादी) की गोद में बैठकर देखती और तरह-तरह के रिमार्क देती। एक दिन काले लड़कों

का एक झुण्ड निकला उन्हें देखकर मैंने दादी से कहा-जीजी इनको भटटी में क्यों नहीं धुलवा देते। दादी खूब हँसी और जब तक बड़े बूढ़े जिंदा रहे मेरी इस बात को सुना-सुना कर हंसते रहे।

हमारा पैतृक घर गढ़ीपुरा में कोने पर था। बाबा की बैठक मुख्य सड़क और मुहल्ले की गली के कोने पर पहला कमरा था। गली की ओर घर का ओटला था। छोटी उसारी (बरामदे) के दो द्वार ओटले पर खुलते थे। सामने एक टेकरी थी जिस पर झाड़ झंकाड़ उगे रहते। हम खेल खेल में उस पर चढ़ जाते और दादी हमें गुस्सा दिखाकर कीड़े-मकोड़ों का घर दिखाकर झट बुला लेती। एक कंटीले पौधे (सत्यानाशी) के पीले फूल और काले बारीक सरसों से चमकीले बीज मुझे बहुत आकर्षित करते। कितना भी प्रयत्न करने पर मैं उसे तोड़ नहीं पाती। फिर हाथ बढ़ाते ही जीजी का बड़ी सी बिंदी का गोरा चेहरा दीख जाता। मैं भाग आती। बरसात में गुलतेवड़ी के रंगबिरंगे फूल तो तोड़ ही लाती। गुलतेवड़ी के फूल मुझे और याद आए। मामाजी के मुहल्ले में किसी जमींदार का घर था। घर के दाहिने ओर बड़ा-सा-फाटक था। उस पर अक्सर ताला लगा रहता। उस फाटक से अन्दर जाकर बड़ा सा आंगन था। उस आंगन में अन्य कई पेड़-पौधे थे। बरसात में गुलबांस और गुलतेवड़ी खूब खिलते थे। जब कभी घर वाले गाँव से आते वह फाटक खुलता तब हम बच्चे उन फूलों को देखने कुछ पूछकर कुछ चुपचाप नजर बचाकर तोड़ लाते। एक दिन बुआ मामा के कुछ बच्चे मिलकर हम उसी फाटक वाले बगीचे में फूल तोड़ने गए पर फाटक बंद था। ताला लगा था। सब बच्चों को बड़ा दुःख था कि अंदर फूल तो इतने लगे हैं किन्तु तोंड़े कैसे ? उदासी के साथ सब बच्चे कुछ सोचने और योजना बनाने लगे। किस तरह अन्दर पहुंचा जाय और फूल तोड़े जायें। फाटक की फांक से दिखने वाले फूल सबको ललचा रहे थे। कहीं से कोई रास्ता नजर नहीं आया। इसके लिए सबसे छोटे बच्चे का चुनाव हुआ। उस चुनाव में उमा (मैं) फिट बैठी। मैंने साहस भी किया और फाटक के अंदर रेंगकर घुस गई। फूलों को देखकर प्रसन्नता में भूल गई कि मैं चोरी से घुसी हूँ। यहाँ से बाहर निकलना आसान नहीं। बाहर से देखा कि जमींदार की बैलगाड़ी आ रही है सब चिल्लाए - उमा जल्दी आ, जल्दी निकल। वे चिल्लाते भाग गए और जमींदार जी ने दरवाजा खोला, 'कोण ह छोरी?' छोरी तो डर के मारे सूख गई। फ्राक की झोली में भरे फूल छूट गए और बैलों के बीच से बचती बाहर भागी। जमींदार जी भागते बच्चों को देखकर समझ गए और सबको एक कड़क आवाज से रोक लिया। सब डरकर खड़े हो गए और जमींदार जी ने फूल लाकर सबको बांट दिए। खूब उछलते कूदते घर आ गए।

मामाजी के घर से थोड़ी दूर बड़ा लड़कों का स्कूल था। उस स्कूल वाली सड़क पर एक हलवाई की दुकान थी, जिससे एक आने की चनादाल, चिवड़ा या गुलाब जामुन हम

बच्चे अक्सर खरीदा करते थे। जब बाबा के घर के सामने की गली से जाते तो घर पड़ता था- गज्जू चंदू, मास्टर जागेश्वर, गुराडिया वाली और विष्णु भट्ट ताई का। विट्ठल मंदिर और राम मंदिर भी पड़ते थे। एक सड़क उतार में पड़ती थी। हरदा की नदी तरफ जाने में भी एक सड़क उतार पर पड़ती थी जहां जाते हुए दादी का हाथ कसकर पकड़े रहती थी। नौ दुर्गा में दादी अजनाल नदी के ऐसे घाट पर जाती थी जहां पानी कम होता, उथली नदी में दादी की गोद में बड़ा मजा आता। दादी उतारती तो नदी का पानी मेरी गर्दन तक आ जाता। शीतला माता का मंदिर भी उधर ही किसी सड़क पर पड़ता था जहां औरतें गीत गाती जाती थीं -

कैसे मैं दर्शन पाऊंरी
मैया तेरी ऊंची अटरिया ।

वे गलियां, वह छोटा सा शांत बाजार, वह नदी का घाट, बरसात में देखी पूर। वह शीतला माँ का मंदिर, हरदुल लाला का मंदिर। घर के सामने की टेकरी और सड़क पर पुलिया के वे पत्थर जिस पर दैय्या खेलते थे। सब आंखों में सदा के लिए समा बैठे है। वह बाबा का घर अब दुबे जी का नहीं है, जहां उर्मि कृष्ण का जन्म हुआ था।

दो घर मुझे खूब प्यारे लगते थे एक मामा का घर, एक बाबा जीजी का घर। मामा के घर गाय-भैंस थीं। रोज सुबह नानी या बड़ी मामी मक्खन निकालती। जब कभी हमारे जाग जाने पर दही बिलौने की आवाज आती तो मैं नानी के पास जाकर बैठ जाती। वह बड़ा-सा मक्खन का गोला हाथ पर रख देतीं और कृष्ण भगवान की तरह मैं गपागप कर जाती। नानी के आगे फिर हाथ फैल जाता। शायद वही घीं मक्खन अब दिल के दरवाजे पर जम गया है, उन यादों के साथ।

कभी-कभी कन्या भोज में और लड़कियों के संग मैं जाती। दूध भात खिलाया जाता चम्मच देने का रिवाज ही नही था। पतले दूध में भात खाना मुश्किल होता। कटोरी उठाकर दूध पी जाती भात रह जाता। बाद में कन्याओं को दक्षिणा भी मिलती। जिस पर भाई लोग हक जमा कर लड़ने को आ जाते। कोई बड़ा व्यक्ति डांटकर बीच बचाव करा देता।

हरदा बहुत छोटी उमर में छोड़ दिया। पिताजी वन विभाग की नौकरी के लिए इन्दौर आए। माँ को उनके साथ आना ही था। मैं न माँ-पिता के बिना रह सकती थी न दादी बाबा छोड़े जा रहे थे। बस रोना ही रोना आ रहा था। जीवन कई पड़ावों को पार कर चुका है। घर, नगर, रिश्ते, साथी, शिक्षा, विचार, भावना और चिंतन के भी कई धरातल बीत चुके हैं। कई पगडंडियों पर चली और कई रास्तों की खोज की। जो स्त्री के लिए वर्जित थे उन पर चलने की चुनौती भी स्वीकारी, पर स्मृतियों का मूल्य नहीं घटा। मौसम आते हैं, जाते हैं पर जो छूट

गया वह नहीं लौटता। लौट आती हैं स्मृतियां, यादें। ये ही बन जाती हैं साहित्य का वरदान।

बाद में कई अवसरों पर ब्याह शादी, हरण मरण कई तरह के उत्सव, छुट्टियों में हरदा जाना हुआ। हर बार घर, मुहल्ला, बाजार, लोग सब बदले-बदले से मिले। ताई, चाची, बुआ, मामी और साथ की गुइंया भैया सभी का खूब प्यार आदर पाया। हरदा की बोली माँ की दादी की बोली अभी भी याद है। गली मोहल्ला अभी भी नी भुलातो। वा छुटकी सी उमा आज 'उर्मि कृष्ण' ह। जेकी न बाबा न, न जीजी न (दादी) न माय, न काकी मामी बुआ न कभी सोची होयगी। प्रणाम हरदा, प्रणाम हरदुल लाला।

मेरे परिचय में पहला वाक्य जाता है, हरदा, मध्यप्रदेश। मेरी जन्मभूमि है हरदा। हरदा में मैंने शैशव, बचपन के स्वर्णिम दिन बिताए हैं। जिसमें प्यार ही प्यार मिला है। याद ही नहीं आता कि कभी किसी ने डांट लगाई हो। बाबा के कंधे पर चढ़ना दादी की गोद में आंचल ओढ़कर सोना। वे प्यारे निर्मल निश्छल दिन। दुनियादारी की न समझ, न परिचय। मेरी यादों में हरदा बहुत अच्छा बसा हुआ है। वहां कई बार जाना भी चाहती हूँ पर अब वहां कोई ऐसा नहीं है जो मुझे दौड़कर गले लगा लेगा। जो पीढ़ी आज है वह शायद मेरे नाम से तो परिचित हो किन्तु उनकी आँखें पहले मुझे आश्चर्य से निहारेंगी - कौन हो ? उनके ओठों पर प्रश्न होंगे ? मेरा तांगा अब किसके द्वार रोकूंगी ?

हरदा बसने की बात तो सोचती ही नहीं। भारतीय स्त्री तो जहां डोली आई वहीं से अर्थी उठेगी के संस्कार लेकर जीती है। उन छूटी गलियों में तो मात्र भावनाओं के बिम्ब डोलते हैं। मैं कृतज्ञ हूँ, हरदा के उन नातेदारों की जिनकी ओर से कभी-कभी भेजे गए ब्याह शादी के निमंत्रण मुझे मिलते रहते हैं। कुटुम्ब के नरेन्द्र दुबे और अशोक दुबे के मन में मेरे लिए असीम आदर प्यार भरा है। बहुत याद आते हैं वे सब। मामा, भुआ की बेटियां ही उस समय साथिन गुइंया होती थीं। इन्दु जीजी, रमण जीजी, बच्ची जीजी, आशा, ममता, सरोज, सुधा ... सबको समर्पित मेरे उस बचपन का प्यार। दादा भैया, गोपाल भैया, पिंटू, शेषू, प्रतिभा भाभी, शारदा भाभी। पुष्पा भाभी और पुरूषोतम तात्याभाई तो मेरे जन्म घर में रहे। बरसों रहे। अब कौन है ? हरदा जिनसे प्रिय था वे तो कोंई नहीं। अब किलकारियां, खिलखिलाहट नही गूंजेगी मेरी वहां जाऊं भी तो। केवल बरसेंगी आँखें। साथ बंधेगी उदासी। वह छोटा शहर जिसकी गली के नुक्कड़ पर कभी कंदील जलते थे अब ट्यूब लाइटें जगमगा रही होंगी। बजरी डली सड़कें चिकनी टाररोड हो गई होंगी। वे गोबर लिपे ओटले आंगन संगरमर से चमक रहे होंगे। बाजार में भीड़ ही भीड़ होगी।

हरदुल लाला का चबूतरा शायद पक्का मंदिर बन गया हो। सड़कों पर तांगे के घुंघरू और घोड़े की टाप कहां सुनाई देती होगी, अब नहीं सुनेगी जीजी, दादी, ताई की लाड़

लिपटी आवाज - 'उमा बेटी म्हारा पास तो बठ।' वो बोली और शैली अब कहाँ ?

हर शहर गाँव कस्बे की एक आत्मा होती है जो हम जैसों में समाई होती है। 'हरदा' हृदय में बसा है, बसा रहेगा।

ए-47, शास्त्री कॉलोनी
अम्बाला छावनी-133001

याद आती है अजनाल ....
डॉ. गोकुलदास

मेरे जीवन का सफर हरदा से शुरू हुआ और नागपुर के बाद बंबई, बंबई से लंदन, लंदन से वापस हरदा। हरदा से खण्डवा होकर, होलकर राजाओं के खूबसूरत शहर इन्दौर तक चला आया। इस सफर को 58 साल गुजर गये। इसमें वे 46 वर्षों का साक्षी है इन्दौर। मेरे जीवन का यह लगभग 6 दशकों का सफर चुनौतियों, कठिनाइयों, आशाओं, सपनों, कामयाबियों और नाकामियों के खट्टे-मीठे अनुभव से भरा है ।

मेरा जन्म 1 मार्च 1935, को हरदा में हुआ, पिता गुलाबचन्द्रजी अग्रवाल सरकारी स्कूल के शिक्षक थे, माता श्रीमती सरजूबाई धर्मपारायण ग्रहणी थी। तब करीब 25 हजार आबादी थी, हरदा की। यह एक कस्बा है, लेकिन मेरा यह हरदा, अब मध्यप्रदेश का एक नया जिला है। सफल व्यावसायिक पृष्ठभूमि वाले अग्रवाल समाज से होने के बाद भी मेरे नौकरी पेशा पिता की हैसियत इतनी नहीं थी कि वे अपने बेटे को अध्ययन के लिये बंबई या लंदन भेज पाते। पिता का वेतन यही कोई 50-60 रू. महीना। दो घरों में बच्चों को ट्युशन, 2 रू. अतिरिक्त आमदनी का साधन थी। चार भाइयों में, मैं सबसे छोटा था। एक बहन मुझसे बड़ी और एक छोटी थी। पिता पर जिम्मेदारियों थी। एक शिक्षक की सीमित आमदनी में, मैं ऊँची उड़ान भरने का सपना भी नहीं देख सकता था। मेरा एक मात्र लक्ष्य अध्ययन जारी रखना था, मैंने हाईस्कूल तक की शिक्षा हरदा में ही ग्रहण की । कक्षा 9 वीं, 10 वीं तक मेरा मकसद पढ़ना और पास होना ही रहा। तब टेलीविजन था नहीं, और रेडियों भी गिने-चुने घरों में होता था। स्कूल पढ़ाई के दौरान पढ़ने लिखने के नाम पर खूब मौजमस्ती, दो-दो, तीन-तीन घंटे अजनाल नदी में नहाना और शाम को हॉकी या फुटबाल खेलना। 1940 मे पिताजी ने मेरे बड़े भाई के लिये एक दुकान खुलवा दी थी । हरदा में हमारे घर के सामने

डॉ. नागराज रहते थे। उनके पिता वृद्ध थे और हमारे घर आते रहते थे। पिताजी ने एक बार उनके सामने अपनी इच्छा जाहिर कर दी कि 'यदि गोकुल फैल हो जाए तो दुकान पर बैठाने में सहुलियत होगी।' जब मैंने यह सुना तो संकल्प ले लिया कि मैं खूब पढूंगा और प्रथम श्रेणी में पास होऊंगा। मैंने इंटर के लिए नागपुर साइंस कॉलेज में एडमिशन ले लिया और प्रथम श्रेणी में पास हो गया। एम.बी.बी.एस. के लिए, ग्रांड मेडिकल कॉलेज बंबई में प्रवेश लिया। जे.जे. अस्पताल कम्पाउंड के ओल्ड होस्टल में, पच्चीस साल पुराने लोहे के पलंग, पचास साल पुराने दरवाजे, टीन से ढके बाथरूम और एक कमरे में तीन-तीन लड़के, यहां मस्ती का आलम था न कोई पढ़ता और न किसी को पढ़ने देता। एम.बी.बी.एस. के बाद मैंने बंबई में डॉ. बानाजी के पास पूरे दो साल हॉउसमेनशिप की, डॉ. बानाजी के साथ काम करते हुये मैंने सीखा कि इस प्रोफेशन में भलमनसाहत व ईमानदारी आवश्यक है। डी.ओ.एम.एस. के बाद मैं इंग्लैण्ड जाना चाहता था पर पिताजी तैयार नहीं थे पर बाद में वे राजी हो गये। मैं इंग्लैण्ड गया हरदा की अजनाल में गोते लगाते बीते बचपन की यादें, लंदन में टेम्स के किनारे जब आती तो आने वाले बेहतर वक्त की उम्मीदें कुछ ज्यादा ही उजली नजर आने लगती। सात समंदर पार भी मेरा मन हरदा में लगा रहता। एक-एक बूंद सफलता मेरी उम्मीदों के घड़े में आती देख, पिताजी ने भी मुझे हरदा की दुकान में बैठाने का इरादा छोड़ दिया और मेरे उज्जवल भविष्य की दुआयें मुझे देते रहे। कामयाबी छोटी हो या बड़ी वह अनायास नहीं होती, उसके पीछे कई दृश्य-अदृश्य हाथ लगे होते है कुछ मदद के, कुछ दुआओं के। हमें जीवन में कभी इन सहारों को भूलना नहीं चाहिए, हमारी झोली में जो कुछ है वह इन्हीं का जोड़ है। लंदन में 1961-62 में मैंने विश्व के सबसे बेहतर आंखों के अस्पताल 'मूरफील्डस आई हॉस्पिटल' में अनुभव प्राप्त किया। डिप्लोमा लिया, मैं पानी के जहाज से लंदन गया, क्योंकि पिताजी हवाई यात्रा से डरते थे। पानी के जहाज में 16 दिन सफर करके मैं 21 फरवरी 1961 को लंदन पहुंचा। सितम्बर 1962 में भारत आ गया। किसी ने ठीक ही कहा है कि संघर्ष और सफर आदमी को जिंदगी में असल पाठ सिखाते हैं। इंग्लैंड के अनुभव लेकर मैं हरदा आया और यहां प्रेक्टिस शुरू की। सप्ताह में एक दिन शनिवार को खण्डवा जाकर अपने साथी डॉ. नेमीचंद सेठी के साथ बैठकर भविष्य के सपने बुनता। पिताजी की अनुमति से मैंने इंदौर जाकर प्रेक्टिस करना स्वीकार किया, तब तक मैंने इन्दौर देखा भी नहीं था। इन्दौर में डॉ. बच्चु भाई चुडकर का मकान किराये से लिया, बाम्बे बाजार चौराहे पर, दो कमरे किराये से लिये और 20 मई 1964 को मैंने नर्सिंग होम प्रारंभ कर दिया। 1965 में इन्दौर लायंस क्लब की सदस्यता ली। समाजसेवा का चलन उन दिनों इन्दौर में शुरू नहीं हुआ था। दो अक्टूबर को सभी लायंस सदस्य चौराहों पर खड़े होकर, धन संग्रह करके राशि परमार्थ के काम में लगाते थे। जब मैं परमार्थिक नेत्र शिविरों में जाता, वहां आने वाले मरीज मुझे अपने हरदा के अतीत की याद दिलाते, कोई भी अपनी

जड़ों को कैसे भुला सकता है ?

मैं एक ऐसा अस्पताल खोलना चाहता था, जहां आंख के अलावा अन्य बीमारियों का भी इलाज हो सके और जरूरतमंदों का नि:शुल्क इलाज भी हो। लम्बी कोशिशों के बाद भूतल सहित दो मंजिलों में अस्पताल स्थापित हुआ। 1 जनवरी 1985 को 'गोकुलदास अस्पताल' का शुभारम्भ हुआ। जब मैंने पहली बार अस्पताल को देखा तो हरदा मेरी आंखों में तैर गया, वह हरदा जहां मेरे शिक्षक पिता को अपने इलाज के लिए अपनी पत्नी के आभूषण गिरवी रखना पड़े थे। अस्पताल धीरे-धीरे विकसित होता गया। इस बीच आर्थिक संकट भी उत्पन्न हुआ और विचार आया कि कोशिश करें फिर भी सफलता न मिले तो अस्पताल बेचकर, कर्ज से मुक्ति पाई जावे व हरदा लौट जाया जावे। यह निर्णायक क्षण था। संकट में ये क्षण परीक्षा लेते हैं व कभी मार्ग भी नहीं सूझता। दूसरे दिन मैंने अस्पताल आकर निर्णय लिया, डाक्टरी चेम्बर सदा के लिये छोड़कर एकाउंट सेक्शन में बैठने लगा। निजी कर्ज चुकाने की शुरूआत हुई और व्यक्तिगत व बैंक कर्ज चुका दिये गये। वित्तीय बचत से अस्पताल का विकास होता रहा, सातवीं और आठवीं मंजिल पर, 2007 में हार्ट हॉस्पिटल शुरू हुआ। मैं मानता हूँ कि कठिनाइयां कभी कम नहीं होती पर ईश्वर श्रद्धा इनसे पार लगाती है, यदि हम ईमानदारी व नेक इरादे से काम करते हैं तो कामयाबी तय है। अपने बुरे दिनों को मैं याद रखता हूं जब भी मौका मिलता है एक हार्ट आपरेशन प्रतिमाह नि:शुल्क करता हूं। इन्दौर में सफलता के हर पड़ाव पर मुझे सिर्फ हरदा याद आता है और याद आती है अजनाल नदी। मुश्किल वक्त में हरदा का ख्याल ही मुझे ऊर्जा और उत्साह से भर देता था। मैं पिताजी को बार-बार हरदा से लेकर आता, कुछ दिन रूककर वे कहते 'तुम्हारा घर फर्स्ट क्लास जेल है, मेरा समय यहां कट नहीं सकता।' वे गहरे संस्कार वाले व्यक्ति थे वे अब संसार में नहीं है लेकिन उनके शब्द मुझे बार-बार याद आते हैं, ''मैं बहुत सालों तक, बहुत गरीबी में रहा, परंतु कभी भी किसी से कोई अहसान नहीं लिया।'' आज इस मुकाम पर भी मुझे बार-बार हरदा याद आता है, अजनाल याद आती है, दोस्त याद आते हैं। तब का हरदा तहसील था, आबादी थी कोई 25 हजार, हरदा साफ-सुथरी बस्ती थी। ड्रेनेज लाईन, सड़कों के बीचों बीच जमीन से 14 फीट गहराई से बनाई गई थी। जो अब भी काम दे रही है। तब हरदा में केवल एक मिडिल स्कूल व एक हाईस्कूल थी, जिसमें मैंने भी पढ़ाई की, बाजार बहुत व्यवस्थित थे। सब्जी की दुकानें एक छोर पर, किराने की दुकानें एक तरफ, जूते बनाने वालों की एक लाइन, अनाज के लिए दूसरे छोर पर विशाल गल्ला मंडी थी, सभी सड़कें व्यवस्थित थीं। हरदा के आसपास सोयाबीन और गेहूँ की मुख्य फसलें थी, तवा बांध के कारण भूमि उपजाऊ व सिंचित है। हायर सेकण्डरी में मेरे साथी थे सरदार गुरूदेवसिंह जो अब इंग्लैण्ड चले गये हैं, अब भी उनसे जीवंत सम्पर्क है। साल दो

साल में उनका आना-जाना होता है। दूसरे सहपाठी रहे पत्रकार श्री मदनमोहन जोशी जो बाद में सम्पादक बने। हम मदनमोहन के घर जाकर पढ़ा करते थे, बार-बार कहने पर उन्होंने भाषण देना शुरू किया और स्कूली कार्यक्रमों में रूचि लेने लगे। जब भोपाल गये तो लिखने बोलने में पारंगत हुए। उन्होंने योग्यता और संघर्ष के बल पर अपना स्थान बनाया। परीक्षा पास करने पर हमें तीन खाकी पेन्ट व तीन लट्ठे के शर्ट मिलते थे। बीच में शर्ट-पेन्ट फटने पर सिलकर काम चलाना पढ़ता था। चप्पल-जूते भी साल में एक बार ही मिलते थे, गुमने पर नंगे पैर रहना पड़ता था। आज मैं जिस मुकाम पर हूँ वहां से अपना अतीत देखता हूं तो मुझे लगता है इंसान होने के नाते मुझमें कई कमियां है, मेरी कुछ कमजोरियां भी है, मैंने खूब गलतियां भी की है, लेकिन हर गलती से कुछ न कुछ सीखने का प्रयास किया है ताकि बेहतर इंसान बन सकूं। हम जब स्कूल कॉलेज में पढ़ते हैं तब हर दिन समाज के सारे फायदे लेते हैं। बिना किसी अपेक्षा के मददगार लोग हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं, इसके बदले में हम समाज को क्या देते हैं ? मेरा मानना है कि हम दुनिया तो नहीं बदल सकते पर अपने सामर्थ्य से कुछ बेहतर कर ही सकते है ।

गोकुलदास हॉस्पिटल तुकोगंज, इंदौर

हरदा, हमारा हरदा
अभय कासलीवाल

जिनेन्द्र प्रभु की असीम अनुकंपा से अनायास सामने आया यह अवसर, बहुत समय से विचाराधीन 'अपनी जड़ों का आभार व्यक्त करने' का प्रतीत हो रहा है। 'कौन चाहेगा इस अभिव्यक्ति को! इसकी किसे, और क्या उपयोगिता होगी! कुछ उपयोगिता है भी या नहीं!' कुछ वर्ष पहले भेजे छात्रवृत्ति के प्रस्ताव का कोई ग्राहक नहीं मिलना इस संकोच का मूल रहा।

गुरु-पूर्णिमा के ब्राह्म मुहूर्त में 1 जुलाई 1947 को जन्मा यह जातक, डेढ़ माह बाद स्वतन्त्रता प्राप्ति के दिन ही 'अभय' नाम के साथ सौरीगृह से आजाद किया गया था। शिक्षा-सत्रों का 1 जुलाई से आरंभ होना मुझे स्वतन्त्रता की प्रतीति देता रहा है। हर वर्ष नए नए शिक्षण-कक्षों/भवनों में, कुछ नए सहपाठी, नए शिक्षक पाना, ज्ञान के नए-नए पहलू पाना, अज्ञान के अंधेरे से मुक्ति इस प्रतीति के पर्याय बने। स्कूल के पहले दिन से ही रटी 'हे प्रभो! आनंददाता……' आज भी मेरी नित्य-प्रेरक प्रार्थना है। इस प्रतीति की अंतिम कड़ी 2007 में इसी दिन नौकरी से मुक्ति के रूप में आई। परिचय सतत विकास पाता रहा है। 'अभय कुमार जैन' नाम में निहित प्रथम अक्षरों ने एवं कम ऊंचाई ने कक्षा की डेस्कों और कतारों में हमेशा आगे रखा। जैन पाठशाला से विकसित आचार-बोध ने सामाजिकता में आगे कर रखा था। 10 वर्ष की आयु में टाउन-हाल में आस्ट्रेलियाई सांसदों की सम्मान-सभा में गायन से परिचय यात्रा आरंभ हुई जो जैन वाचनालय व विद्यार्थी जागरण संघ के पुस्तकालय प्रबंध, जैन बालक मण्डल के सह-संचालन, मारवाड़ी व्यायामशाला, पत्र-मित्रता जैसे सृजन, संगठन, सांस्कृतिक अनुभव बटोरती 1963 में हरदा की हदों से बाहर निकल गई। इस दौर में ज्योति प्रेस, हरदा से जुड़ाव ने आर्थिक संबल के साथ-साथ साहित्यिक रुचि के व्यवस्थित

विकास का अच्छा अवसर दिया। हिन्दी- अंग्रेजी दोनों के प्रूफ-शोधन की महारत आज तक अनेक प्रकाशनों में नाम दिला चुकी है। अनेकों लेख, कविताएं व कुछ लघु पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। जैन-धार्मिकों की सदा-संगिनी 'जिनवाणी' की 660 पृष्ठीय संग्रह-पुस्तक 'पूजन पाठ प्रदीप' के 3 संस्करणों के सम्पादन सहित साहित्य सेवा के भरपूर पुरुषार्थ का सौभाग्य पाया है, विशेष कर जैन धार्मिक-सामाजिक साहित्य के क्षेत्र में। 2005 में न्यूयार्क में निर्मित नूतन जिन-मंदिर जी हेतु रचित 'अष्टापद-नायक भगवान आदिनाथ की आरती' तभी से निरंतर गायी जा रही है। ऐसे छोटे-बड़े पुरुषार्थ आज भी अनवरत शौक बने हुए हैं।

इस परिचय में 1968 में जबलपुर से पाया था बी.ई. (आनर्स) का प्रत्यय, जो इंदौर, मुंबई, अकोला आदि के झूले झुलाता 1970 में ले आया भारत शासन सेवा में। विद्युत मंत्रालय की विशेषज्ञ भुजा 'केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण' से परिचय में जुडते रहे सहायक निदेशक, उप निदेशक, निदेशक जैसे पद-नाम; ताप विद्युत विशेषज्ञ, अग्नि-सुरक्षा विशेषज्ञ जैसे तमगे। फ्रांस में प्रशिक्षण ने गैस टर्बाइन विद्युत उत्पादन विशेषज्ञता का परिचय-पट्ट दिया; और विश्व की सर्वोच्च संस्था 'संयुक्त राष्ट्र संघ' ने कंबोडिया में शांति स्थापना मिशन के श्रेष्ठ स्वयंसेवक का मुकुट लगाया । दिल्ली के सामाजिक परिवेश ने नाम दिया 'इंजीनियर अभय जैन कासलीवाल', एवं भारतीय प्राणी कल्याण समिति के संस्थापक सदस्य व महामंत्री, देव समाज माडर्न स्कूल, दिल्ली के प्रबंध-समिति सदस्य, श्री भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा के विदेश विभाग के सह-मंत्री जैसे अनेकों सहकारी व नागरिक समितियों के पद दायित्व। भारत शासन की सक्रिय सेवा से निवृति के उपरांत श्री भारतवर्षीय दिगंबर जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा के निदेशक का सम्मानित पद ताजा परिचय बन गया है और तमगा लगा है 'अष्टापद रिसर्च इन्टरनेशनल फाउंडेशन, यू. एस. ए.' के दिल्ली-प्रतिनिधि के रूप में दो बार काठमाण्डू व ल्हासा सहित तिब्बत स्थित कैलाश-मानसरोवर क्षेत्र की शोध-यात्राओं का। देश-विदेश के तीर्थों, दर्शनीय स्थलों व मेलों का प्रचुर यात्रा अनुभव स्मृति धरोहर है। हरदा के ही स्व. श्री मूलचंदजी अजमेरा जैसे प्रभृति स्नेहियों के परामर्श ने 1998 में पूरा नाम घड़ दिया 'इंजीनियर अभय जैन कासलीवाल, हरदा वाले' जो मेरी रचनाओं-प्रकाशनों हेतु प्रचलन में है। इस परिचय में सितारे भी जड़े हैं। 1970 में साहित्यिकों के तीर्थ 'माखन नगर' बाबई में कवि-हृदयी रतनलालजी पाटनी की वेलेंटाइन दिवस को जन्मी पुत्री 'सुलोचना' नामा सहधर्मिणी के रूप में; 'सोनीषा' व 'अभीषा' नामा पुत्रियों के रूप में; जो अपने जीवन-साथियों क्रमश: 'नितिन' व 'अमित' के साथ तथा अमेरिका से एम.एस. की डिग्री प्राप्त पुत्र 'चिन्मय' व इंजीनियर पुत्र-वधू 'प्राची' के रूप में नए नए परिचयों को छूते जा रहे हैं। सोनीषा एल.एल.बी. कर दिल्ली में लॉ प्रेक्टिस करती रही है, अभीषा एम.बी.ए. कर दिल्ली के प्रसिद्ध 'तानसेन संगीत महाविद्यालय' की डायरेक्टर व कसल्टेंट रह चुकी हैं। नितिन कोटा स्थित प्रसिद्ध आई.आई.टी. प्रशिक्षण संस्थान वाइब्रेन्ट एकेडमी के डायरेक्टर हैं। अमित गुड़गांव स्थित

मल्टी नेशनल कंपनी 'यम इण्टर-नेशनल' के वरिष्ठ उपाध्यक्षों में से एक हैं। चिन्मय व प्राची अमेरिका में ही उच्च पदों पर कार्यरत हैं। इनकी जननी, त्यागी-व्रती, मुनि-धर्म व समाज की सेवाओं के लिए दिल्ली में ख्यात, अहिंसा की सजग प्रहरी हमारी शाश्वत वेलेंटाइन श्रीमती सुलोचना, जैन महिला मण्डल आदि की अध्यक्षता सहित अनेक कार्य-कलापों में आज भी जुटी रहती हैं। इन्हीं के सहयोग से हमारे जीवन का 'तीर्थंकर-पद प्रदायक सोलह कारण भावना व्रत' सम्पन्न हो पाया। इन्हीं के साथ से अनेक मुनि-संघों व विद्वानों के मार्ग-दर्शन व शुभाशीष पाये हैं। कोटा के अविरल- सुरभित और दिल्ली की स्वस्ति ने नाना-पद दिलाया है; और अमेरिका में 'देशना' ने जन्म ले कर दादा बना दिया है। सेवा-निवृत्ति से आजीविका हेतु कार्य का समापन हुआ व कार्यक्षेत्र के दायरे विलीन हो, सारा विश्व कार्य-क्षेत्र हो गया है। फरीदाबाद की ग्रीन वेली में स्थायी आवास है, और जर्सी सिटी, यू.एस.ए. में बेटे-बहू के पास, पोती के जन्म प्रसंग वश वर्तमान प्रवास। हरदा के संदर्भ में, व्यक्तित्व-परिचय की पूर्णता के लिए पारिवारिक इतिहास की पृष्ठ-भूमि का कुछ खनन जरूरी लग रहा है।

मेरे पिता श्री अमोलकचंदजी खान-देश (मराठवाड़ा) से 9 वर्ष की आयु में गोद लाये गए थे। गोद लाने वाले दादाजी मोहन लालजी भी हरदा के मारवाड़ी सेठ नंदरामजी कासलीवाल द्वारा पिछली पीढ़ी में गोद लाए गए थे। पड़दादाजी की संचित संपदा सहज ही पा जाने से दादाजी को न तो अर्जन की आवश्यकता अनुभव हुई, न मेहनत का अभ्यास हुआ। दादीजी की मृत्यु से सूने घर को आबाद रखने के लिए, अल्पायु में ही पिताजी की शादी हो गई। माँ डोंगरगांव (छत्तीसगढ़) के सेठ शंकरलालजी की एकमात्र पुत्री बताशी बाई को हरदा में नाम मिला, श्रीमती विनय कुमारी का। उस समय के छत्तीसगढ़ के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता केशरीमलजी हमारे एक मात्र मामाजी थे। बेटे-बहू के आने से दादाजी के ऐशो-आराम की सोहबत में खलल पड़ने लगा। चाटुकारों द्वारा बहकाए-भड़काए दादाजी ने बेटे-बहू को खाली हाथ घर से निकाल दिया। जैन-मंदिर के पिछवाड़े, मंदिर के मकान में, फिर मंगलवारे में राम-करण जी वैद्य के मकान में दोनों कम उम्र प्राणियों को कई दिनों तक जमीन पर सोने, पड़ोसियों के यहाँ खाने पर मजबूर होना पड़ा। फिर एक दिन हरदा में इतिहास बना। हरदा के लोगों ने देखा कि माँ ने किस तरह दादाजी के घर का ताला तोड़ा, अंदर कब्जा जमाये हुए दादाजी के चमचों का सामना कर घर को मुक्त कराया। बुजुर्गों से उन के इस पराक्रम की कहानियाँ सुनते, और उसी जुझारूपन से हमें बड़ा करते माँ को हम सभी भाई बहिन अपने संस्कारों में जीवित पाते हैं और उनके द्वारा मुक्त उस ऐतिहासिक घर का निवासी होने में गौरवान्वित अनुभव करते हैं। हमारी रगों में मारवाड़ के कट्टर जैन-वंश, मराठवाड़े, छत्तीसगढ़ व हरदा क्षेत्र इन सभी संस्कृतियों की सम्मिलित धारा बह रही है। हरदा के अभिन्न इतिहास के प्रतिनिधि बन कर हम व हमारे परिवार इंदौर (पूज्य पिताजी, बड़े भैया विजय, बहिन विजय लक्ष्मी, चौथे अनुज हेमंत), दिल्ली (स्वयं, प्रथम अनुज अनिल), मुंबई (दूसरे

व तीसरे अनुज अनंत व जयंत) व अमेरिका (पुत्र चिन्मय) तक फैले हैं। हरदा हमारा मूल स्थान है, यह हम गर्व से कहते हैं, दर्ज कराते हैं।

जन्म से लेकर 1963 में इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश के लिए घर छोड़ने तक, हरदा के खाते में दर्ज 16 वर्षों का बाल्य-जीवन अभी तक, बाद के 48 वर्षों की चुनौतियों के संहार में खर्च ठोस पुरुषार्थ के आगे नगण्य लगता है, किन्तु इसी अवधि में मिला ज्ञान, अनुभव व सत्संग हर चुनौती के निदान में मुख्य अस्त्र रहता आया है। अपनी जड़ों की भी, और उन्हें सींचने वालों के प्रति भी कृतज्ञता-ज्ञापन की हुमक सदैव मन में बनी रही है, यद्यपि वे विलीन होते गए हैं, होते जा रहे हैं। संस्कार-स्रोतों, प्रिय-परिचित-सत्संगियों का विरल होना समय की गति है। अनवरत संस्कार-स्रोत पूज्या माँ का घर में लगा फोटो अब भी संस्कार-सूर्य बन ऊर्जा सम्प्रेषण करता रहता है। उन की मंगल छवि, उन का सदा-हितैषी ज्ञान, धर्म-रुचि, आचरण-शुद्धि में निष्ठा, उन के परिश्रम मय जीवन-संघर्ष की अनगिनत घटनाएँ अब भी हिम्मत बढ़ाती हैं, आचरण में विकार नहीं आने देती, अगली पीढ़ियों के साथ बांटने की उत्तम सामग्री बनी हुई हैं। तत्कालीन हरदा का कोई ऐसा व्यक्तित्व स्मृति में नहीं आता जिसे उन की श्रेणी में रख सकें। संस्कार-विकास हेतु कृतज्ञता ज्ञापन के लिए जैन पाठशाला के पं. पन्नालालजी, पं. उदयचन्दजी, हमारे किरायेदार डा. मित्तल सा., पड़ोस के स्वामीजी; प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल के लगभग सभी शिक्षक-वृंद, कवि-वृंद में पगारेजी, उपाध्याय सर, दीक्षित सर और तानाजी यादों में हैं। सांस्कृतिक प्रेरणाओं के लिए मुमताज़ अली वकील और बाल विकास मंदिर के संस्थापक बालू भैया (बालकृष्ण अग्निहोत्री), व्यायामशाला के काशीनाथ भैया स्मरण में बने रहते हैं। होम्योपैथी से जन कल्याण में रत डा. छोगालाल झंवर (सहपाठी मित्र डा. आनंद के पिताश्री) उद्यमिता के लिए मेरे आदर्श थे, जिसे बढ़ावा मिला था बद्री काका बांगड़ और ज्योति प्रेस वाले बसंत भैया से । बे-बात अचानक याद आ जाने वालों में मिश्रा बंधु - महेशदत्तजी और मन्नी भैया, मित्तल मास्टर (जिन से मैं कभी नहीं पढ़ा), हरनारायण मामा, गुल्लू सेठ, भागचंद सेठ, कुंजी पहलवान, नाथ बाबा, हरीश पेंटर, हबीब टेलर, बिस्मिल्लाह तांगे वाला और उस का घोड़ा भी है।

कुछ बेजान चीजों के लिए भी मन में बहुत सम्मान है। स्कूली शिक्षा से अलग संस्कार इन्हीं से पनपे। जैन मंदिर, जैन पाठशाला, जैन धर्मशाला के सभी क्रिया-कलाप आज भी काम में आते हैं। घंटाघर का इतिहास नहीं जाना, पर वहाँ स्वतन्त्रता दिवस का झण्डा-वंदन, नेताओं के भाषण, विद्वानों के व्याख्यान, कवि-सम्मेलन, कव्वाली स्पर्द्धाएँ, अन्य प्रदर्शन, मदारियों के तमाशे, सांस्कृतिक जीवन्तता के प्रमाण लगते आज भी यादों के पन्ने बन कर उभरते हैं। मुहल्ले के हम-उम्रों के साथ माहेश्वरी मंदिर, बड़ा मंदिर, पंचायती मंदिर, अग्रवाल धर्मशाला आदि की कथा-वाचन, रास लीला, राम-लीला आदि में देर रात तक रहना,

त्यौहारों के दिनों में सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ देखना, उन में भाग लेना, हरदौल बाबा तक घूमने जाना, मिडिल स्कूल मैदान की कुश्ती-प्रतियोगिताएं, मेला प्रदर्शनियाँ, गणेश चौथ, डोल ग्यारस, अनंत चौदस, जैन प्रतिमाओं की नगर-भ्रमण सहित जल-यात्रा, दुर्गानवमी, भुजरियों के जुलूस, ताजिये, ताज़ियों के शेर बने हुए लोगों का घर के सामने से निकलना संस्कृति की विविधता बरबस याद करा देते हैं। टेसू और डंडा चौथ भी याद आते हैं। पपिंजन के मैदान में रावण-दहन देखने जाना और घर-घर सोना-चांदी बांटना अब लगता है कि कितना सौहार्द्र इन के माध्यम से विनिमय होता था। क्षमावाणी पर्व पर घर-घर जाकर प्रत्येक सदस्य से परस्पर उत्तम क्षमा की अभिव्यक्ति, सभी में समानता का भाव बनाए रखती थी। होली की अपनी अलग ही मस्ती होती थी। देव-धामी के जुलूसों में उछलते-कूदते अजीब हरकतें करते लोग-लुगाइयों को देखने से उपजा बाल-भय, शव-यात्राओं के आगे बजते तासों से उपजता शोक, उन के पीछे एक लोटा पानी सड़क पर फेंकना, पता नहीं शुद्धि के लिए होता था या शांति के लिए, पर यादों में तो है ही। संक्रांति और ग्रहण के समय दान मांगने वालों के ठठ अब तक भी गरीबों के प्रति दान-शीलता रखने का भाव बनाए हुए हैं।

सभी तीज-त्यौहारों की यादों के साथ हमेशा सखा बना रहा माणक साउंड सर्विस का, छत के ऊपर रखा हुआ लाउड स्पीकर। उस से निकलते पसंदीदा फिल्मी गीत सुबह 5 बजे से रात 12 बजे तक बे रोक टोक बार बार बजते रहते, आस पास के सभी मुहल्लों में संगीत द्वारा उल्लास का प्रवाह बनाए रखते। अनेक गीत तब ही पूरे पूरे याद हो गए थे, उन्हीनें गीत-संगीत का रसिया बना दिया था और संस्कृति का प्रेमी भी। 'जागृति' के चारों गीत, 'हम हिन्दुस्तानी' का 'छोड़ो कल की बातें...' आज भी अक्षरशः याद है जिन्हें मन राष्ट्रीय पर्वों के अवसर पर जहां भी हो, प्रस्तुत करने को उद्यत रहता है। छुपन-छुपइया, छीले बिलैया, अंटी, भौंरे, गिल्ली-डंडा, चिड़ी-अंडा, बरसात के दिनों में गुपनी जैसे बचपन के आउटडोर खेल, चंगा-पो, लूडो, साँप सीढ़ी, व्यापार, केरम जैसे इंडोर खेलों की यादें महसूस कराती हैं कि आज का बचपन कितना नीरस हो गया है। टाउन हाल के सुपारी के ऊंचे झाड़, हाई स्कूल की इमली, अवस्थीजी के बंगले के जामुन, बारह बंगले के पेड़ों के कबीट, कड़ोला की सड़क के दोनों ओर के बेर के झाड़, सीताफलों और खट्टे बेरों के लिए, बोगदे के रास्ते अपने खेत तक पैदल जाना, होले-उम्बी, पंडा बाबा की चाट-फुलकियाँ, सिन्धी गोपाला की शरबत-कुलफ़ियाँ, सांई बाबा की टाफी-गोलियां, चतरु के पेड़े, हवा-बाण के चूरण, यादों में आते ही चले जा रहे हैं। बहुत बचपन से, पिताजी की किराने की दुकान से शुरू 'कमाई' के अनुभव ने घर की रद्दी के लिफाफे, भूगोल के नक्शों की कार्बन कापियाँ, ब्लाटिंग पेपर, लूडो, साँप सीढ़ी, व्यापार आदि खेलों के बोर्ड, पतंग और मंजे जैसी अनेक चीजें बना कर बेचना, माँ के गोटे-किनारी के कामों में हाथ बँटाना, बही खातों और अनाज-मंडी के कामों में दादा (पिताजी) की मदद, जैसी कई व्यवसाय-कलाओं से परिचित करा दिया था। आज

भी उनकी यादें आनंद देती हैं। पहले पिता और फिर माँ की असमय मृत्यु से अनाथ सहपाठी राधाकिशन की पान की दुकान चलाने में, गेंदा की होटल चलाने में, घर के सामने नाजर भैया की सायकल दुकान, वडनेरे की काँच-फ्रेम और प्लॉयवुड कला की दुकान, ऐसे कई रोजगारों की कला-शिक्षा उनका हाथ बँटाते-बँटाते अनुभव की धरोहर बन गई थी।

डबल फाटक के पास की बहुत ऊंची चिमनी की याद अब भी प्रश्न खड़ा करती है कि वह क्यों खड़ी थी, क्या इतिहास रहा होगा उसका? कचहरी के भवन, उस प्रांगण में खड़ा जय-स्तंभ प्रशासन के प्रति आदर-भाव बढ़ाते रहे। जीजलबाई कौन थी, नहीं मालूम पर उनके नाम की धर्मशाला होने से उन के प्रति कृतज्ञता का भाव बचपन से ही रहा है। अपने मानपुरा स्कूल के मोड पर खड़े गिरजाघर ने प्रवेश के पहले ही दिन से ईसा मसीह और ईसाई धर्म से परिचित करा दिया था। उस स्कूल में पढ़ते-पढ़ते ही फरहत सराय को बनते देखा और उस के लिए एक एक पैसे का चन्दा रोज उगाहने के लिए घूमते इमाम के निरंतर श्रम को भी। दोनों के लिए मन में आदर है। गुलजार भवन के जन्म-इतिहास और उसमें संचालित बाल विकास मंदिर की सदस्यता के कारण उसके लिए मन में मंदिर के समान आदर है। टाउन-हॉल कंपाउंड में स्थित जामा मस्जिद को हम अपने खेल के मैदान का ही हिस्सा समझते थे। उसका प्रवेश द्वार बदलने से उस की हौज में तैरती रंगीन मछलियों को देखने की सुविधा खत्म हो जाना बहुत समय तक सालता रहा। रोज मंदिर जाने के नियम के चलते, घर से जैन मंदिर के रास्ते के सभी भवनों और निर्माणों से कुछ अपनापन बना रहा है जिनमें माहेश्वरी मंदिर भवन, अशोका होटल, बाबू खाँ की सायकल दुकान, रामनारायण सेठ, डा. बंसल, छोगमल प्रतापचन्द बाफना, बाबू होटल, सर्राफों के मकान, घंटाघर, जैन धर्मशाला, उस के सामने का गोदाम, नरसिंह मंदिर, नार्मदीय धर्मशाला, नदी की सफील प्रमुख हैं। अभी तक भी हरदा जाने पर नजर इन्हें बारीकी से देखने लगती है। बिजली घर और सीवर व्यवस्था पर नाज होता था।

हरदा में बीते जीवन में 1954 में सारे परिवार को ग्रहण लगा मेरे छोटे भाई कमल के बीमार होने से। 4 वर्ष की आयु में सीढ़ियों से नीचे गिर जाने से उस के दिमाग में कोई अंदरूनी चोट ऐसी लगी कि कोई डॉक्टर, वैद्य, हकीम, ओझा, उसे ठीक नहीं कर पाये। कोई लकवा बताता, कोई मिर्गी, कोई ऊपरी बाधा, और न जाने क्या क्या! इलाज में इतना पैसा लगा कि 18 वर्ष की आयु में उस की मृत्यु होने तक, शेष हम छह भाई और एक बहिन सहित माता-पिता घोर अर्थाभाव की चपेट में रहे। व्यक्तित्व विकास अत्यंत कुंठित रहा। माँ ने अपने कला-प्रेम को अर्जन का साधन बना कर हम सभी को स्वावलंबन का इतना पक्का पाठ पढ़ाया कि हम सभी आज उसी ऊर्जा के बल से अपनी अपनी बुलंदियों को छू सके हैं।

उसी अवधि की खटास बनी, मोहल्ले के एक सम्पन्न परिवार के बड़ों व बच्चों द्वारा हमारे

पूरे परिवार के निरंतर अपमान से। उन सभी में अनेक दुराचरण व दुर्व्यसन व्याप्त थे जिनके चलते उनसे स्पर्द्धा हमारे आचरण व व्यक्तित्व के विकास का ऊर्जा स्रोत बन गई। आज उस परिवार के सभी सदस्यों की बदहाली नजर आने से खटास का स्थान क्षोभ ने ले लिया है। काश! उनका विकास भी हमारी तरह हुआ होता।

मिठास अचानक आई 1959 में, जब पाँच भाइयों के बीच हमारी एक-मात्र बहिन का जन्म हुआ। अड़ोस-पड़ोस की मुंहबोली बहिनों से राखी बन्धवाना, उन्हें कुछ भेंट दे पाने में असमर्थता, अथवा कुछ लेने में उनका अहसान जताना इतना खलता था कि कलाई सूनी रखना अधिक अच्छा लगने लगा था। ऐसे में बहिन का जन्म भगवान का वरदान और माँ की सब से मीठी रचना लगा; अब भी लगता है।

ये धरती के संस्कार ही हैं कि कौन कहाँ जन्मे, कहाँ बसे, कहाँ का अन्न-पानी पाये। इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश निश्चित होते ही यह अनुभूति होने लगी थी कि अब रहने को हरदा नहीं, सारा देश हमारा है। और भारत शासन सेवा में पहुँचते ही दायरा सारा जहाँ हो गया। यूरोप के चार देश, पूर्व के कंबोडिया, थाईलैण्ड, मलेशिया व सिंगापुर, यू.एस.ए., नेपाल, तिब्बत व बांङ्गलादेश मिला कर 12 देशों की धरती का प्यार मिल चुका है। जीवन-झूला हरदा तक की पींगें अभी भी लेता है, पर अन्य स्थलों की माटी-अन्न-जल वापस खींचते भी हैं। जो निष्कर्ष भी यही देता है कि हरदा में व्यक्तित्व विस्तार की संभावना ही नहीं बनी थी। कभी कभी सपने आते हैं कि हरदा के आर्थिक आधार की निर्भरता मात्र खेती पर नहीं होती, कंप्यूटर, आई.टी., बी.पी.ओ. जैसे 21 वीं सदी के प्रमुख आर्थिक व्यवसाय-स्रोतों में से एक भी आ जाता तो स्थानीय जनता की सोच का स्तर आज की आवश्यकता के अनुरूप होता। हमें लगता है कि हमारे समूचे प्रदेश की भी यही आवश्यकता है। कितने ही उच्च-स्तरों तक पढ़े हुए बुद्धिमान लोग नेतृत्व में हों, पर रोज की समस्याओं को निपटा लेना ही सरकार चलाना मान लेने वाले, आसन्न व सुदूर भविष्य के प्रति कोई सोच का साहस नहीं दिखा पाने वाले लोग हमें तब भी निराश करते थे, अब तक भी कुछ देने को प्रस्तुत नहीं लगते। इतिहास, स्थानीय वैशिष्ट्य, स्थानीय पराक्रम-विभूतियों को आज की विधा-इण्टरनेट पर लाती हरदा की कोई वेब साइट बनी हो ऐसा मेरे संज्ञान में अभी तक तो नहीं है। यह उद्यम अलबत्ता उम्मीद की नई किरण जैसा दिख रहा है। इस उद्यम को, उद्यमिता को अपने प्रणाम समर्पण से, अपनी भावनाओं के प्रवाह को विराम दे रहा हूँ।

705 रोजवे टॉवर, ग्रीन वेली, गुरुकुल रोड, से. 41-42 फरीदाबाद पिन-121010

हरदा का मेरी ज़िन्दगी में एक ख़ास स्थान

डॉ. अनवर जाफरी

हमारी ज़िंदगी के कई चरण आकर चले जाते हैं जिनके कुछ वर्षों बाद हमें लगता है कि हम उन्हें लगभग भूल चुके हैं। पर फिर जब हम बीते हुए किसी खास समय को याद करने बैठते हैं तो मन में से यादों का एक झरना बह निकलता है। और यह यादें न सिर्फ़ उस अतीत को दुबारा ज़िंदा कर देती हैं बल्की साथ ही गुज़री हुई बातों में कई नये अर्थ और आयाम भी जोड़ देती हैं।

जब हमारे पुराने साथी डा. धर्मेन्द्र पारे ने मुझसे कहा कि मैं हरदा में गुज़ारे अपने समय की कुछ यादें लिखूं तो मेरे साथ कुछ ऐसा ही हुआ। पहले तो यह काम मुझे मुश्किल लगा पर जब मैंने अपनी यादों को टटोला तो बहुत सारे दोस्तों और परिचितों के चेहरे और घटनायें याद आने लगे और मेरे लिये उन में से चुनना मुश्किल हो गया । हरदा का मेरी ज़िन्दगी में एक ख़ास स्थान है। यहां आने से पहले मैं मुम्बई के एक विज्ञान संस्थान में काम करता था। इस काम को छोड़ कर मैं ने जो शिक्षा और विकास के क्षेत्र में कदम रखा और ग्रामीण और आदिवासी इलाकों से मेरा जो करीबी परिचय हुआ उसकी शुरुआत हरदा से ही हुई।

हरदा देखने में पहली बार सन 1982 में आया और फिर 1983 में मैं वहां रहने पहुंच गया। हरदा जाकर रहना और वहां काम करना मेरी ज़िन्दगी में एक बिल्कुल नया मोड़ था। सन 1980 में जब मैं मास्को से कम्प्यूटर साफ्टवेयर के क्षेत्र में अपनी पीएच.डी. कर के वापस भारत पहुंचा तो मुम्बई के टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेन्टल रिसर्च में काम करने गया। वहां के कई वैज्ञानिकों का किशोर भारती संस्था के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम

से करीबी जुड़ाव था। यह वैज्ञानिक गर्मियों की छुट्टी में होशंगाबाद जाकर वहां के शिक्षक प्रशिक्षण में देश के और वैज्ञानिकों के साथ स्वय-सेवी रूप से ट्रेनिंग देते थे, गांव के स्कूलों में पहुंच कर छात्रों और शिक्षकों से बातें करते, विज्ञान के प्रयोग करवाते और विज्ञान के सिद्धांत समझाने में मदद करने के लिये नये ढंग की किताबें रचते । मेरी भी सामाजिक और शिक्षा से जुड़े काम करने में रुचि थी और साथ ही ग्रामीण भारत घूमने और समझने की जिज्ञासा भी। भारत के बहुत से शहरी लोगों की तरह मैं भी अपने देश के गावों से बिलकुल अनभिज्ञ रहा था। बस इसी सोच के साथ मैं भी टाटा इंस्टिट्यूट के वैज्ञानिकों के साथ होशंगाबाद आने जाने लगा और सन 1982 में जब स्कूली शिक्षा में काम करने के लिये एकलव्य संस्था बनाने की बात शुरु हुई तो मैं ने उस में जुड़ कर काम करने का निर्णय ले लिया। तब अगला सवाल यह उठा कि मैं होशंगाबाद ज़िले में कहां रह कर काम करूंगा।

हरदा शहर में मेरे रहने का निर्णय कुछ आकस्मिक ही लिया गया। तब होशंगाबाद ज़िले का हरदा से विभाजन नहीं हुआ था। ज़िले में एकलव्य संस्था के तीन सेंटर बनने थे- पिपरिया, होशंगाबाद और हरदा में। हमारे एक साथी ने पहले से पिपरिया में काम करने का निर्णय ले लिया था। दूसरे साथी का आना जाना होशंगाबाद में रहा था इस लिये उन्हों ने काम करने के लिये होशंगाबाद शहर चुना। बाकी रहा मैं, तो मेरे लिये ज़िला नया था और सभी शहर एक जैसे थे। इसलिये तैयार हुआ कि मैं हरदा में रहूंगा। यह आकस्मिक निर्णय मेरे लिये बड़ा उपयुक्त साबित हुआ।

इस निर्णय के जल्द बाद ही एक दिन मैं हरदा से अपना पहला परिचय करने के लिये होशंगाबाद से बस का सफ़र तय करके वहां पहुंचा। मेरी जेब में पर्ची पर हरदा कॉलेज के पहले प्रिन्सिपल श्री दत्त साहब का पता था जिन से मिलने की सलाह मुझे किशोर भारती संस्था के अनिल सदगोपाल जी ने दी थी। दत्त साहब के घर पहुंच कर उनके बरामदे में गप करते हुए मैंने उनसे हरदा की संक्षिप्त जानकारी पाई और ज्यादा विस्तृत रूप से वहां के नये अशासकीय कॉलेज को स्थापित करने के लिये सरकारी गलियारों में उन के संघर्ष के किस्से सुने। साथ ही हरदा में घर ढूंढने के बारे में सलाह मांगी और हरदा के कुछ शिक्षकों और शिक्षाविदों के नाम और पते लिये। और इसी के बाद मैं ने घर ढूंढने और लोगों से मिलने के सिलसिले में हरदा के गली कूचों के चक्कर लगाना शुरु किया और जल्दी ही मेरा शहर से ख़ासा परिचय हो गया।

यह सन 1982 की बात है। उस समय के छोटे भारतीय शहर आज की तुलना में काफ़ी अलग दिखते थे। टी.वी. का दौर अभी शुरु होना बाकी था और टीवी के साथ साथ आने वाले ग्रामीण क्षेत्रों में मार्केट का फैलाव भी शुरु नहीं हुआ था। एक नये शहर में आने के बाद हमें कुछ अकेलापन भी लगता था। इस नये वातावरण में एक नई ज़िन्दगी शुरु करने

और नये दोस्त बनाने का सिलसिला काफ़ी दिनों तक चलता रहा। हरदा आने के कुछ समय बाद ही हमने नेहरू कॉलोनी में हरदा के पुराने रहने वाले और प्रतिष्ठित नागरिक सोकल जी का मकान किराये पर ले लिया। इस मकान में मैं और मेरी पत्नी अंजलि करीब बारह वर्ष रहे और इसी मकान की पहली मंज़िल पर बाद में एकलव्य संस्था का कार्यालय, बच्चों का पुस्तकालय और संस्था की अन्य गतिविधियां भी शुरु की गयीं। हमारी बेटी ईरा की ज़िन्दगी का पहला वर्ष भी इसी घर में गुजरा।

सोकल जी एक अनुभवी और गम्भीर व्यक्ति थे और बातचीत बड़ी नम्रता से करते थे। उनसे करीबी परिचय हो जाने के कारण हमें कई प्रकार की मदद भी मिलती रही। कुछ ही दिनों में हम उनके परिवार के सदस्य जैसे बन गये और जब भी ज़रूरत पड़ती उनसे राय लेने उनके घर चले जाते। उनके माध्यम से हमारा परिचय हरदा के और कई लोगों से हुआ। इन लोगों में से खास थे .... हाजी जी, पुराने वाले वकील साहब।

किसी नयी जगह पर नये दिनों की कोई छोटी घटना भी एक यादगार बनकर रह जाती है। हरदा की ऐसी कई घटनायें हमारे मन में बसी हैं। तब यह ज़माना था कि हरदा की दुकानों पर ब्रेड नियमित नहीं मिलती थी। सुबह सवेरे रोटी नहीं बनानी पड़े इसलिये हम नाश्ते में ब्रेड खाते थे। पूछताछ करने पर हमें एक आशिक मियाँ के बारे में पता चला जो अपनी साईकिल से घर घर जाकर ब्रेड, मक्खन और अंडे बेचा करते थे। हरदा में बेचने के लिये आशिक मियाँ भोपाल से ट्रेन द्वारा हफ़्ते में तीन बार ब्रेड बुलवाते थे। जल्द ही आशिक मियाँ नियमित रूप से हमारे घर आकर ब्रेड ले लो, की ज़ोरदार आवाज़ लगाने लगे। एक दिन की बात है जब आशिक ब्रेड देने हमारे घर में आये तो घर पर के. एल. सहगल के पुराने गाने बज रहे थे। आशिक मियाँ की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। बड़े खुश होकर दरवाज़े से टिक गये और बताया कि सहगल साहब के गाने तो मेरे भी प्रिय हैं। जब हमें पता चला कि आशिक स्वयं भी सहगल के गाने गाते हैं तो उस के बाद जब भी आशिक हमें ब्रेड देने आते तो हमारे आग्रह पर सहगल की दो चार पंक्तियां ज़रूर सुना जाते।

क्योंकि हम को काम स्कूलों में करना था, बच्चों से दोस्ती करने और उनके बीच पढ़ने का माहौल बनाने के लिये हमने नेहरू कॉलोनी में एक छोटा पुस्तकालय शुरु किया। तब एक दिलचस्प अनुभव यह हुआ कि शिक्षकों और अन्य परिचितों का कहना यही होता कि पुस्तकालय खोलना तो बेकार है। आजकल बच्चों को पुस्तकें पढ़ने का बिलकुल शौक नहीं बचा है। पर जैसे ही पुस्तकालय खुला और काफ़ी खोज के बाद रंगीन चित्रों वाली, मज़ेदार कहानियों की बहुत सी पुस्तकें वहां जमा की गयीं तो बच्चों के उत्साह और हमारे अचरज का ठिकाना नहीं रहा। पहले दिन आस पास के दो चार बच्चे आये। अगले दिन यह

संख्या आठ दस पर पहुंच गयी और देखते ही देखते कानों कान पुस्तकालय की ख़बर बच्चों में फैल गयी। हफ्ते दस दिन में तीस चालीस बच्चे रोज़ आने लगे। बच्चों में कहानियां पढ़ने की एक अजीब उमंग थी। पुस्तक वापस करने और नयी पुस्तक लेने के लिये रोज़ लम्बी लाईन लगने लगी।

हरदा का यह पुस्तकालय हमारे लिये बच्चों के साथ काम करने की एक प्रयोगशाला वर्षों तक बना रहा। छोटे बच्चे थोड़ी देर पुस्तक पढ़ कर बोर हो जाते इसलिये पुस्तकों के अलावा बच्चों के लिये अन्य खेल जैसे शतरंज और सांप सीढ़ी भी रखे गये। बच्चों के साथ कहानी सुनने और सुनाने का ग्रुप सेशन रखा जाता। दिमाग़ी कसरत करने के लिये हमने तरह तरह की पहेलियां और पज़ल जमा करना शुरु किया। इन सब खेलों और पहेलियों में बच्चों की दिलचस्पी देख कर ही हरदा की खिलौना वर्कशाप शुरु करने की सोच भी हमारे मन में उपजी। इस खिलौना वर्कशाप मेंआज भी कई तरह के खिलौने बनते हैं।

उस ज़माने से बीस तीस साल बाद आज भी अक्सर भोपाल के किसी मेले या बाज़ार में किसी जवान मर्द या औरत का अजनबी सा चेहरा मेरे करीब आ रुककर पूछता है कि सर आप को याद है, मैं तीसरी कक्षा में था तो हरदा के पुस्तकालय में आता था और तब उस चेहरे के पीछे छिपी किसी बालक या बालिका की तस्वीर उभर आती है जो सालों पहले हमारे पुस्तकालय में खेला करती थी।

हरदा में जुड़ी एकलव्य की टीम में इज़ाफ़े भी होते रहे। लगभग एक या दो वर्ष के लिये होशंगाबाद से श्याम भाई (श्याम बोहरे जो सरकारी कॉलेज में पढ़ाते थे) और चंडीगढ़ से लालटु और कैरेन भी आकर हरदा में रहे। स्वयं हरदा शहर से धर्मेन्द्र पारे, राजेश वर्मा, शोभा चौबे, गोविंद नागले जैसे बहुत से लोगों ने इस प्रोग्राम मे साथ काम किया और कई साथी आज भी कर रहे हैं। ऐसी टीम के होने से बड़ी तादाद में हरदा शहर के युवा और कई सीनियर लोग एक मंच पर कई सांस्कृतिक और रचनात्मक गतिविधियों में जुड़ पाये।

उन दिनों एकलव्य से जुड़ी कई दिलचस्प और महत्वपूर्ण गतिविधियों में से मैं यहां दो खा़स बातों का ज़िक्र करना चाहता हूँ। बच्चों के लिये शुरु की गयी गतिविधियों में एक खा़स थी ओरिगामी। यह रंगीन चौकोर काग़ज़ को मोड़ कर तरह तरह के चिड़िया, जानवर और अन्य कृतियां बनाने की जापान से निकली एक अनोखी कला है। पर खा़स बात यह कि बच्चों के लिये दिमाग़ी और हस्त कला होने के साथ ही यह बड़ों के लिये भी बड़ी आकर्षक और चुनौतीपूर्ण गतिविधि है जो अच्छे स्तर का दिमाग़ी स्व-अनुशासन बनाने और ज्यॉमिति जैसी विधायें सिखाने का माध्यम बन सकती है। पर बच्चों में इसे फैलाने के लिये सक्षम और समझदार सिखाने वालों के बिना काम नहीं चलता। साल में एक आद बार तो मुम्बई से हम

लोग केस्कर जैसे ओरिगामी के कुशल और प्रतिभाशाली ट्रेनर बुला लेते थे पर ज़रूरत थी स्थानीय विशेषज्ञों की जो लगातार इस कला को बच्चों में फैलायें। और उस समय हमारे युवा साथी धर्मेन्द्र पारे ने, जो अपनी कॉलेज की शिक्षा पूरी करके एकलव्य से जुड़े थे, इस ज़रूरत को ओरिगामी में गहरी पकड़ और कुशलता विकसित करके निभाया। यह समझना भी ज़रूरी है की ओरिगामी के ऊंचे स्तर के आयाम बड़े पेचीदा और जटिल हैं और इन पर पकड़ बनाने के लिये भाई धर्मेन्द्र ने बड़ी मेहनत अंजाम दी। मुझे याद है कि एक दफ़ा जब में किसी ज़रूरी काम से आकस्मिक देर रात धर्मेन्द्र के घर गया तो मैं ने उन्हें किताबें खोल कर ओरिगामी की एक पेचीदा आकृति से जूझता पाया।

द्वारा -समावेश, ई-1 /138 अरेरा कॉलोनी भोपाल

नीम शहर हरदा

डॉ. प्रियंका पंडित

मुझसे शहर - हरदा बिसर नहीं रहा ... 'जनम-जनम के दुख बिसरावै' की तरह, काश हरदा मुझसे मेरी यादों की ज़द के बाहर हो पाता। धीरे-धीरे ही सही मुझे ही उसे अपनी यादों की हदों से बाहर करना होगा।

स्मृतियों में जीना जीने का बहाना होता है, जीना नहीं। पूरी ईमानदारी से कह सकती हूँ कि अब हरदा के प्रति मैं पूरी तरह पूर्वाग्रह से ग्रस्त हूँ, यह अच्छा है या बुरा यह मैं नहीं जानती पर हैं ये पूर्वाग्रह भुगते हुए हैं, इसलिए सत्य हैं। अत: ये सत्याग्रह हुए इसे कदाचित् मेरा स्पष्टीकरण न समझा जाए।

जन्म से लेकर जीवन तक हरदा के वायुमंडल से जुड़ाव है। कहने को इतना कुछ पर कहने का दिल बिल्कुल नहीं। फिर भी कुछ तो कहूँगी ही अन्यथा हरदा का श्राद्ध-कर्म कैसे होगा ? मेरी बातों से कहीं न कहीं पुरानी आस्था और परंपराओं की गंध आ रही है, क्यों न हो 'लोक' को छोड़ा तो नहीं जा सकता न खैर।

जितनी बड़ी मैं हूँ उससे कहीं ज्यादा, बहुत ज़्यादा उम्रदराज़ है हरदा। मेरी माँ और पिता के पूर्वजों को भी इस शहर ने देखा है और मेरे बच्चे को भी इस शहर की गलियों ने देखा है। यूँ कहूँ यह शहर हमें विरासत में मिला और यही रोज़ी-रोटी रही। यही कैदे - बामुशक्कत रहा, यही कैद-ए-आसक्ति रहा। यह रिश्तों की हरी-हरी घास पर उगा हुआ जैसे कोई जंगली फूल रहा। मैं हरदा जैसे निरीह स्थान के बारे में क्या कहूँ इससे तो बहुत मोहब्बत की है मैंने। इतनी -इतनी कि आसमानों को भी शर्मिंदा होना पड़े।

आज मैं उम्र के दूसरे दौर के अंतिम पड़ाव पर हूँ, कभी-कभी हरदा मेरी यादों में सितारों से भरे हुए बेहद नीले आसमान की तरह आता है जिसमें पूरा-पूरा चाँद चमकता है। हँसता हुआ, कभी बारिश की सावनी फुहारों की तरह, तो कभी कड़कती बिजलियों की तरह

लेकिन अब हरदा किसी ग्रहण की तरह मेरी यादों के नक्षत्रों को निगलता जा रहा है, फिर भी मुझे हरदा से मोहब्बत है। अपना शहर, माँ-पिता-परिवार, घर, मोहल्ले, स्कूल, कॉलेज, मित्र, अमित्र, रिश्तों के ज्वार-भाटों के अलावा भी बहुत कुछ होता है। शहर एक खड़ा हुआ सदियों पुराना नीम का पेड़ होता है। मेरा सबसे करीबी सबसे विश्वसनीय नीम का पेड़ जो हरदा ही में छूट गया है पर फिर भी हरदम मेरे साथ रहता है।

हरदा की वे सड़कें जिन पर माँ-पिता के कदमों के निशान है, कौन भूल सकता है? माँ ने तो उन निशानों में ही अपने आपको मिला दिया हालाँकि हरदा की भूमि पर मेरी माँ ने प्राण नहीं त्यागे, पर हरदा के तंग-तंग गलियारों ने, रिश्तों की कसैली गंधों ने, जानी-पहचानी सड़कों ने, फिजूल दुआ-सलामों ने, वही-वही सुबहों, वही वही शामों ने, कुछ-कुछ प्यारे से चेहरों ने, कुछ-कुछ गीली धूप ने, तो कुछ पुरानी छत ने और कुछ जीवन की आश्वस्ति ने हरदा छोड़ने ही नहीं दिया, यूँ तो छूट कर भी छूटा नहीं हरदा।

हरदा की शान्त सुबहों और उदास-मनहूस शामों के बीच दोपहरें व्यस्त रहीं, और रातों में तो छतों पर पत्थर भी पड़े और उस वक्त हरदा के लोग बेहद खामोश रहे, वैसे इतने खामोश हैं नहीं हरदा के लोग।

अगर मैं कहूँ मुझे शिकायत नहीं है हरदा से तो मैं झूठ कहूँगी। लेकिन इसी शहर हरदा ने इसकी ज़मीन ने हमें पनाह दी, ऊष्मा दी, वो नीम का पेड़ दिया जिसे मैं आज भी पूरब दिशा की ओर देखकर याद करती हूँ। वह पेड़, एकमात्र पेड़ मेरे साथ खड़ा है और मुझे देखते हुए देखता है याद करते हुए याद करता है। गर्मियों की सन्नाटेदार सड़कों में हम भाई-बहनों को परीक्षाओं की तैयारी करते हुए देखता है। बारिशों में हमारे साथ उस गीत की तरह बजता है जिसका हमें मुखड़ा और अंतरा दोनों याद है।

हम सर्दियों की बात नहीं करेंगे क्योंकि इस वक्त पेड़ों को आराम की सख्त ज़रूरत होती है। हरदा बदल रहा था जब मुझसे छूटा अब तो बदल चुका है। बदलाव तो प्रक्रिया है और ज़रूरी भी यह बदलाव, अच्छा है बुरा यह कहना जल्दबाजी होगी। जैसा कि मुझे तो मोहब्बत है हरदा से इसीलिए तो शिकायतें हैं वरना किसी पराये शहर से कोई कुछ कहता - सुनता है क्या ?

हरदा का हर मोड़ मैदानी रहा हो ऐसा नहीं है। कहीं कहीं, कभी-कभी पहाड़ों की उदासियाँ रहीं तो कहीं पर समंदर में धूप के परावर्तन से पैदा हुई उमस भरी परेशानियाँ भी। हरदा के आसमान को छोटी-सी कैद में बंद थोड़े ही किया जा सकता है। थोड़ा ठहरियेगा फिर कहीं-न-कहीं मिलेंगे। फिलहाल बारिशों में रूका हुआ बर्फीला शहर मुझे दिसंबरी धूप की तरह याद आ रहा है, तो क्या ? यादें हैं कभी-कभी आ जाती है। पर अब हरदा आने को जी नहीं चाहता जितना भी खंड मैंने हरदा में जिया उतना तो मेरे साथ हमेशा ही रहता है। हरदा मुझसे बाहर कैसे जा सकता है ?

यादें युद्ध के मैदान की तरह होती हैं जहाँ युद्ध के कोई नियम नहीं होते। हो सकता जीवन की शाम में कभी हरदा गज़ल की तरह मुझे याद आये।

खुश रहो नीम शहर ... हरदा

1-232 एम.आई.जी कॉलोनी नागपुर

सदा मेरे साथ है हरदा

आजाद जैन

जब मुझसे इस पत्रिका में लिखने का आग्रह किया गया तो एक संकोच सा हुआ, कुछ तो स्वभावगत, पर इसलिए भी कि कौन किस पद पर रहा, सफलता का यह मानदंड, मैं जिस हरदा में बड़ा हुआ उससे मेल नहीं खाता, उस हरदा में पद से कद, कुर्सी नहीं व्यक्ति बड़ा होता था। फिर भी मैं आभारी हूँ कि अपने शहर के साथ अपने रिश्ते को गहराई और विस्तार के साथ बूझने का यह मौका मुझे मिला। अपने घर की सबसे बड़ी ख़ासियत क्या होती है, कि वह आपका अपना होता है। उसमें आप एक ही साथ स्वंतत्र और सुरक्षित दोनो हैं। मेरे लिए हरदा शहर नहीं, एक घर है।

मैं हरदा में १९४९ (जन्म) से १९६० तक और फिर १९६९ से १९७४ तक रहा। पहले दौर की यादों में शामिल हैं, नदी किनारे का घर, अनवरत बारिश और नदी की सालाना बाढ़, बैलगाड़ी से हरदा, ग्राम भादुगाँव के रातों के सफ़र । रेलगाड़ी से हरदा बंबई के सफर नानी के साथ रोज सुबह मंदिर जाना, रस के न जाने कितनी क़िस्मों के अमृत भरे आम और ताजी सब्जियों का व्यवस्थित बाजार जहाँ मैं ५ वर्ष की उम्र से रोज अकेला खरीदारी करता था। याद है, जत्रा मैदान में शेर, हाथी, जोकर और झूलों पर जादू करती परियों वाला सर्कस, जन्माष्टमी की झाँकियाँ, मुहर्रम के ताजिए, डोल ग्यारस के जुलूस, रामलीला और दशहरा, मिट्टी के दियों की दीवाली, बाँस की पिचकारी से होली और किन्हीं दूर के शहरों से डाक से आती कोई राखी। याद हैं जीजी (मेरी माँ) का स्कूल के लिए और उस पीढ़ी के कितने सारे लोगों का अपने अपने काम के लिए अनथक परिश्रम और समर्पण, जिसने इस शहर और उसके लोगों को एक अलग पहचान दी। याद है ए.बी.एम. में कुछ महीनों और बी.बी.एम. (बालू भैया का बाल विकास मंदिर) में कुछ बरसों की बहुत सारी

शामें और नीमगाँव में दो दिन का श्रमदान शिविर। उस शिविर में जो सड़क बनी उसके क्या हाल है, पता नहीं पर बी.वी.एम. से निराला की वर दे वीणावादिनी वर दे से लेकर, संस्कृति, अनुशासन, खेल और वसुधैव कुटुम्बकम के जो मूल भाव उस समय के मेरे जैसे १००-२०० बच्चों ने पाए, वो सदा के लिए हमारी धरोहर हैं।

याद हैं किशोरी से और मित्रों से डाक टिकिट संग्रह के लेन देन और घर से नगर पालिका वाचनालय तक फैला, ताजी खबरों और कालातीत साहित्य का अद्‌भुत और अपार संसार। याद है खेड़ीपुरा का प्राथमिक और ज़ाकिर अली सर वाला मिडिल स्कूल (और ट्यूशन क्लास) जहाँ हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं से दोस्ती हुई तथा ज्ञान विज्ञान, जिज्ञासा के साथ संसार में पहले कदम रखे। याद हैं घंटाघर और वहाँ की चहल पहल मानो सारा शहर इसी धुरी से संचालित होता हो। यद्यपि स्कूल कॉलेज की छुट्टी कई बार हरदा में ही बिताई थी तब भी कहना चाहिए कि आठ साल के बाद एक दूसरी दुनिया (हरसूद, बंबई, इंदौर) से एक दूसरी उम्र में, जब हरदा लौटा तो कुछ कुछ नये सिरे से और नये अर्थों में अपने शहर से पहचान हुई। बी.कॉम करते हुए और बाद में प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करते समय, शैक्षिक उत्कर्षता के वातावरण का अभाव थोड़ा खला पर व्यक्ति, समाज, राजनीति और साहित्य तथा इनके अंतर-संबंधों पर चर्चा और बहस के लिए मित्रों की कोई कमी नहीं थी। वैसे तो किताबों का शौक शायद जन्मजात था, पर फिर भी मोहन राकेश, धर्मवीर भारती (कनुप्रिया आदि) अज्ञेय (संपूर्ण) हिन्दी के कई और लेखक, अमृता प्रीतम और कालिदास के अनुवाद, अरविंद दर्शन, पश्चिमी साहित्य और जीवन दर्शन से लेकर विकास के बाजार आधारित अर्थशास्त्र तक, जितना सारा इन ५-६ वर्षों में पढ़ा और उससे जो जीवन दृष्टि विकसित होना शुरू हुई, उसे मैं अपने जीवन की अमूल्य निधि मानता हूँ।

कॉलेज और किताबों की दुनिया के अलावा मित्रों के साथ रोज १०-१२ किलोमीटर की मटरगस्ती और होली, दीवाली, शरद पूर्णिमा आदि पर आयोजित दाल-बाफला पार्टी पिकनिक भी इस दौर की अविस्मरणीय यादें हैं। लेकिन सबसे ज्यादा याद आते हैं, मेरे गुरूतुल्य रामभाउजी शास्त्री और उनसे सुने हरदा और पास पड़ोस के गाँव के लोगों के अनगिनत किस्सों में और ज्यादातर उस बहाने जीवन के बहुआयामी मूल्यों की जाँच परख में बीता, करीब करीब रोज दोपहर का समय। कुल मिलाकर मिट्टी और पानी से रिश्ते की बात हो या शब्द और अर्थ से पहचान की, मेरे लिए उन सब की शुरूआत का नाम हरदा है। हरदा ही मैत्री, आस्था और जीवन मूल्यों की खोज का मेरा पहला सहचर है। वो शहर, जहाँ अब मेरा कोई घर नहीं है पर वो अकेला शहर, जहाँ शायद सब घर मेरे हैं। हरदा आना जाना बना रहता है पर वैसे भी हरदा सदा मेरे साथ है। याद आती हैं अज्ञेय की पंक्तियाँ :

तुम मेरे घर की खिड़की हो
जिससे से मैं
दुनिया को, जीवन को, प्रकाश को देखता हूँ,
पहचानता हूँ
क्योंकि उसी खिड़की में से हाथ बढ़ाकर,
मैं अपनी अस्मिता को पकड़े हूँ
और तुम, तुम्हीं मेरा वह समर्थ हाथ हो,
तुम जो सोते जागते,
जाने अंजाने मेरे साथ हो

डी-५ कोहेफिजा, भोपाल म.प्र.

हरदा, मेरी जन्म भूमि

डॉ. कृष्ण चराटे

मैं हरदा में जन्मा, गढ़ीपुरा शीतला माता मंदिर के पास हमारा घर था । वर्ष 1933 में जन्म, जन्म के बाद लगातार सतरह साल 1950 तक, हम हरदा में रहे। 1948 में, पिता श्री शंकर राव चराटे की मृत्यु हो गई 1950 तक मुझे हरदा में रहना था, क्योंकि मेट्रिक की परीक्षा पास करनी थी। 1950 में मेट्रिक की परीक्षा दी, पर रिजल्ट की प्रतीक्षा किये बगैर, हम इन्दौर चले गये, इन्दौर बड़ी बहन व बहनोई के आश्रय में रहे, वहां कठिन जीवन संघर्ष रहा। आज, जब मैं हरदा की स्मृतियों को टटोल रहा हूँ, तो 60 वर्ष हो गये हैं, हरदा से बिदा हुए। पिता की असामयिक मृत्यु के बाद घर का सबसे बड़ा होने से, जिम्मेदारियां मेरे पर ही थी। छोटा, भाई, माँ और बहन, कुल जमा 4 सदस्य थे। मुझे अच्छी तरह याद है, 1938 के पहले तक न तो प्रायवेट स्कूल थे और न ही प्रायवेट स्कूलों का पाखण्ड। मेरी प्राथमिक शिक्षा अन्नापुरा स्कूल में हुई। 1938 में दाखिला लिया और 1942 में चौथी कक्षा पास की। अन्नापुरा मिडिल स्कूल में 5 से 8 वीं तक की पढ़ाई हुई और म्युनिसिपल हाईस्कूल से मैट्रिक परीक्षा दी। यह स्कूल पहले मिशन स्कूल था। इसे ईसाई मिशनरियां संचालित करती थी। स्कूल उस समय सरकारी हो या प्रायवेट वहां शिक्षा का स्तर अच्छा था। बाद की उच्च शिक्षा इंदौर, ग्वालियर व भोपाल में हुई। पीएच.डी. करने तक कभी लगा नहीं कि हरदा का अध्ययन कभी कमजोर था।

हरदा के शिक्षकों को जब याद करता हूं तो श्री शुक्रे, श्री गुहा, प्रधानपाठक जोशी दद्दा, अंग्रेजी वाले मुमताजअली सर। जब गुलजार लायब्रेरी से जाते तो मुमताज अली सर के आगे पीछे विद्यार्थियों का हुजुम लगता था। वे बड़े लगनशील अध्यापक थे। सहपाठियों में पुरूषोत्तम वापट, प्रभाकर सहस्त्रबुद्धे, मूलाराम जोशी, कृष्णकांत निलोसे, डॉक्टर शांता बलवटे प्रमुख थे। हरदा मेरी जन्म भूमि है, जीवन के पहले सत्रह साल यहीं बीते ऐसा कोई

दिन नहीं बीतता जब हरदा याद न आता हो। स्कूल में एक निबंध प्रतियोगिता हुई, 'जीवन की बूंदे' नामक पुस्तक ईनाम मिली, इसके बाद लिखने का सिलसिला चल पड़ा, सैकड़ों निबंध लिखे, पर वह घटना और निबंध मैं आज तक नहीं भूला। हरदा में था एक तांगेवाला, नाम था बजरंग..... स्टेशन से घर आने का किराया चार आने। रास्ते में हरदौल बाबा का मंदिर पड़ता था, हरदा से हंडिया के लिए बस चलती, नाम था रायल बस पर होती बड़ी टूटी-फूटी सी। अजनाल पर एक खड़वड़िया पुल था, जहां से गुजरकर हम कड़ोला जाते, जहां हमारा एक परिचित परिवार रहता था। वर्ष में एक दो बार यह पुल बाढ़ के कारण बंद हो जाता, जब अजनाल उफनती तो शीतला माता मंदिर की सीढ़ियों तक आ जाती। महिलायें पूजन की थाली लिये आती और पूजन करके जैसे अजनाल से प्रार्थना करती कि वह उतर जाये। नदी घाट पर कई आकर्षक मंदिर किसी अंग्रेज अधिकारी बेली साहब के नाम पर बसा बेलीपुरा, रेल्वे स्टेशन के पास ईसाईयों की बस्ती। बाजार में रहटगाँव वाले सेठ की बड़ी दुकान, रेल्वे स्टेशन के रोड के एक किनारे हिंदू होटल दूसरी ओर मुस्लिम भाइयों के खाने का होटल। स्टेशन के बाहर निकलते ही सवारियों के पीछे दौड़ लगाते तांगे वाले। गढ़ीपुरा घर आने के दो ही रास्ते या तो व्हाया घंटाघर या व्हाया हरदौल बाबा। हरदौल बाबा का मंदिर ऊपर से खुला था। मान्यता तब यह थी कि, इस पर कच्ची या पक्की कोई छत नहीं डाली जा सकती। होटल थे पर हम बच्चे होटल जाने में डरते थे, एक अपराध बोध होता था।

पिताजी की मृत्यु के बाद हमने हरदा भारी मन से छोड़ा, हरदा में मकान था ही, पिताजी का जी.पी. एफ. भी मिला, पैरों पर खड़ा होना असंभव नहीं था। इंदौर की बजाय हरदा में संघर्ष करते तो जल्दी जम जाते, दोनों चाचा भी सहायता के लिए तैयार पर माँ ने कहा 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ' और कुछ-कुछ इंदौर में बस जाने का आकर्षण भी। अंततः हमने हरदा छोड़ दिया। मकान बिका तो कागज पर हस्ताक्षर करने गया और बाद में मध्यप्रदेश साहित्य परिषद कार्यक्रम में व्यंग्य रचनापाठ के लिए ।

जब हरदा छोड़ा, मैं सत्रह साल का था। पिता की मृत्यु हुई तो वे मात्र 39 वर्ष के थे। हरदा छोड़ते समय जब हमने गाय-बछड़े को बेचा तो उनका रूदन और बिछोह आँखों को तर कर गया। शांताराम काका के एम.सी.सी. (महाराष्ट्रीयन चिल्ड्रन क्लब) और आर.एस.एस. की शाखा में नियमित जाता रहा, 1951 से लेखन की शुरूआत हुई तो आज तक जारी है।

ई- 4-229, अरेरा कालोनी, भोपाल

आचरण की व्याकरण है, हरदा।

अशोक बाजपेयी

हरदा, विद्यादानियों का शहर है, यहां की प्रतिभाओं ने हर क्षेत्र में इस शहर को पहचान दी है। यह मेरा सौभाग्य है कि हरदा के जिस विद्यालय में मैं अध्यापन कर रहा था, वह नर्मदा संभाग का एक मात्र विशुद्ध-विज्ञान स्कूल था। उच्च शिक्षा संस्थानों के नाम पर एक मात्र पॉलिटेक्निक। छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए, भवन का भौतिक विकास भी आवश्यक है। सीमित साधनों से यह कार्य दुष्कर होता है। इसी सिलसिले में विद्यालय भवन की मरम्मत और सुधार के लिए तत्कालीन प्राचार्य श्री जी.एस.जोशी, लोक निर्माण विभाग के एस.डी.ओ. से मिलने गये, उन्हें सम्मान पूर्वक बैठाया गया और एस.डी.ओ. ने पूछा, सर मैं क्या सेवा कर सकता हूँ, समस्या बताने पर उन अधिकारी महाशय ने जो कहा उसका उल्लेख न करना बेइमानी होगा, उन्होंने कहा ''सर मैं संसार में दो को पिता मानता हूँ, एक वे जिन्होंने जन्म दिया दूसरा विद्यालय, जहाँ बैठकर हम यहां तक पहुंच सके। स्कूल का हर कार्य मैं तत्परता से करूंगा, आप निश्चिंत हो जाईये।'' उन्होंने वैसा ही किया। स्कूल एक नये स्वरूप में आ गया।

विद्यालय के ब्लेकबोर्ड पर हर रोज महापुरूषों के सूक्तिवचन लिखे जाते थे शीर्षक था 'आज के पुष्प।' एक दिन हम प्रेरक-वाक्य लिखना भूल गये, ब्लेकबोर्ड खाली रह गया। किसी छात्र ने उस पर लिखा 'आज के पुष्प मुरझा गये।' छात्र की प्रत्युत्पन्नमति देखकर हम सभी शिक्षक सराहना के अलावा क्या कर सकते थे ? एक बार एक निरीक्षण दल स्कूल में स्कूल लगने से दस मिनिट पहले आ गया। घंटी बजी, प्रार्थना हुई, प्रेरक लघु कथा एक छात्र ने सुनाई । छात्र चुपचाप कक्षाओं में चले गये, अध्यापन शुरू हो गया। निरीक्षण दल ने कहा

कि जिस स्कूल की शुरूवात इतने अच्छे ढंग से होती हो उसे क्या देखना! स्कूल की हस्तलिखित पत्रिका 'विज्ञान-प्रगति' छात्र इतनी मेहनत से तैयार करते कि वह लगातार पांच वर्ष तक राज्य में प्रथम आयी। परीक्षा परिणाम श्रेष्ठ रहा, नृत्य 'भांगड़ा' राज्य में कई बार प्रथम आया। तत्कालीन शिक्षा अधिकारी, श्री सी.के. शुक्ला ने कहा था यह तो अठारहवीं सदी का गुरूकुल है । विभिन्न विधाओं के विद्वान, समय-समय पर स्कूल में आमंत्रित किये जाते रहे, जिनमें डॉ. नरेन्द्र कोहली, दादाभाई नाईक, सुकुमार पगारे, डॉ. विजय बहादुरसिंह, श्री विष्णु राजौरिया, पं. रामनारायण उपाध्याय, आचार्य पुरूषोत्तम दीक्षित प्रमुख थे। इन्हें स्कूल लाने में श्री कमलचंद जी जैन, डॉ आनंद झँवर और नरेन्द्र मौर्य की विशेष भूमिका होती थी। शाला की बहुमुखी प्रगति के लिए, स्कूल शिक्षा का शीर्षस्थ 'राष्ट्रपति-सम्मान' संस्था के प्राचार्य श्री जी.एस. जोशी को प्रदान किया गया। भावी-पीढ़ी के 'आचरण की व्याकरण' रहे, हरदा नगर के इस विद्यालय में अध्यापन कर, मैं स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता हूँ, उन लम्हों को याद कर मैं महसूस करता हूँ कि हमारा शिक्षक होना सार्थक हो गया। जनता, छात्र और शिक्षकों के सहयोग से विद्यालय का हर कार्यक्रम सार्थक हो जाता था ।

हरदा अब तहसील से जिला बन गया है। प्रदर्शन के इस युग में हरदा का दर्शन सुरक्षित रहे यही मंगल कामना है ।

मन चाहा आकार पा जाती, माटी क्या जादू टोना है

चाक शिल्पी बोला धर्म मेरा, माटी को बनाना सोना है।

स्मृतियों के आकाश का चांद डूबने लगा था। नई भोर होने लगी थी। हरदा के आकाश का प्रतिभा सूर्य कभी अस्त नहीं होगा। इसी आशा विश्वास व मंगलकामनाओं के साथ....

110, रमा कॉलोनी, खण्डवा

हरदा, पारिवारिक कस्बा

प्रो. मधु गार्गव

मैं हरदा में जन्मा, बड़ा हुआ, प्रारंभिक शिक्षा हरदा में हुई, दसवीं तक हरदा में अध्ययनरत रहा। यहां उच्च अध्ययन की व्यवस्था नहीं थी इसलिए महाविद्यालयीन शिक्षा के लिए भोपाल जाना पड़ा । 1959 में हमीदिया कॉलेज में प्रवेश लिया, सेफिया कॉलेज में प्राध्यापक हो गया। हरदा में मैन रोड नरसिंह मंदिर पर हमारा पैतृक आवास है, यह अजनाल तट का पश्चिमी भाग हरदा का प्राचीन मोहल्ला खेड़ीपुरा कहलाता है। मेरी हरदा की शिक्षा जत्रापड़ाव (मानपुरा), अन्नापुरा व मिडिल स्कूल में हुई। मेरे सहपाठियों में विनय पारे, डॉ.लक्ष्मीनारायण राठी, डॉ. फैयाज हुसैन, शंकर अग्रवाल (शंकर स्टोर्स) प्रमुख थे। उस समय का दोस्त सहपाठी नहीं परिवार का सदस्य होता था। उस मित्र के साथ परिवार के सदस्यों से भी गहरे आत्मीय रिश्ते होते थे। इन मित्रों के साथ मेरा जीवन हंसते खेलते बीता। अपने सम्मानीय शिक्षकों को जब मैं याद करता हूं तो मुझे श्री मोजीलाल दुबे, स्व. श्री एन.पी.चौबे, बालकिशन गुप्ता एवं जाकिर अली सर का सहज ही स्मरण हो आता है। ऐसे आत्मीय, अनुशासनप्रिय व समर्पित शिक्षकों की प्रेरणा व मार्गदर्शन में, मैंने सुनहरे भविष्य के स्वप्न देखे और उन्हें हकीकत में बदलने के प्रयास करता रहा। इन गुरूओं की सादगी व सरलता ने मेरे जीवन को दिशा प्रदान की। हरदा की कस्बाई पारिवारिकता के गहरे आत्मीय संस्कारों ने मुझे महानगर में भी बुराइयों से बचाये रखा। मेरे व्यक्तित्व निर्माण में हरदा के परिवारजनों के साथ-साथ, उक्त शिक्षकों व मित्रों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। महाराष्ट्रीयन चिल्ड्रन क्लब 'एम.सी.सी.' में खेलकूद का स्वस्थ्य व सुविधा सम्पन्न वातावरण था। यहां माधव नागराज, अशोक विपट, सुरेश खिरवड़कर व प्रकाश नवले मेरे अभिन्न मित्र रहे।

आदरणीय शांताराम काका और शंकर चोलकर ने मुझे हॉकी में आगे बढ़ाया । श्री बी.सी. लोकरे को एक शिक्षक होने के बाद भी, छात्रों के साथ हॉकी खेलते देखना विलक्षण अनुभव था। शिक्षक व छात्रों के बीच इस समय एक मर्यादित दूरी हुआ करती थी। उम्र के सड़सठवें वर्ष में भी मैं अपने आपको हरदा का शत-प्रतिशत वाशिंदा मानता हूँ। मैं चाहे भोपाल में रह रहा हूँ पर भोपाल में मेरे निकटतम व आत्मीय-स्वजन हरदा के ही लोग हैं, उनसे मेरा जीवंत सम्पर्क है। मैं उनसे भुवाणी बोली में ही बात करता हूँ, हरदा के वाशिंदे भोपाल में बड़ी संख्या में है। गुर्जर, मोची व नार्मदीय परिवारों के साथ मुझे यही लगता है कि मैं हरदा में रह रहा हूँ। भोपाल में हरदा के पारिवारिक संस्कारों, स्वयं व भाइयों के मित्रों व गुप्तेश्वर की मित्र मण्डली ने मुझे लगन से काम करते रहने की सोच व गुण प्रदान किये। ये ही मेरे जीवन का ध्येय व पूंजी बना हुआ है। मैंने रोजगार की तलाश व महाविद्यालीयन शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से ही भारी मन से हरदा छोड़ा था। परिवार, समाज, मित्रों, परिचितों और मोहल्ले के सुख-दुःख में साल में दर्जनों बार हरदा आना पड़ता है। जब तक जीवित हूँ हरदा से यह रिश्ता कैसे टूट सकता है ? माँ और मातृभूमि के प्रति कृतज्ञता का भाव मुझे बार-बार हरदा खींच लाता है। यह कहकर हम उपकार नहीं करते अपना धर्म व फर्ज निभाते है। हरदा से मेरा यह पारिवारिक अपनत्व बना रहेगा।

हरदा सदैव से ही चैतन्य व सक्रिय शहर रहा। घंटाघर पर 'सिल्वर कार्नर' वाले खंबे के पास एक बोर्ड टंगा रहता था, सुबह 8 बजे मन्नी बाबू उस ब्लेक बोर्ड पर समाचार लिखते । उसे सारा शहर पढ़ता था। होली की मस्ती, बैलों का रंगना और बाबूलालजी जैन के नेतृत्व में 40-50 लड़कों का समूह 'गज-गुंडी' लेकर निकल जाता, दिवाली के दूसरे दिन हरदा का ऐसा कौनसा चौराहा था जहां हमारी गज-गुंडी के धमाके न होते हों। होली के एक दिन पहले, दो तीन कि.मी. दूर से लकड़ियाँ उठाकर लाना, शमशान तक की लकड़ियाँ हम उठा लाते थे। होली का त्यौहार एक मजाक, मस्ती और आनंद के साथ आत्मीयता का प्रतीक बन जाता था। भुजरिया व दशहरे पर बड़ों के आशीर्वाद प्राप्त करके हम धन्य हो जाते थे। टेशू, गेड़ी, गुप्ती हमारे प्रिय खेल थे। ये खेल अब देखने क्या सुनने को भी नहीं मिलते। अजनाल के मगड्डो (मगर-डोह का अपभ्रंश) घाट पर दो तीन बार नहाने जाना एडवेंचरस लगता था। खेड़ीपुरा की होली ऐतिहासिक होली होती थी। दो-तीन दिन तक उसकी ज्वाला उठती देखी जा सकती थी। 10-15 दिन में उसकी आग शांत हो पाती थी।

हरदा की मूलत: कृषक अर्थव्यवस्था, उसमें संतुष्टि का भाव, किसान की सरलता ही क्षेत्र के विकास में बाधक सी बनी है। किसान, राजनैतिक षड्यंत्रों में ठगा सा जाता है। उसके श्रम और शक्ति का मूल्यांकन व आदर सही ढंग से नहीं हो पाता है। संतुलित ढंग से

उपलब्ध संसाधनों का यदि दोहन करके ध्यान दिया जावे तो हरदा का विकास कौन रोक सकता है ? हरदा हमेशा से गहरी राजनैतिक चेतना व समझ वाला शहर रहा है, हमने यहां जयप्रकाशनारायण, अशोक मेहता को सुना। मूलतः यहां समाजवादी विचार-धारा प्रबल रही। महाकौशल के अधिकांश समाजवादी विचारक हरदा से गहरे जुड़े। हम जैसे युवाओं को लच्छू कप्तान की संघर्षशीलता ने प्रेरित किया। वे हरदा की आत्मा घंटाघर से जनसमस्याओं का स्वर देकर जनता के लिए संघर्ष करते रहे।

स्व.श्री रामप्रसादजी गुहा व स्व. श्री किशन चौहान दोनों ने हमारे जीवन को दिशा व सहयोग प्रदान किया। गुहाजी मेरे सगे मामा थे पर श्रीकिशन मामा के सहयोग को भी भूला नहीं जा सकता। हमारे संघर्ष व सोच ने विकास की धारा को हर बार बाधित किया। इसकी शुरूआत तभी हो गयी थी, जब हमने श्री रामेश्वर अग्निभोज जैसे विकास पसंद नेतृत्व को पराजित किया। यही कारण रहा कि विकास यहां स्वरूप नहीं पा सका।

179, हर्षवर्धन नगर, भोपाल

चाँद की तरह देखना चाहती हूँ, हरदा को

डॉ. नीहारिका 'रश्मि'

एक बार जो हरदा में रह लिया वो अपने-आपको हरदा का वाशिंदा कैसे नहीं मानेगा भाई। फिर मैंने तो होश ही हरदा में संभाला। सर्वाधिक समय हमारा मकान नं. 08, सेठ की चाल, हंडिया बस स्टेण्ड हरदा में निकला। क्या भूलूँ, क्या याद करूँ ? अभिव्यक्ति का बहुत बड़ा संकट है। घर के पते का जिक्र किया है तो बात वहीं से शुरू करते हैं, ये वो समय था जब घर के पते से चिट्ठियों का चोली-दामन सा साथ था और चिट्ठियों से पोस्ट-मेन श्री गीते जी का। जब भी कोई चिट्ठी लाते लगभग गाते हुये सुर में आवाज लगाते, मिश्रा ऽऽऽ जी चिट्ठी आई, उनके इस पुकारने के अंदाज के हम लोग इतने आदी हो गये थे कि 'मिश्राजी' की आवाज पर हम लोग अंदर से चिट्ठी ऽऽऽ आई की आवाज भी लगाते और दौड़ भी। बाद में कभी खुद के नाम की भी चिट्ठियाँ मिलने का वो उत्साह नहीं रहा जो गीते अंकल से चिट्ठियाँ प्राप्त होने में था । गाने की बात से दो यादें और जुड़ी हुई हैं घर के सामने अन्नापुरा प्राथमिक शाला भी थी और चंद कदम की दूरी पर प्रताप टॉकीज, घर के पीछे खेत, जिनमें हरे मटर चुराकर भी खाये तथा चौकीदार की डाँट भी और इसके अतिरिक्त खेत का एक और सुख जो हमने उठाया वह कपास के कई फीट ऊँचे और गद्देदार ढेर पर कूदने का। यह सुख आजकल के बच्चों को नसीब में नहीं । हाँ तो हम गाने पर थे, अन्नापुरा स्कूल, दिन में तो दोनों शिफ्टों में गुलजार रहता छुट्टी के घण्टे और बच्चों की भीड़ से रात को जरूर वहां सन्नाटा और अंधेरा पसरा रहता था, जिसे तोड़ता था एक दीवाना। मैं उसे पागल नहीं कहूंगी। हमने कभी उसको देखा नहीं, बस रात में उसकी सुमधुर आवाज और पूरी लय में रोज गाने सुने। उसकी विविध भारती कभी बंद नहीं होती थी, खासकर हमारे सोने के पहले बिल्कुल ही नहीं। चाहे ठिठुराने वाला मौसम हो चाहे झुलसाने वाला। मुझे गाना गाने का

शौक रेडियो और उस दीवाने की बदौलत ही लगा। गानों से जुड़ी एक और अहम याद प्रताप टॉकीज, जिसने 'बहारों फूल बरसाओ' टाईप कुछ गाने रिकार्ड घिसने के बावजूद, इतने सुनाये, इतने सुनाये कि उन गानों में बाद में कोई रस नहीं रह गया। ये प्रताप टॉकीज थी जिसमें कभी कोई फिल्म फ्लॉप नहीं होती थी। प्रताप टॉकीज की याद आई तो सामने रामेश्वर होटल, उसके समोसे और चूड़ा, कभी न भूलने वाला स्वाद जाने कहाँ-कहाँ नहीं घूमे बाद में हम ग्वालियर, उज्जैन, जबलपुर, इन्दौर, बम्बई, दिल्ली कहीं के भी समोसों के स्वाद हरदा का रंच मात्र भी मुकाबला नहीं कर सकते। बात हंडिया बस स्टेंड की है तो दिनभर गुंजायमान 'आन दो-आन दो' और 'राम नाम सत्य है' जैसे मन्त्रों को कैसे भूलेंगे। नर्मदाजी जाने वाले सभी भाग्यशाली मुर्दे (सॉरी! क्योंकि जिंदे लोग भी जाते हैं नर्मदा जी नहाने) जो ढोल-ढमाके के साथ पैसे लुटाकर चिंदरा इमली तक कंधों पर और बाद में वहाँ से बस में हंडिया ले जाये जाते थे। हमारे लिये अचरज की वस्तु थे। जब व्यक्ति को पैसे की जरूरत नहीं रह जाती, तब उस पर पैसे लुटाये जाते हैं। पैसों की जरूरत तो वास्तव में हम लोगों को थी, जिन्हें जेब खर्च नहीं मिलता था। चटोरे न हो जाये इस डर से। लिहाजा हम मुर्दों पर लुटाये जाने वाले पैसे लूटने लगे। वो तो ऐसा करते हुये हमें दादी ने देख लिया और मम्मी से शिकायत करके पिटाई भी करवाई।

इसी चाल वाले घर में मैंने रंगोली बनाना सीखा। रंगोली के कारण ही मैंने रंगों से प्यार करना और उनका समायोजन सीखा और पहली बार कहानी भी यहीं लिखी। अन्नापुरा स्कूल के बगल में झोपड़ी में रहने वाली 'नाजिमा' पर, कहानी का शीर्षक भी 'नाजिमा' ही था। अपनी स्कूल की कापी में लिखी थी, जो बाद में मम्मी ने रद्दी समझ कर बुरादे की सिगड़ी में जला दी। वैसे उन्हें इस कहानी काँड का पता नहीं था। पता तो घर में तब चला, जब मैंने चुपके-चुपके कहानी लिखकर टाईप कराकर भेज दी। तब घर में सबको पता चला। जेब खर्च न मिलने की समस्या तब तक भी थी, तो जिस दिन महरी नहीं आती थी हम बरतन माँजने के पैसे लिया करते थे, मम्मी से, ब-मुश्किल आठ-आने रोज होते थे। पहली कहानी टाईप कराने में पाँच रूपये खर्च हुये पोस्टल खर्च अलग और पारिश्रमिक भी मिला मुझे 75 रू. का चेक, जिसके लिये मुझे बैंक में खाता खुलवाना पड़ा और ये सब उदारमना स्व. सत्येनकुमार की सूझ-बूझ से अपने देश की लड़कियों की स्थिति को अच्छी तरह समझते थे। उन्हीं की पत्रिका 'कहानियाँ' मासिक चयन में मेरी पहली कहानी प्रकाशित हुई थी। हरदा मेरी स्मृति में सांप्रदायिक सौहार्द्र की मिसाल के रूप में भी आता है। जहाँ नवदुर्गा की पूजा में भी कव्वाली का मुकाबला आयोजित किया जाता था और नामी-गिरामी कव्वाल बुलाये जाते थे। सेठ की चाल वाले घर में हमने यह सब खूब देखा। एक बार जब कलाकार मंडली के आने में देर हो रही थी और दर्शक बहुत बैचेन हो रहे थे तो आयोजक मुझे ही माँग ले गये मम्मी से और मंच पर माईक के सामने मुझे ही खड़ा कर दिया कि कोई भी कविता

सुनाओं, मैं भी तोता रटंत स्टाईल में शुरू हो गयी 'बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी, खूब लड़ी मर्दानी वो तो झासी वाली रानी थी'। खैर उर्दू के प्रति रूझान मुझे इसी कव्वाली संस्कृति से मिला।

हरदा छोड़कर मुझे तो इसलिये जाना पड़ा क्योंकि कोई सुयोग्य वर हरदा में नहीं मिला, न ही मेरी आजीविका का कोई प्रबंध हरदा में हुआ। हरदा कॉलेज में कुछ महीने असिस्टेंट प्रोफेसरी जरूर की, स्टूडेंट्स से सहमत नहीं थी और मैं भी कोई ज्यादा व्यावहारिक नहीं थी सो नौकरी छूट गई। अगर हरदा, आज भी वो पुराना हरदा हो तो जरूर यहाँ लौटकर बसना चाहती, पर अफसोस तथाकथित विकास ने हरदा के चेहरे पर भी दाग छोड़े हैं। बड़े शहरों की तरह हरदा की पॉश कॉलोनी में दिन-दहाड़े मर्डर हो जाते है, चोरियाँ तो इतनी कि घर सूना छोड़ना मुश्किल! खैर इस दौड़ में भी हरदा पीछे नहीं। एक समय था जब मम्मी घर में केवल कुंडी अटकाकर पूरे हरदा के गणेशजी के दर्शन कर आई थी और घर में सब कुछ सही-सलामत मिला और कहाँ अब, घर के हर कमरे में ताला लगाने के बावजूद चोरियाँ हो जाती हैं। हरदा में मेरे सामने का साहित्यिक, सांस्कृतिक, कलागत परिवेश पापा की पीढ़ी के साहित्यकार लगभग निष्क्रिय हो चुके थे या शहर के बाहर जा चुके थे। कुछ बहुत वरिष्ठ साहित्यकार थे, जो रीढ़हीन शिष्य नहीं अंध समर्थक चाहते थे और घर आकर मुझे 'गुलेरी' होने का ताना भी दे गये। लिहाजा सिर्फ हम उम्रों धर्मेन्द्र पारे 'अनिल' आदित्य गार्गव इत्यादि के साथ ही उठना-बैठना होता था। हम सबने मिलकर एक साहित्यिक संस्था भी बनाई थी 'अभिव्यक्ति।' एकलव्य की लाईब्रेरी में जरूर हमारे जैसे लोगों का आना-जाना था जिसमें कभी 'लाल्टू', 'प्रमिला कुमार' जैसे साहित्यकारों से भी सत्संग हो जाता था। सच कहें तो एकलव्य की लाईब्रेरी ने हम लोगों की साहित्यिक रूचियों को और परिमार्जित किया। कितने ही प्रकार की प्रतियोगितायें आयोजित करता रहता था, एकलव्य। एक बार मुझे कहानी लेखन में प्रथम पुरस्कार के रूप में 'चित्रलेखा' उपन्यास मिला और भी कई सारी प्रतियोगिताओं जैसे रंगोली व जी.के. टेस्ट में भी ढेर सारे पुरस्कार मिले थे, जिन्होंने मेरा 'काँफीडेंस' लेबल बढ़ाया। सच कहूँ हमारे व्यक्तित्व निर्माण में एकलव्य के माहौल का योगदान कभी भूल नहीं पाऊँगी। हरदा के ही क्या किसी भी देश-प्रदेश या शहर के विकास में बाधक तत्व वे ही होते हैं जो अपने अलावा किसी और का विकास नहीं होने देना चाहते, दूसरों के लिये हमेशा मार्ग के पत्थर बनते रहते हैं। क्या पता किस व्यक्ति के विकास से देश का कितना विकास हो। लेकिन स्वार्थी तत्व यह समझना नहीं चाहते, ऐसे तत्व हर शहर में हमेशा मौजूद रहते हैं, बस जरूरत है तो उन्हें पहचान कर नष्ट कर देने की, क्योंकि ऐसे लोग सुधरते तो कभी हैं ही नहीं। भौगोलिक या सामाजिक बाधायें कभी किसी विकास में बाधक नहीं होती, क्योंकि इनसे तो पार पाया जा सकता है, किंतु बाधक मानसिकताओं से नहीं, जो कई रिश्तों के रूप में हमारी बाधायें बनती हैं। मेरा लगभग अभी तक का आधा जीवन

खासकर बचपन हरदा में निकला, बहुत संयमित होकर भी इतना लिख दिया। विश्व मानचित्र पर अपने हरदा और हरदावासियों को चाँद की तरह चमकते हुये देखना चाहती हूँ। क्योंकि मैं मानती हूँ कि हम बढ़ेंगे देश बढ़ेगा। इस दुआ में एक दुआ अपने लिये भी है और आप सबके लिये भी ।

331, एम.आई.जी. अयोध्यानगर, भोपाल

प्राथमिक तक हरदा में पढ़ा ....

डॉ. हरि जोशी

जो जिंदगी कोरी स्लेट थी, प्रांरभिक लेखन उस पर हरदा में ही किया। मैं सन् 1954 तक हरदा में पढ़ा। म्युनिसिपल स्कूल हरदा में जुलाई 1949 में प्रवेश लिया। उन दिनों हमारे स्कूल के प्रधान अध्यापक स्व.श्री मोजीलालजी दुबे हुआ करते थे। हमें पढ़ाने वाले सादगी पसंद सभी गुरूजनों में श्री रामेश्वर शुक्ला, श्री रामदयाल दुबे, श्री पांडुलालजी तिवारी आदि थे। बहुधा धोती-कुर्ता पहनते थे। पांचवी कक्षा में अंतिम कुछ दिन, मित्तल गुरूजी की ट्युशन भी की थी। नदी किनारे हनुमान मंदिर के पास उनका निवास था, जहाँ गणित, अंग्रेजी मुख्य रूप से पढ़ाते थे। बाबूलालजी मित्तल बहुत समर्पित शिक्षक थे। पांचवी कक्षा का पर्चा शायद जिला स्तर के बोर्ड का पर्चा हुआ करता था। गणित के प्रश्न पत्र में छः प्रश्न हल करने थे। मित्तल गुरूजी ने पर्चे के बाद मुझसे पूछा कितने प्रश्न सही किये । मैंने उत्तर दिया - 'पाँच' उन्होंने मेरे गाल पर जोर से एक तमाचा जड़ते हुए कहा जो छटवां प्रश्न तू छोड़कर आया है, वह भी तुझे आता था, फिर क्यों कोशिश नहीं की। मैं गुरूजी के सामने कुछ भी कहने का साहस नहीं जुटा पाया।

जिस गांव खूदिया (सिराली) में मेरा जन्म हुआ, वहां प्राथमिक शाला भी नहीं थी, इसलिए हम चार भाइयों और एक बहिन को पिताजी ने पढ़ाई करने के लिए किराये के मकान में गढ़ीपुरा में रखा। तब मकान किराया दो रूपये प्रतिमाह था, किन्तु पिताजी को दो रूपये प्रतिमाह जुटाने में भी असुविधा होती थी। कभी-कभी तो मकान मालिक को कुछ रूपयों के बदले, एक-दो बोरे गेहूँ दे दिया जाता था। 1955 में बड़े भाई मूलाराम जोशी का विवाह हुआ था, तब घी चार रूपये सेर होता था। 1954 में जुलाई में बड़े भाई के साथ मैं भोपाल आ गया।

मुझे नदी किनारे बैठकर बहते हुये पानी को देखते रहना हमेशा से अच्छा लगता रहा है। अपने गाँव की छोटी सी नदी 'सयानी' मे मैं खूब नहाया, कभी-कभी बरसात के दिनों में अपने गांव से पैदल चलकर हम हरदा आते थे। तीन भाइयों का जो समूह चलता था, उसमें सबसे छोटा मैं था। अपने गांव खुदिया से सिराली, वहां से घोंघड़ा-घोंघड़ी, डगावां और सुखरास होते हुए हम हरदा पहुंचते थे। तब बसें नहीं चलती थी, बैलगाड़ी से यात्रा पूरी करते थे, बरसात में सम्पन्न लोग घोड़े पर चल लेते थे। हम लोग बहुधा पद यात्रा करते थे। कभी-कभी बीच की दो नदियों को पार करना होता था, घोंघड़ा-घोंघड़ी तथा माचक। क्योंकि तब कोई पुल भी नहीं था। हरदा में प्रवेश से पूर्व अजनाल पार करना होता था। कई बार बाढ़ होने पर यात्रा स्थगित कर देते थे। हमारी ममतामयी माँ एक कपड़े में दसमी और अचार बांधकर दे देती थी, जिसे हम बहुधा माचक नदी पर नहाकर खा लेते थे। गाँव से सुबह चलते थे, डगावां तक याने माचक तक आते-आते दिन में बारह बज ही जाते थे। आज जब मैं उन क्षणों को याद करता हूँ तो मुझे दो पंक्तियां अचानक याद आ जाती हैं -

नाश्ते में सूखी रोटी सेंककर जो माँ ने दी,
हर रईसी से मुझे वह मुफलिसी अच्छी लगी ।

बरसात के पड़ते पानी में खूदिया से हरदा की पदयात्रा हमने कई बार पूरी की। हरदा के म्युनिसिपल स्कूल के ग्राउंड में नाग पंचमी पर कुश्तियों का आयोजन होता था। बड़े-बड़े पहलवान, हजारों दर्शकों के सामने कुश्ती लड़ते थे। मैदान में ऊगी हरी दूब पर, रिमझिम बरसात के बीच भी कुश्ती होती थी। भींगा-भींगा मौसम और घास की गंध बड़ी सुहावनी मनमोहक होती थी, फिर सेठ श्री रामनारायण अग्रवाल आकर विजेताओं को पुरस्कार वितरण करते थे।

बात सन् 1950-51 की है, खूब पानी गिरा था, बरसात के मौसम में अजनाल नदी में भी खूब बाढ़ आ गई, तब घंटाघर के सामने के बाजार में हमने नाव चलते पहली बार देखी। हरदा के खेड़ीपुरा, घंटाघर चौक बाजार सभी जलमग्न हो चुके थे। चहुँ ओर पानी ही पानी था। बाढ़ युक्त नदी में डूंड, मरे हुए एक दो बैल-गाय, वृक्ष भी बहते हुए दिखायी दे रहे थे। तथ्य यह है कि यद्यपि मेरा घर हरदा में नहीं है, फिर भी वहां की जमीन पर पांव रखते ही मैं भावुक हो उठता हूँ । मैं वहां की सड़कों और गलियों में नंगे पांव आर्थिक अभावों के साथ घूमा हूँ। कॉपियों के पैसे नहीं होते थे तो स्लेट पर पेम से लिखते थे। मेरे जीवन की वही मजबूत नींव थी। पांच वर्ष के प्राथमिक शाला अध्ययन के बीच गोलापुरा में एक तथा गढ़ीपुरा में दो मकानों में रहे। तीन किराये के मकान बदले जिनका किराया मात्र दो से तीन रूपये प्रतिमाह होता था।

अजनाल नदी में हनुमान मंदिर के पास की पत्थर की लंबी-लंबी सीढ़ियों पर मैंने तैरना सीखा। पत्थर की सीढ़ियों पर कपड़े उतारे, नदी के तेज बहाव वाले पानी में छलांग लगाई, कुछ हाथ पांव मारे और सौ पचास फुट के बाद फिर पत्थर की सीढ़ियों पर आ लगे। इसी प्रक्रिया को कई बार पूरा किया। बाद में तो कबीट घाट पर दो-चार बार नहाने गया। कहा जाता था वहां पर गहरा पानी होता था। 1994 में प्रकाशित अपने पहले उपन्यास 'पगडंडियाँ' में मैंने बचपन की घटनाओं को ही समेटा है, जो अपने छोटे से गांव खूदिया से हरदा के बीच ही शुरू होती और समाप्त होती है। अब तो जब चाहूँ अमेरिका घूमने चला जाता हूँ, किन्तु 1954-55 में हरदा से भोपाल का किराया दो रूपये बारह आने होता था, जिसे जुटा लेने में पसीना छूट जाता था।

आर्थिक विपन्नता झेली, जीवन में कष्ट उठाने पड़े किन्तु अपने पिताजी के बताये ईमानदारी के मार्ग से नही हटा, इसीलिए भगवान ने तीनों बच्चे सुसंस्कृत, परिश्रमी और योग्य दिये। उम्र के इस पड़ाव पर आकर संतोष का अनुभव करता हूँ। भगवान ने संभवत: इस उम्र में भक्ति और आराधना करने को मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया है, अब मैं स्वास्थ्य, आर्थिक तथा पारिवारिक दृष्टि से निश्िंचत हूँ। बीच-बीच में कभी-कभी अपने विचारों को लिपिबद्ध करता रहता हूँ ।

337, न्यू सुभाष नगर भोपाल-23

हरदा, आज भी मेरा शहर

रेहाना निज़ाम

आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना,
वो डालियाँ चमन की वो मेरा आशियाना।

मुझे अपने हरदा में गुजारे दिनों के बारे में उल्लेख करने को कहा गया, जो कि जिन्दगी की आपाधापी, गहमा-गहमी में दिल-दिमाग के किसी कोने में दबकर रह गये थे। अपने लड़कपन की यादों को इतने साल बाद याद कर बड़ी सुखद अनुभूति हो रही है। बच्चों को अपने ननिहाल से बहुत लगाव होता है और वे वहाँ जाना बहुत पसंद करते हैं। बस मेरा भी यही हाल था। वैसे मेरा जन्म रायपुर (छत्तीसगढ़) में हुआ था। नाना, नानी और मामा हरदा में रहते थे, इसलिये साल में कम से कम मम्मी के साथ एक बार हरदा जरूर आते। मेरे पिता श्री उस्मान गनी साहब, डिस्ट्रिक एक्साईज आफिसर थे। उनका रिटार्यमेंट होशंगाबाद में हुआ। पापा ने स्थाई तौर से हरदा में रहने का इरादा किया। हरदा मुख्य रेल्वे लाईन पर देखा हुआ, छोटा सा शांत शहर था, उन्हें बड़े शहरों का शोर-शराबा पसंद नहीं था। हम लोग 1962 में हरदा रहने आये । हमारे रहने के लिये कुलहरदा में दो मंजिला मकान खरीदा गया। चूंकि मैं आठवीं पास करके आई थी, शास. कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में मेरा नवीं कक्षा में एडमिशन हुआ । उस समय पूरे हाई स्कूल में, मैं अकेली मुस्लिम लड़की थी। जब मैं स्कूल जाने के लिये निकलती तो लोग मुझे बड़े ताज्जुब से देखते। तीन साल मेरी पढ़ाई इसी स्कूल में हुई। उस समय ग्यारहवीं तक ही हायर सेकण्डरी होती थी। हमारी प्राचार्या श्रीमती निर्मला निगम थी। बाहर से कई टीचर स्थानान्तरण होकर हमारे स्कूल में आई पर सुश्री सरला सोकल, श्रीमती सुमन मिश्रा और सुश्री मीरा डगांवकर

(गोस्वामी) हमारी खास शिक्षिका रही, हमें तीनों साल इन्होंने पढ़ाया । सभी मैडम मुझे बहुत पसंद करती थी। मैं अपनी पढ़ाई तथा दूसरे काम दिल से करती, साथ ही उनका बहुत सम्मान करती थी। मैंने दो साल, एन.सी.सी. भी ज्वाईन की। एन.सी.सी. अधिकारी मैडम सोकल थी। वह बहुत प्रोत्साहित करती थी। एन.सी.सी. की यूनिफार्म पहनकर जब मैं अपने मोहल्ले से निकलती तो औरतें, बच्चे दौड़कर बाहर आते और मुझे कौतूहल से देखते। शकुन्तला पांडे, जो कि मुझसे जूनियर थी, लेकिन एन.सी.सी. के कारण उससे खूब मित्रता हो गई थी। हमारा केम्प सुख-निवास इन्दौर में लगा था। केम्प के दौरान मेरी तबीयत बहुत खराब हो गई। मम्मी को याद कर रोना आता था, तब शकुन ने मुझे सम्भाला, मेरी देखभाल की। मेरा हौंसला बढ़ाया और बीमार होने के बावजूद, मैं गन शूटिंग में प्रथम आई। मेरा सिलेक्शन मध्यप्रदेश के प्रतिनिधित्व के लिये हुआ, पर किन्हीं कारणों की वजह से मैं दिल्ली नहीं जा सकी। रेणुका अग्रवाल, पुष्पा डगांवकर, राजकुमारी बाफना, विभा साखरदांडे, सविता दुबे वगैरह मेरी सहपाठी रही, इनसे मित्रता भी खूब रही। हम सब मिलकर खेलकूद और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेते। मुझे गाने का बहुत शौक था। मैं अक्सर स्कूल में देशभक्ति के गीत, भजन और सुगम संगीत के कार्यक्रम में बराबर भाग लेती।

कृष्णा तिवारी (शर्मा) मेरी सबसे घनिष्ठ व प्रिय मित्र थी। वह ब्राह्मण थी और मैं मुस्लिम, हमारी दोस्ती से उसके माता-पिता को तो कुछ एतराज नहीं था, पर उनकी दादी बिल्कुल पसंद नहीं करती थी। जब वह हमारे घर आकर अपने घर जाती तो वह, उसे नहलवाती थी, तुलसी के पत्तों के पानी के छींटे देती थी। इसके बावजूद हमारी दोस्ती में कोई फर्क नहीं आया। हम लोग साथ में फिल्म देखते बड़े मजे के प्यारे-प्यारे दिन थे। उस समय सिनेमा ही मनोरंजन का खास साधन था। अभी भी कृष्णा और मैं बराबर मिलते हैं और फोन पर बात करते है। मेरे दोनों बेटों की शादी में वह भोपाल से सपरिवार आई और उसकी दोनों बेटियों की शादी में मैं भी सपरिवार गई। उसकी दोनों बेटियों ने मेरे दोनों बेटों को राखी बांध अपने भाई न होने की कमी को पूरा किया। 11 वीं के प्री टेस्ट थे, राजनीति शास्त्र, भूगोल, होम साईंस वगैरह मेरे विषय थे। सभी विषय में मुझे उच्चतम अंक आये। भूगोल, सोकल मैडम पढ़ाती थी और राजनीति विज्ञान मिश्रा मैडम । दोनों ने मेरे लिये कहा था 'ऐसा लगता है हमने सिर्फ एक ही लड़की को पढ़ाया या सिर्फ उसने ही ईमानदारी से पढ़ा है।' आज भी उनके ये प्रेरणादायक शब्द याद आते हैं। उन दिनों ऐसी कोई घटना या यादगार क्षण नहीं रहे जिनका यहाँ उल्लेख कर सकूं, छोटी-मोटी बाते रहीं जो समय के साथ बिसर चुकी हैं। मैंने 11 वीं प्रथम श्रेणी में पास की। कला संकाय में हरदा की मैं अकेली विद्यार्थी थी जो कि प्रथम श्रेणी में आई ।

जब हम यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे तब सिर्फ एक लड़कियों का सरकारी हायर

सेकण्डरी स्कूल था और एक लड़कों का था। उसमें भी बहुत अधिक विद्यार्थी नहीं होते थे। गुलजार भवन में क्राफ्ट और सिलाई की क्लासेस लगती थी, वह भी कभी-कभी। जिसमें बहुत कम ही लड़कियाँ आती। उस समय यहाँ शिक्षा, खेलकूद व दूसरी गतिविधियाँ न के बराबर थी। उस लिहाज से अब यहाँ काफी अच्छे स्कूल खुल गये हैं, और लोग दूसरी गतिविधियों में भी रूचि लेने लगे हैं। लेकिन उच्च शिक्षा के लिये अभी भी यहाँ कोई खास संस्थायें नहीं हैं। उस समय एक पॉलीटेक्निक महाविद्यालय अलबत्ता खुला था, जिसमें बाहर के काफी लड़के पढ़ने आते थे। एक आर्ट्स कॉलेज भी उन्हीं दिनों शुरू हुआ था, ज्यादातर बच्चे बाहर जाकर ही पढ़ना पसंद करते थे। 30 अक्टूबर 1967 में मेरा विवाह, इन्दौर निवासी डॉ. निजामुद्दीन से हो गया। विवाह ही हरदा छोड़ने का मुख्य कारण रहा। साल में दो-तीन बार हरदा आना रहता था क्योंकि मेरे माता-पिता यहाँ ही रहते थे। तब उन्होंने खेड़ीपुरा में घर ले लिया था। मेरा आना, चार-आठ दिन के मेहमानों की तरह होता था। मुझे आगे पढ़ने का बहुत शौक था, परन्तु शादी के पाँच-छः साल में कुछ नहीं कर सकी। इस दौरान मुझे दो बेटे फरजान और रिजवान हुये। बच्चों के कुछ बड़े होने पर पढ़ाई शुरू की, 1974 में मैंने बी.ए. द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की और 1977 में एम.ए.(इतिहास) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। इस कामयाबी में मेरे पिता, मेरे ससुर कयामुद्दीन साहब, मेरे भाई प्रो. निसार अहमद और प्रोफेसर सुशील कुमार साहब का पूरा-पूरा सहयोग रहा।

मेरे पति को राजनीति और समाज सेवा में बहुत रूचि है, इसलिये मैं भी उनके साथ इन क्षेत्रों में सक्रिय हो गई। 1981 एवं 1993 में दो बार पति मध्यप्रदेश वक्फ बोर्ड के चेयरमेन चुने गये। वक्फ बोर्ड चूंकि मुस्लिम समुदाय से संबंधित है बस इसके जरिये भी मैंने अपने समाज की सेवा करने की कोशिश की। मेरी नियुक्ति, 16 नवम्बर 1987 में मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में हुई। मैंने छः साल अपने पद की प्रतिष्ठा के अनुरूप जवाबदारी तथा जिम्मेदारी को बखूबी निभाया, तथा पद की गरिमा बनाये रखी। मेरी नियुक्ति को कुछ ही दिन हुये थे यूं तो श्री राजीव गांधी से बाद में कई बार भेंट हुई, लेकिन आज भी उनसे पहली भेंट याद आती है। भोपाल एयरपोर्ट पर राजीवजी से भेंट के लिये जाना हुआ। हम सब लाईन में खड़े थे। उनके साथ सोनिया जी भी थी। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल जी वोरा सबका परिचय करा रहे थे, उन्होंने मेरा भी परिचय राजीव जी से कराया। मैंने फूल-माला देना चाही पर वह हार मेरे पर्स में उलझ गया। उन्होंने माला लेना चाहा पर नहीं ले पाये, तब जोर से हंसकर मुझे कहा 'आपके पास हार ज्यादा खुश है इसलिये मेरे पास आना ही नहीं चाहता।' यह कहकर बड़ी प्रसन्नचित मुद्रा में देखा, उनके देखने का अंदाज आज भी नहीं भूली हूँ। उनका वह चेहरा अक्सर याद आता है। ईश्वर की कृपा से मेरा पारिवारिक जीवन सुखद है। मालिक ने मुझे मान-सम्मान, शौहरत सब दिया है। मैं अपने पति, बेटों फरजान, रिजवान और

बहुओं गुलशाना तथा अर्शी के साथ खुशखुर्रम हूँ। साथ में बोनस में दो प्यारी-प्यारी पोतियाँ, रोजल और महक और दो प्यारे-प्यारे पोते अशहाद और रोशीन हैं। अभी भी मैं अपने पति के साथ राजनैतिक और सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेती रहती हूँ। अगर मैं अपने समाज तथा प्रदेश के लिये और भी कुछ कर सकूं, यह मेरा सौभाग्य होगा।

मेरे मामा श्री सैय्यद मोहसिन अली थे। 1976 से 1987 तक दो बार हरदा नगरपालिका के पार्षद का चुनाव जीते तथा उपाध्यक्ष बने। वह अपनी पार्टी के कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार कार्यकर्ता थे। हरदा से मुझे अभी भी उतना ही लगाव है जितना पहले था। आज भी हरदा मेरा शहर है, भले ही यहाँ स्थाई तौर पर ज्यादा रहना मुश्किल है, क्योंकि मेरे माता-पिता तो अब रहे नहीं। मामा का लड़का जावेद पटेल है, जिसके यहाँ कभी-कभी आना होता है। पर दूर रहकर भी मैं हरदा वालों और हरदा के लिये कुछ कर सकूं, यह मेरी दिली तमन्ना है, मुझे मौका मिलेगा तो मैं कभी भी गवाना नहीं चाहूंगी। अभी भी सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक उन्नति हरदा की जैसी होना थी हुई नहीं उसके लिये काफी गुंजाइश है। यहां का मुस्लिम समाज हर दृष्टि से पिछड़ा हुआ है, शिक्षा की कमी है, जिससे जागरूकता नहीं है। सरकार ने कई अच्छी-अच्छी योजनायें दी है। सर्व शिक्षा अभियान चलाया है। लेकिन जानकारी नहीं होने की वजह से लोग इसका लाभ नहीं ले पाते है । इसलिये पढ़े लिखे जागरूक नागरिकों को आगे आना चाहिये। जिससे शासन को सहयोग होगा और योजनाओं का क्रियान्वयन सुचारू हो सकेगा। यहाँ छोटे-छोटे धंधे करने वाले लोग हैं उन्हीं के रोजगार को आगे बढ़ाने के लिये सही और उन्नत तकनीकी शिक्षा देने के लिये सरकार तथा नागरिकों द्वारा छोटे ट्रेनिंग सेन्टर खोले जा सकते हैं। शासन की अल्पसंख्यक तथा पिछड़े वर्गों के लिये शिक्षा रोजगार, ट्रेनिंग के लिये बहुत बढ़िया योजनायें है, जिसके द्वारा आगे बढ़ने में पूरी सहायता मिलती है। उसका लाभ लिया जा सकता है। क्योंकि कोई भी समाज या शहर तभी प्रगति कर सकता है, जब वहाँ के बाशिन्दे उन्नत और प्रगतिशील हो। तकनीकी महाविद्यालय खोलने की पहल हो, ताकि यहाँ के बच्चों को बाहर जाकर शिक्षा ग्रहण करने की जरूरत न पड़े। एक-दो बड़ी इण्डस्ट्रीज और कम्पनी की शुरूआत हो जिससे यहाँ के विद्यार्थी, बच्चों और दूसरे लोगों को रोजगार के लिये हरदा छोड़कर बाहर जाना न पड़े। इसके लिये यहाँ के समृद्ध और अनुभवी नागरिकों को सहयोग देना जरूरी है। यहाँ के लोगों के ही द्वारा हरदा की उन्नति और विकास की कोशिश सम्भव हो सकती है।

मैं कामना करती हूं कि मेरा शहर खूब बढ़े, तरक्की करे यहाँ के बाशिन्दें हर दृष्टि से उन्नति कर हरदा की खास पहचान बनायें ।

शुभकामनाओं सहित

15, बम्बई बाजार, इन्दौर

वह हरदा ही था

चतुर्भुज काबजा

किसी भी नगर की पहचान, उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से होती है। वह हरदा ही था जिसनें मुझ जैसे पॉलिश करते बच्चे को प्राचार्य पद तक पहुंचाया। हरदा मेरे लिए एक महान् पावन-तीर्थ है। वह मेरी सांसों में बसा है। सन् 1945 से 1958 तक मैं रामलालजी सोनकर और गांगला वाले पटेल, हमीद भाई के सहारे भूख व गरीबी का सामना करता रहा। मैट्रिक पास की और रेल्वे स्कूल खण्डवा में प्रायमरी स्कूल शिक्षक हो गया। मेरे प्रिय शिक्षकों में श्री गेंदालाल छलोत्रे, दीनानाथजी अग्रवाल, दीक्षितजी व पाण्डेजी प्रमुख थे। मित्रों में प्राणेश अग्रवाल, सुन्दरलाल सोनवाल, अरविन्द मीरानी, श्रवण दीपावरे प्रमुख थे। रेल्वे स्कूल में व्याख्याता होने के कारण मैंने देश के कई-कई नगरों का भ्रमण किया पर हरदा की आत्मीयता, स्नेह और सहयोग भावना मुझे अन्य कहीं देखने को नहीं मिले।

हरदा की कई स्मृतियां हैं, जिन्हें चाहकर भी विस्मृत नहीं कर पाता हूँ। बात सन् 1946 की है, जमादारों की जंगी हड़ताल थी। हम छोटे-बड़े सभी छात्र पाखानों से मैला निकालकर तगाड़ियों में लाते और प्रो. महेशदत्त मिश्र जैसे कई नेता उसे उठाकर मैला-गाड़ियों में डाल देते, उस समय मदनमोहनजी जोशी जैसे छात्र-नेता इस कार्य में हमारा मार्गदर्शन करते। दूसरा संस्मरण है जब मैं कक्षा सातवीं का छात्र था मैंने महेशबाबू को सूचना दी। उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कैलाशनाथ काटजू तक सिफारिश की व मुझे छात्रवृत्ति दिलवाई पत्र लिखने पर राज्यपाल, श्री एच.व्ही.पाटस्कर तक ने स्कूल के पते पर आर्थिक सहायता भेजकर, बुरे दिनों में मुझे सहारा दिया। हाईस्कूल में दुर्घटनावश जब मेरी अंगुली कट गई तो वहां के शिक्षकों ने मिलकर, डॉ. साने से मेरा इलाज करवाया। आदरणीय

महेशबाबू ने अपने स्नेह व सहयोग भाव से शिक्षकों को प्रेरित किया और वे मेरी सहायता परिवार के सदस्य की तरह करते रहे। हरदा मेरे स्पंदनों में समाया है। सेवानिवृत्ति के बाद हरदा बसना भी चाहा था, पर स्वास्थ्य खराब रहने व बेटियों की जिद के कारण मुझे झुकना पड़ा और इटारसी में बसा।

हरदा कलमकारों सृजनधर्मियों की भूमि है। सर्वश्री माणिक वर्मा, अजातशत्रु, प्रेमशंकर रघुवंशी, श्री जी.एस.जोशी और डॉ.धर्मेन्द्र पारे उसी मिट्टी के रतन है। नीम के पेड़ों से यह भरा नगर सामाजिक घनिष्ठता व सामाजिक सरोकारों के लिये प्रसिद्ध है। मैं दिन में पिताजी के साथ फल बेचता, सब्जियां बेचता, मैंने ट्रेन में मूंगफली बेची। मेरे संघर्ष के बुरे दिनों में दीनानाथजी अग्रवाल व लोकरे सर ने मुझे शिक्षा दान देकर मेरे जीवन को जो दिशा दी वह मेरे जीवन की सबसे बड़ी पूंजी है। 'अनुभव और विचार' पुस्तक में मैंने हरदा से संबद्ध लेखों को संकलित किया है। हरदा साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सुरूचि-सम्पन्न शहर है, स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में हरदा ने अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराई है हरदा की सामाजिक चेतना, स्वतंत्रता संग्राम में सक्रियता, साहित्यिक समझ सब के सब रेखांकित करने योग्य हैं ।

७१ बी शिवराजपुरी, इटारसी

वजूद का हिस्सा है, हरदा

डॉ. ओ.पी.बिल्लौरे

हरदा से दूर रहनें वालों के दर्द को शब्दों में बयान करना मुश्किल है । जीवन के पैंतीस बरस मैंने हरदा में गुजारे, हरदा हमारे वजूद का हिस्सा है। बात 1953 की रही होगी, जब पिताजी 'सिवनी-मालवा' से हरदा आ गये थे। हरदा में हमारे रहने के ठिकाने बदलते रहे क्योंकि घर किराये के थे। आज जहां सेन्ट्रल बैंक है, शुरूआत वहीं से हुई, पारे डेंटिस्ट का मकान, बोहरा मस्जिद के पास, परूलकर बाड़ा व गोलापुरा में डॉ.लक्ष्मीनारायण का मकान ये सब हमारे ठिकाने रहे। नारायण टॉकीज के पास, फरहत सराय के पीछे का 'लाल स्कूल' मेरी पहली पाठशाला थी, इसे तब मानपुरा स्कूल कहा जाता था। अब यहां मिडिल कक्षायें व ऊर्दू स्कूल संचालित है। हरदा का पहला दिन मुझे अच्छी तरह याद है, पिताजी पहले नगरपालिका स्कूल ले गये वहां 'तिवारी गुरूजी' स्कूल के बाहर टेबल लगाकर बैठते थे, उन्होंने मेरा नाम लिखा। वहां से हम मानपुरा, लाल स्कूल गये, वास्तव में उस दिन पिताजी मुझे स्कूल दिखाने ले गये थे पर मैंने ज़िद की, कि पढ़कर ही घर जाऊंगा। पिताजी ने घर से बस्ता लाकर दिया, मैं उस दिन बहुत खुश था। ये स्मृतियां आज भी मनो-मस्तिष्क में ताजा है। श्री कल्लूसिंह वर्मा जमानी (सिवनी मालवा) मुझे बड़े मनोयोग से पढ़ाते, हम गांधी टोपी पहनकर स्कूल जाते, सूत कातते उन्हीं दिनों में बहुत बीमार पड़ा तो डॉ. एच.पी.बंसल व डॉ. रामप्रसाद श्रीवास्तव ने मेरा ईलाज किया, मैं स्वस्थ्य हो गया। स्कूल की बात करते-करते मुझे याद आ जाते हैं, पपिंजन, घंटाघर, नद्दी, पील्याखाल, टोंढाल, कचेरी, जीजलबाई धरमशाला, चनेवाला-दादा, शैतानसिंह कुल्फी वाले। मुझे याद जा जाती है टिमरनी जाने वाली बसें, प्रताप टॉकीज की गन्नें की मधुशालायें, हण्डिया रोड का हनुमान मंदिर।

आज का पोलीटेकनिक मैदान हमारा 'डायमंड प्ले ग्राऊंड' हुआ करता था। भवन वहां बाद में बना। मित्रों में ब्रजमोहन, मोहन सरदार, संतोषसिंह (लल्लू) हेमन्त शर्मा, मना उपाध्याय, सतविन्दर, रवीन्द्र भागवत, अकील हम सब जिगरी दोस्त थे। महेन्द्र मुझे अच्छा लगता था क्योंकि वह सायकल चलाने देता। मैं प्रकाश शर्मा को गप्पें बनाकर सुनाता। प्रायमरी और मिडिल स्कूल के सभी शिक्षक सादगी की मूर्ति थे। श्री दुल्लीचन्द शर्मा, मोहम्मद अली सर, श्री उज्जैनकर, श्री एन.पी. चौबे, श्री दौलतसिंह ठाकुर, श्री दशरथ दीक्षित, लल्लू सर आदि। पिताजी और ठाकुर सर के बीच उधारी का 2-2 रू. का लेन देन होता, पिताजी से ठाकुर सर 2 रू. ले जाते व तनख्वाह पर बड़ी तत्परता से लौटा जाते, ऐसी मासूमियत व सरलता अब कहां बची है। हाईस्कूल में तिवारी सर (व्ही.के.टी व एन.पी.टी.) गोपीकृष्णजी जोशी, टिकलकर सर, और विश्नोई सा. नें हमारी नींव मजबूत की। शिवराज सर ने कबड्डी की नामी टीम तैयार की, जिसने हरदा का नाम रोशन किया। शिवराज सर के लिए मेरा अलग आदर भाव है। वे बहुत अच्छे धावक भी थे।

एक-दो वर्ष भारतीय खाद्य निगम उज्जैन के बाद मैंने भारतीय स्टेट बैंक ज्वाईन कर लिया, हटा (दमोह) के बाद मैं हरदा आ गया, फिर हरदा में 8-9 साल रहा। जब स्थायी घर बनाने की बात आयी तो इन्दौर में घर बनाने के लिए नैतिक बल दिया हरदा वालों ने ही। अशोक छलोत्रे, लोकेश भैया, मंजू जीजी के कारण मैं यह कार्य कर पाया। अवकाश ग्रहण करने के बाद अब मुझे खटकता है, मैं असमंजस में हूं कि मैं यहां क्यों हूँ ? 2009 में मैंने हरदा में फिर कोशिश की, हरदा के मेरे आत्मीयजन जानते हैं कि मेरी दुनिया मध्यम वर्ग की कस्बाई दुनिया है। मैं औपचारिक संसार में ज्यादा एडजेस्ट नहीं हो सकता, हरदा में मुझे जो प्रारंभ में संस्कार मिले वे मुझे चमकीले औपचारिक संसार से बचाते हैं। मैं अच्छा पाठक-श्रोता व दर्शक रहना चाहता हूं।

भाई मना (नर्मदाप्रसाद उपाध्याय) के ललित निबंध, व अजातशत्रु के दार्शनिक चिन्तन का रसास्वादन करता हूँ। ये मुझे अपनी जड़ो की तरफ लौटनें के लिये बैचेन से कर देते हैं। मेरे निकटतम परिजन इस बैचेनी को महसूस भी करते हैं। अनेक बड़े चिन्तकों, संतो और कवियों को हमनें हरदा में सुना है। सर्वश्री नीरज, सोम ठाकुर, शैल चतुर्वेदी, ओमप्रकाश आदित्य, जैमिनी हरियाणवी, शरद जोशी और अपने माणिक वर्मा। माणिक दादा की ये पंक्तियां 'सुबह की चंपई धूप तुम्हारा मूख चूमनें निकली है' कई साल मेरी कापी पर लिखी रही। आचार्य तुलसी, किंकरजी, लक्ष्मण चैतन्यजी को हमनें हरदा में सुना। हेमन्त शर्मा की माँ स्व. श्रीमती शकुन्तला शर्मा में मैंनें अपनी माँ का निश्छल रूप देखा। मैं उनके पास बैठकर आत्मविभोर हो जाता। श्री जयप्रकाश मेहर (कैलाश भैया) भाई, सुनील बागरे और इन्दौर में भैया लोकेश अग्रवाल, मुझे हरदा का ही बनाये हुये हैं। उनकी आत्मीयता व स्नेह

कैसे भूला जा सकता है ? मैं आजादी के बाद जन्मा, इसलिये स्वतंत्रता आंदोलन की गाथाओं और राष्ट्रभक्ति के माहौल को गहरे से अनुभव किया । आज का समय बहुत अच्छा है, लगता है हाथ से छूटकर कुछ, बहुत दूर जा रहा है। इसे रोकना मुश्किल लगता है। अब तो चिंता यही है कि कुछ अच्छे रंग लेकर, कुछ नया रचा जाए, जटिलतायें जड़तायें टूटें, पर यह क्या इतना आसान है ? अब मन करता है हरीश पेन्टर फिर शिव को श्रृंगार दें। अखाड़े निकलने लगे, 'डोलग्यारस' पर वैसा ही हुजुम उमड़ने लगे, श्याम पैंटर किसी पोस्टर को जीवंत करें, मेरा प्रिय सखा रवीन्द्र भागवत कोई नई रंगोली रचे। कल की सुवास के आने का हम मिलकर उपक्रम करें.. ।

भाई अनिल शुक्ला, तुम भी लौट आओ, हरदा .. खिड़कीवाला। देखो अच्छा लगेगा।

198, डी.एच.सेक्टर. स्कीम नं. 74, विजयनगर, इन्दौर

और मैं बार-बार लौट आता हूँ, हरदा

डॉ. मंगेश उपरीत

हरदा मेरा नगर है, इसनें मेरे व्यक्तित्व का विकास किया है। मैं हरदा 1940 से 1956 तक रहा । मेरा प्रारंभिक बचपन श्री निलोबाजी सराफ के घर के पास बिल्लौरेजी के मकान में व बाद में चांडक चौराहे पर, इन्दौर रोड (हंडिया रोड) के अपने वर्तमान पैतृक निवास में हम रहे। प्रारंभिक से हाईस्कूल तक की शिक्षा, मैंने लाल स्कूल (फरहत सराय के पीछे) एवं शास. हायर सेकण्डरी स्कूल में प्राप्त की।

अपने हरदा की प्रारंभिक 16 वर्षों की स्मृतियों को जब खंगालता हूँ तो हरदा की कस्बाई बसाहट व ग्रामीण सहजता बार-बार स्मरण हो आती है। कसेरा मोहल्ला, जहां कसेरों के बर्तनों की ठक्-ठक् की आवाज, गाडरी मोहल्ले की नितांत किसानी जीवन शैली, नार्मदीय बहुल खेड़ीपुरा, गोलापुरा। नदी में नहाना व बैलगाड़ियों की यात्रा सब के सब बार-बार याद आ जाते हैं।

हॉयर-सेकेण्डरी परीक्षा पास करके मैं उच्च शिक्षा के लिए जबलपुर आ गया, वहीं इंजीनियरिंग परीक्षा पास की और नौकरी करने लगा, पर हरदा कभी छूटा नहीं। मुझे याद नहीं कि हमनें दीवाली हरदा से बाहर मनाई हो, यह क्रम आज तक चला आ रहा है। दीपावली पर सभी छः भाई एकत्रित होते हैं। दीपावली, हरदा में जैसे एक उत्सव से महोत्सव बन जाती है। हरदा में लम्बा ग्रीष्म-अवकाश अब भी हमारे लिये गर्मी की छुट्टी ही है। हरदा आना किसी अवसर की मांग नहीं करता। कई बार तो महीने में दो-दो रविवार मेरे हरदा में बीतते रहे हैं। विभिन्न नगरो में हम नौकरी करते रहे, पर हमारा हरदा आना पिताजी को अच्छा लगता था। अब माँ का स्नेह हमें सहसा खींच लाता है। हरदा में रहना और रहकर लौटना मुझे तरोताजा कर देता है।

मेरे हरदा में, हमारी दिनचर्या विशेष ढंग से शुरू होती है। सब्जी बाजार में हम थैली लेकर सुबह ताजी सब्जियां लेने जाते, किराना बाजार से किराना खरीदते। वर्षा के दिनों में छाते की जगह लोगों को वारदानों की घुंघटी ओड़े देखना सुखद लगता था। एक रूपये के सौ आम व सौ पर पांच आम मुफ्त, कैसे भूला जा सकता है ?

हरदा नियमित कला गतिविधियों का केन्द्र रहा है । रामनारायण सेठ द्वारा कुश्ती प्रतियोगिताओं का आयोजन, जब्बार की हॉकी, पुलिस थाने पर नारेबाजी। मैं उन दिनों पिताजी के साथ प्रात: 9:00 बजे कचहरी चला जाता था। मजिस्ट्रेट द्वारा अपराधियों को छड़ी से पिटाई की सजा देना, जजों का सायकल से आना और चपरासी का सायकल संभालना। हरदा में पहला रिक्शा आने पर घंटाघर पर उसका प्रदर्शन, वे घटनायें है जो मुझे बार-बार याद आ जाती हैं ।

स्कूली दिनों में श्रीराम भाऊ जी शास्त्री का हिन्दी पढ़ाना और बच्चों को अक्षरश: याद हो जाना, गवई सर की संस्कृत, हरीश केकरे का गोवामुक्ति आंदोलन में जाना, प्रमोद लोकरे का इंजीनियरिंग का आकर्षण छोड़कर, 'डेयरी टेक्नोलॉजी' कोर्स में प्रवेश लेना, वे विचित्र घटनायें है जो मुझे सदैव सोचने पर मजबूर करती हैं और मैं हरदा बार-बार लौट आता हूँ। अब मैं भोपाल सेटल हो गया हूँ। हरदा का भी विस्तार हो गया है। हमारे बचपन में आल्हा सुनना, नौटंकी देखना, टूरिंग टॉकीज व सर्कस ही मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। बड़ा मंदिर, धार्मिक प्रवचनों व आयोजनों का केन्द्र था। हरदा की मिट्‌टी उपजाऊ है, कृषि यहां की आजीविका का प्रमुख साधन है। कृषि पर आधारित शिक्षा और प्रशिक्षण, हमारी महत्वपूर्ण आवश्यकतायें है। यदि हरदा के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे लोग गुजरातियों से प्रेरणा लेकर, नगर के लिए काम करें तो हरदा मिनी गुजरात बन सकता है, आवश्यकता समर्पण की है। हरदा के लाख के कलाकारों की प्रसिद्धी, अब कमजोर हो रही है। उसके संरक्षण की आवश्यकता है।

हरदा एक कस्बाई बसाहट वाला पारिवारिक नगर कहा जा सकता है। यहां अब महानगरीय सभ्यता आकार ले रही है, । यहां कभी शादी और समारोहों की पंगत (भोजन), सड़कों पर होती थी। होटल में जाना अच्छा नहीं माना जाता था, फिर भी बड़ा मंदिर का कलाकन्द, जलेबी आज भी याद आती है। स्व. रामेश्वर अग्निभोज का मंत्रित्वकाल, सुखरास का डाका, मोटर व कार को चलाने के लिये 'गेरना' शब्द का उपयोग, जो परंपरागत रूप से बैलगाड़ी चलाने के लिए उपयोग होता रहा। घंटाघर व बाबूलाल, हरदा की प्रायवेट विद्युत सप्लाय कम्पनी और म.प्र. की सबसे महंगी बिजली, सबके सब मैं चाहकर भी भूल नहीं पाता हूँ। एक घटना जो हम सबके लिये प्रेरणा हो सकती है, 1947 में सिंधियों का हरदा में सेटल होना। विभाजन की त्रासदी झेलते हुए हमारे सिंधी भाइयों, बच्चों, बूढ़ों, महिलाओं ने जिस तरह परिश्रम करके, सिलाई करके, अपना मुकाम बनाया वह उनकी प्रगति का कारण है। ये विकास की पहली शर्त है कि हम अपने कार्य के प्रति ईमानदारी, समर्पण से सहयोग भाव से लग जायें तो फिर प्रगति को कोई नहीं रोक सकता सिंधी भाइयों का उदाहरण हमारे सामने है ।

ए-134, शाहपुरा, भोपाल

हमारा शांतिप्रिय शहर : हरदा

भगवानदास मंत्री

यह बात 1948 की रही होगी, जब मेरे पिताजी स्व. द्वारकाप्रसादजी मंत्री उज्जैन से अपना व्यापार समाप्त कर हरदा आये। हमनें हरदा में मेन रोड पर अपना व्यापार रामनारायण सेठ के किराये के घर में प्रारंभ किया। उस समय निवास भी उसी घर में था। मैं तब अपने काका श्री जमनाप्रसादजी मंत्री के यहां रोलगाँव में रहकर, वहीं प्रायमरी स्कूल में पढ़ता था। कक्षा चौथी पास करके मैं हरदा आया, तब मिडिल स्कूल प्रांगण में ही छोटा सा प्रायमरी स्कूल भी था। तब हम शिक्षक को 'पंडितजी' कहते थे। उस समय बड़े मंदिर के सामने 8-10 हलवाईयों की दुकान थी, ये दुकानें एक कतार में थी। सीतारामजी हलवाई के यहां लोटे में दूध मिलता था, रामदयालजी हलवाई की हंसी दूर तक सुनी जा सकती थी। तब कचौरी एक आने में, रबड़ी डेड़ आने छटाक एवं जलेबी एक आने छटॉक मिलती थी। लक्ष्मीनारायण हलवाई की कचौरी तब प्रसिद्ध थी । हमारे मोहल्ले का नाम गाँधी चौक था, पर टॉउन हॉल के पास रामनारायणजी सेठ के सामने, यह ज्यादा प्रसिद्ध पता था। मिडिल स्कूल में मेरी पढ़ाई शुरू हुई तब दुलीचंदजी शर्मा हेडमास्टर थे, मोहम्मद अली सर, जाकिर अली सर, श्री एन.पी.चौबे, एन.एम. गबई, दीक्षितजी हमारे शिक्षक थे। श्री मार्कण्डेयजी भी कुछ दिन रहे वे 'अलाउद्दीन और उसका चिराग' हमें सुनाया करते थे। मिडिल स्कूल की पढ़ाई करके मैं जब हाईस्कूल में आया तब वहां श्री एन.पी.तिवारी, व्ही.के. तिवारी, श्री काशीराम विश्नोई, श्री एम.आर. लोकरे, श्री बी.सी.लोकरे एवं श्री डी. एन. अग्रवाल हमारे शिक्षक हुआ करते थे। पहले श्री गार्गव बाद में श्री गौर हमारे प्राचार्य बनें। उस समय के हमारे मित्र अधिकतर डॉक्टर, इंजीनियर व प्रोफेसर बने, जिसमें श्रीराम शर्मा, डॉ. रवि अग्रवाल, डॉ.फैयाज हुसैन, डॉ. रियाज हुसैन, डॉ. लक्ष्मीनारायण राठी, श्री

प्रेम चौरे प्रमुख हैं। 1935 में मैं हरदा से वर्धा चला गया, वहां मेरा दाखिला स्वालम्बी विद्यालय में हो गया। हम एक बार जब सेवाग्राम के भ्रमण के लिये गये भोजन आदि के बाद वहां के कर्मचारी ने हमारा परिचय पूछते हुए कहा, कौन कहां-कहां से आया है ? जैसे ही मैंने कहा मैं हरदा म.प्र. से हूँ तो कर्मचारी ने तपाक से कहा 'दादाभाई नाईक का हरदा ...' मुझे गौरव का अनुभव हुआ कि हरदा महान् विभूतियों का शहर है। जिनके नाम से इसकी पहचान है। वर्धा से जब मैं हरदा लौटा तो हाईस्कूल बोर्ड-2 भागों में बट गया था। पहला दसवीं बोर्ड और दूसरा ओल्ड मेट्रिक, ग्यारहवीं बोर्ड, जिसमें श्री विष्णु राजोरिया, श्री विष्णु कौशिक आदि विद्यार्थी थे। उन्होंने उस समय विद्यालयीन पत्रिका निकालकर उसका संपादन किया था। यही नहीं तत्कालीन मुख्यमंत्री को टूटी कुर्सी पर बैठाकर शाला की समस्यायें बताई तब स्कूल में सुधार हुआ। हरदा के उस समय के सभी मित्रों का जीवन यशस्वी हुआ। हरदा के इन मित्रों से मिलकर हरदा की ऊर्जावान मिट्टी पर गर्व होता है ।

एकबार जब हम कलकत्ता प्रवास पर थे तो हावड़ा स्टेशन के पास हमने एक धर्मशाला का पता जानने के लिए कार रोकी, कार वाले ने पूछा ' आप कहां से आये है ?' हमने बताया कि हरदा से, तो उन्होंने कहा कि 'अरे हरदा का तो मैं भी हूँ, यहां एक कंपनी में मैनेजर हूँ। ' वे हमें पहले धर्मशाला ले गये फिर अपने घर, मुझे लगा जैसे में हरदा में हूँ। हरदा आत्मीय लोगों का शहर है। शिवपुरी के वी.टी.पी. इन्टर कॉलेज में एडमिशन के बाद मुझे कमरे की जरूरत थी, मैं वहां श्री एन.पी. नैय्यर से मिला जो शायद संगीतकार ओ.पी. नैय्यर के निकटस्थ परिजन थे, उन्होंने पता-परिचय पूछा, मैंने उन्हें जानकारी दी। नैय्यर साहब ने कहा कि हमारे एक भाई इटारसी में डॉक्टर है, उनके एक मित्र हरदा में रहते हैं, वहां मेरे डाक्टर भाई आते-जाते रहते हैं और उन्होंने कॉलेज के पास ही कमरा दिला दिया। हरदा कचहरी के सामने एम.सी.सी. (महाराष्ट्रीय चिल्ड्रन क्लब) में आदर्श बालक मंदिर का खेल मैदान है। लंबे समय तक यहां खेल गतिविधियों का संचालन श्री शांताराम नाईक काका ने किया। खेल की नियमित गतिविधियों के साथ यहां प्रार्थना भी होती थी। हरदा की कबड्डी की धाक हरदा से बाहर भी थी, जिसमें हमारी स्कूल के छात्र मदनलाल नंदवाना (मदन मोटू) हुकुम पहलवान, बैजनाथ सोनकर, मदनलाल शर्मा (गोलापुरा) एवं अन्य खिलाड़ी प्रसिद्ध थे।

हरदा एक शालीन व शांतिप्रिय शहर है। कई गंभीर मसलों पर जब सारे देश में उथल-पुथल हुई, झगड़े हुए पर हरदा शांत रहा यहां सौहार्द्र बना रहा। यदि ऐसे अवसर आये भी तो शहर के बुजुर्गों, स्व. चंपालाल सोकल, चांदरतन बाहेती, हॉजी बाबा, मोहम्मद अली सर बाद में हाजी बजीर सेठ ने नगरपालिका या अन्य स्थान पर बुलाकर, अपने-अपने समुदाय के युवकों को समझाया, डांटा और हरदा एक शांत शहर बना रहा।

हरदा सदैव ही सक्रिय शहर रहा। हरदा में साहित्यिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक व मनोरंजन की गतिविधियां चलती रही हैं। भागचंद सेठ (श्रीराम होटल के) पीछे गूंगी फिल्मों (मूक फिल्मो)के प्रदर्शन की टॉकीज बनी। बोलती फिल्मों का दौर 'आलमआरा' से शुरू हुआ, तब श्री बाबूलालजी अजमेरा (माहेश्वरी) ने श्रीकृष्ण टॉकीज शुरू की। इसमें 'राम-राज्य' फिल्म लगभग 6 माह चली। मैं भी तब रोलगाँव से अपने काकाजी के मित्रों श्री सुदामा महिवाल, श्री सत्यनारायण शर्मा (मांदला), श्री रमेश सेठ (धौलपुर)के साथ बैलगाड़ी से रोलगाँव से हरदा फिल्म देखने आया करता था। इतनी दूर की यात्रा बैलगाड़ी से करने के लिये बैलों को अलसी के लड्डू, घी-गुड़ आदि खिलाकर तैयार किया जाता था ।

हरदा में कवि-सम्मेलन व मुशायरों का आनंद समान रूप से लिया जाता था। हिन्दू-मुस्लिम व अमीर-गरीब का भेद हरदा में कभी नहीं रहा। दशहरा-ईद की तैयारी हिन्दू-मुस्लिम युवक एक साथ मिलकर उत्साह से करते थे। कभी उनके बीच भेदभाव नहीं रहा। हरदा की पारिवारिकता बनी रहीं। विभिन्न धर्मों के त्यौहार जब पास-पास होते हैं तब तनाव व चिन्ता पैदा होती है पर हरदा की परम्परा बिल्कुल अलग रही। यहां ये त्यौहार समरसता का भाव लेकर आते हैं।

हरदा सुरूचि सम्पन्न शहर रहा है, कुछ लोग शिक्षा, साहित्य व धार्मिक आयोजनों में सदैव विशेष भूमिका निभाते रहे। श्री हरनारायण 'मामा', मामा उनके नाम के साथ जुड़ा था, उनका उपनाम (सरनेम) किसी को नहीं मालूम। हरदा में कुछ नाम जो खूब चर्चिच हुए, पर यह नाम कैसे बने, कोई नहीं जानता। जैसे श्री विजयकुमार तिवारी (व्ही.के.तिवारी) को व्ही.के.टी., श्री चम्पालाल सोकल के साथ मामू, मोहम्मद हाजी हुसैन के साथ 'बाबा', मो. अबरार हुसैन के साथ 'मामू' ये नाम खूब चर्चित भी रहे। हरनारायण मामा, नारायण टॉकीज के मैनेजर थे। वे सुबह उठकर नारायण टॉकीज के कुएं पर, सनलाईट साबुन, टिनोपाल की शीशी और सरसों का तेल, साथ लेकर देखे जा सकते थे। उनकी पत्नि की मृत्यु हो गई थी। मामा साबुन लगाकर घंटों कपड़े धोते, कसरत करते। कई प्रसिद्ध दंगलों के वे निर्णायक रहे। उनकी सफेद वेशभूषा, काली रौबदार मूंछे, उनके व्यक्तित्व को निखारती थी। हरदा में अनेक लोग थे जो कमाई-धमाई के चक्कर से अलग खुद मस्त रहते थे। हरनारायण मामा को डोलग्यारस पर, शिव के रूप में नृत्य करते देखना एक अलग अनुभव था। उनके साथ इन्दर खलीफा भूत-बैताल का रूप बनाकर नृत्य करते थे। वे जीवन भर अपने ढंग से जिये। उन्हें जीवन से कभी शिकायत नहीं रही वे सदैव हंसते मुस्कुराते रहे।

श्री अबरार मामू सभी संगठनों समितियों से जुड़े रहे। हाजी बाबा, मोहसिन अली सा., मोहम्मद अली सर, यहां के सामाजिक जीवन में ऐसे घुल गये जैसे दूध और मिश्री।

इन सभी का शहर में बड़ा आदर था । इनकी सरलता ही इनकी पहचान बनी। हॉकी, क्रिकेट, फुटबाल कोई भी सांस्कृतिक आयोजन कवि सम्मेलन हो या मुशायरा, अबरार मामू के बिना पूरे नहीं होते थे। कई यात्राओं के संस्मरण अबरार मामू के साथ के, नगर के कई लोग सुनाते मिल जाते हैं। झेलम दुर्घटना में उन्होंने हिन्दू व मुस्लिम धर्मावलंबियों का सहयोग व मृतकों का अंतिम संस्कार अपनी-अपनी रीति के अनुसार करवाने में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

हॉजी बाबा हिन्दू-मुसलमान, गरीब-अमीर सभी के 'बाबा' थे। उनका सभी खूब सम्मान करते थे। वे कहा करते थे 'हर मनुष (मनुष्य) हर जिनावर (जानवर) खुदा का है, उसकी खिदमत करना हो, मेहर पाना हो तो दीन-दुखियों की वक्त बेवक्त अपने से जैसी बने, मदद करते रहना चाहिए। भाया, मेरा तो यही असूल है।' उन्होंने दान दिया, मदद की तो आवश्यकता देखकर, जाति-धर्म देखकर कभी नहीं। यहां का राजनैतिक नेतृत्व सदैव सक्रिय व जागरूक रहा। महेशदत्त मिश्र, लक्ष्मणराव नाईक, रामेश्वर अग्निभोज, विष्णु राजौरिया, कमल पटेल सभी चर्चित व सक्रिय नेता रहे। श्री रामेश्वर अग्निभोज, ने उस दौर में हरदा के विकास का स्वप्न देखा, योजनायें बनाई पर विकास के नाम पर राजनैतिक मतभेद, विकास का रास्ता रोकते रहे। दूसरे चुनाव में उन्हें वासनिक के हाथ हारना पड़ा ।

हरदा ईमानदार व स्वाभिमानी लोगों का शहर है। हमारी पैतृक कृषि भूमि रोलगाँव में है यहां पर निरंतर आना-जाना बना रहता है। मेरे तीनों बेटों राकेश,राजेश,योगेश को हरदा से आज भी उतना ही लगाव है वे सभी अपने आत्मीय जनों में जब तब आते-जाते रहते हैं। राजेश ने हरदा में आज भी वैसा ही आत्मीय संबंध हमारे पुराने प्रियजनों से बना कर रखा है। हरदा से उसे विशेष लगाव है हरदा से जाने के बाद वहां के संस्कार और शिक्षा ने इन सभी को व्यापार के क्षेत्र में उच्च मुकाम प्रदान किया है। इंदौर और भोपाल में रहते हुए भी वे हरदा के समय और हरदा के आत्मीय जनों को आज तक नहीं भूले हैं। राजेश का मन पुनः हरदा में अपने दादाजी के व्यवसाय को पुनः शुरू कर उसे बढ़ाने का है। हरदा में सामाजिक और सेवा कार्यों में उसकी गहरी रूचि है।

हरदा के जन-जन में मानवता की भावना भरी पड़ी है। झेलम एक्सप्रेस दुर्घटना, मसनगाँव पुल दुर्घटना, नेमावर की नाव बस दुर्घटना में यहां लोगों को बार-बार अपनी मानवता का परिचय दिया है। पर अब भी आदर्श बालक मंदिर जैसा खेलों का केन्द्र हरदा में बनें, संस्कृत शिक्षा को बढ़ावा मिले, नागपुर-बैतूल, हरदा-इंदौर रेलमार्ग का निर्माण हो, सर्वसुविधा युक्त आडिटोरियम बनें, जहां सांस्कृतिक गतिविधियां चल सके ।

ई २/१४७ अरेरा कॉलोनी, भोपाल

मेरी संस्कार भूमि हरदा

डॉ. मूलाराम जोशी

मैं 21 मई सन् 1934 को एक छोटे से ग्राम खूदिया (तत्कालीन रियासत मकड़ाई) के एक सुसंस्कृत गरिमामय परिवार में पैदा हुआ। आदिवासी इलाके का यह ग्राम, मूलतः कृषक परिवारों का ग्राम है। उस समय वहाँ प्राथमिक शाला भी नहीं थी। हम लोग अपना बस्ता और धूल में वृक्ष के नीचे बैठकर पढ़ने के लिये साथ में एक बोरे का टुकड़ा लादकर पास के गाँव में पढ़ने जाते थे। शाम के बाद धुँआ छोड़ती घासलेट की चिमनियाँ हमें प्रकाश देती थी। पाँच या छः वर्ष की उमर रही होगी। मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण हमारे दादाजी ने मेरा नाम मूलाराम रख दिया। दूसरी कक्षा पास हो जाने के बाद स्कूल तक जाने में पड़ने वाले नदी नालों से बचाने के लिए पिताजी ने हमें अपने ताऊजी के पास ग्वालियर पढ़ने भेज दिया। चौथी हिन्दी पढ़ लेने के बाद हमें पिताजी ने ग्वालियर से वापिस बुला लिया, तब तक हमारे गाँव से पाँच किलोमीटर दूर सिराली नामक ग्राम में मिडिल स्कूल खुल चुका था। हमें वहाँ एक किराये के कमरे में हमारी ममतामयी दादी के साथ रहकर पढ़ने में मजा आया। आजकल एकल परिवारों में दादियों का प्यार कितने बच्चों को मिल पाता है, मैं नहीं जानता। सिराली में आटा मेरे घर से आता था और दादी रोटी बनाती थी। जब हम कक्षा 7 में थे तब हमारी दादी की मृत्यु हो गई। आठवीं कक्षा तक आते आते हमको अपनी रोटी बनाने का तथा कुछ अन्य रिश्तेदारों के साथ रहने का खट्टा मीठा अनुभव हुआ। भाई, वे दिन भी क्या दिन थे, एकदम अल्हड़।

हम सन् 1948-49 में म्युनिसिपल हाई स्कूल, हरदा की नौवीं कक्षा में आ गये थे। हरदा हमारे लिये बड़ा शहर था। हरदा में भाई बहिनों की पढ़ाई का मोर्चा हमारी नानी ने संभाला था। क्या कहूँ नानी का प्यार भरा प्रशासन, सात भाई और दो बहिनों के परिवार की पूरी जिम्मेदारी संभालते हुए हमारे माता पिता ने हम लोगों की शिक्षा को सर्वोपरि महत्व

दिया। फसलें सूखी, आर्थिक परेशानी आई, परन्तु वाह रे माता पिता और दादी-नानी का अदम्य साहस। क्या कष्ट नहीं उठाये उन्होंने हमको शिक्षित करने के लिये ? उन्होंने कष्ट उठाये संतति के भावी कष्ट निवारण के लिये। बड़े किसान होने की गरिमा को भी बनाये रखा और हमारे परिवार को और भी गरिमामय बना दिया। हम गढ़ीपुरा में एक किराये के मकान में रहते थे। अभी भी जब कभी हरदा किसी कार्यक्रम में आता हूँ तो मन की आत्मीयता पुरानी स्मृतियों को उकेरती हुई सड़कों पर घूमने को मजबूर करती है। लोगों से मिलने का मन होता है। हरदा की माटी में एक खास ओजस्विता है। उसमें अपनापन है। समीपता का सूत्र पिरोने के लिये देश से बाहर भी उस इलाके का नाम ही काफी है। सच है कि अब हरदा की ग्रामीण मौलिकता का भोलापन सिमट रहा है और वर्तमान सभ्यता का कृत्रिम शहरातीपन विस्तार पा रहा है। बाह्य जीवन की चकाचौंध जीवन की अधूरी परिभाषा है। हमें जनहित के लिये इस दिशा में जागरूक रहना चाहिए। बुरे कर्म और अपयश का पौधा भौतिक आस्वादों के गमले में ही पनपता है। हरदा में बस्ती के मध्य कोई सामूहिक भवन, मानस भवन या गीता भवन बनना चाहिये जहाँ सतत् जीवन सुधार की कक्षा लगती रहे, सत्संग होता रहे। अब वहाँ जीवन को मानसिक रूप से उन्नत करने के कार्यक्रम चलते हों तो मुझे पता नहीं।

जहाँ तक हरदा शहर के नाम का संबंध है, वह तो हमारे जीवन से जुड़ा है और अंत तक जुड़ा रहेगा। मैं देश में या विदेश में जहाँ भी जाता हूँ, वह मेरे साथ एक गरिमावान विश्वसनीय साथी की तरह जुड़ा रहता है। उसके बिना मेरी पहचान अधूरी है। मैं हरदा तहसील में पैदा हुआ। अब हरदा जिले में रहता हूँ। बचपन ग्राम ने संवारा और युवा मन को संस्कारित प्रौढ़ बनाने की शिक्षा हरदा ने दी। स्वतंत्रता के बाद तत्कालीन हरदा भोली ग्राम्य संस्कृति के साथ सुसंस्कृत शहरी संस्कृति की ओर बढ़ रहा था। हरदा अच्छा शहर था। बचपन में जब हम बैलगाड़ी से हरदा आते थे तो एक खले में गाड़ी छोड़ते और सजधजकर शहर में घुसते। घंटाघर के पास के बाजार में घूमता था। बरसो बरस की विकास गाथा को अंतर्मन में छिपाये मुख्य बाजार के बीचोंबीच वह घंटाघर आज भी वहीं खड़ा है, इतिहास पुरूष जैसा। अजनाल नदी की बाढ़ का दर्शन, उसके किनारे के मंदिरों की आरती, स्टेशन जाने के लिये सुन्दर का बड़े घोड़े वाला तांगा और घंटाघर के साथी बाबूलाल की उखड़ी बातें, आज भी स्मृतियों की लकीरों में जिन्दा हैं।

हरदा के भले मानुस की पीढ़ी के अंशों से अब हमारा परिचय नहीं रहा। उस समय लगभग हरेक आपस में एक दूसरे को जानता था, एक दूसरे की सहायता करता था, सहानुभूति रखता था, श्रद्धा करता था। उस समय के श्रद्धेय लोगों में श्री चन्द्रगोपाल मिश्रा, एडवोकेट, म्युनिसिपल प्रेसिडेंट थे। जिनके लड़कों में अच्छे वकील तो थे ही, एक प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी प्रो. महेशदत्त मिश्र थे जो जबलपुर विश्व विद्यालय में राजनीति के प्रोफेसर

थे और कांग्रेस के सांसद भी रहे। उनसे तो कई दिन तक भोपाल में मुलाकात भी होती रही। उस समय के जाने माने नागरिकों में मगन लाल कोठारी, चंपालाल सोकल, मानकचंद पाटनी, रामनारायण सेठ, बरोड़ वकील, अग्निहोत्री वकील, हरीशंकर सेठ, नीलोबा सराफ, मित्तल सर, जोशी दद्दा, नाईक परिवार एवं अन्य कई थे।

हरदा की खूबी रही है कि वहाँ विरोधाभास भी सामंजस्य बन जाता था। जहाँ एक समय कांग्रेस के मिश्रजी नगर पालिका के अध्यक्ष रहे, वहीं दूसरी बार बिना शिक्षा वाले लच्छू कप्तान, कम्यूनिस्ट भी अध्यक्ष रहे। हरदा उस समय मूल रूप से सभ्रांत परिवारों का कस्बेनुमा शहर था। अब नये शहर की नई दास्तान है। पुराने समय में साहित्यिक, सांस्कृतिक और कला-कार्यक्रम, शैक्षणिक संस्थाओं तक ही अधिक सीमित रहे। आज कल तो कई नई प्रतिभायें साहित्यिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में हरदा शहर को गौरवान्वित कर रही हैं। यह बड़ा सुखद लगता है। भगवान करे इस माटी से और नई ऊर्जायें उत्पन्न हों।

अब थोड़ी चर्चा उस शिक्षा की जिसने गमले में लगे पौधों जैसे विद्यार्थियों को सींच सींच कर वट वृक्ष बना दिया। तत्कालीन हरदा हाई स्कूल याने 11 वीं कक्षा तक की स्तरीय शिक्षा का केन्द्र। मैंने 1951 में 11 वीं कक्षा उत्तीर्ण की थी। उसके बाद मैंने धार से इंटर किया और भोपाल आ गया। मैं यह कहते हुए गौरवान्वित होता हूँ कि हरदा में शिक्षा प्राप्त किये हुए हमारे कई साथियों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में योग्यता के दम पर अपना अपना स्थान बनाया। उनका कोई गाडफादर नहीं था जैसे कि आजकल होते हैं। हमारे कई साथियों ने अपने परिश्रम के दम पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की। मेधावी मित्रों ने हरदा को विदेशी पटल पर स्थापित कराया। आसपास के छोटे छोटे गाँवों के जो भी बालक-बालिकायें हरदा के विद्वान शिक्षकों के मार्गदर्शन में शिक्षित हुए, वे जीवन संग्राम में विजयी होकर दूसरों के लिये आदर्श बने। ऋषि तुल्य उन शिक्षकों में कोई ऐसा उदाहरण स्मरण नहीं आता जिसे हम लोग भूले हों अथवा जिसे आज भी साष्टांग प्रणाम करने का मन न करता हो। जो दिवंगत हो गये, वे आज भी देवतुल्य हैं और जो जीवन के अंतिम क्षणों में हैं, वे तीर्थस्वरूप हैं। चाहे वह गाँव की प्राथमिक शाला रही हो, मेरा अनुभव कहता है कि अब वैसे शिक्षकों की पीढ़ी जा चुकी है। हार्वर्ड विश्व विद्यालय अमेरिका में पढ़ाते हुए और बड़े बड़े देशी विदेशी संस्थानों में भाषण देते हुए मेरे इन सब गुरूओं का शक्तिपात मुझे ऊर्जा देता था। प्राथमिक शाला के गुरू खान साहब की कान ऐंठन, मिडिल स्कूल के गुरूजी आर.बी. शर्मा, माधवराव व्यास सर की झमाझम छड़ी और हाई स्कूल के गौर सर, गार्गव सर, नाईक सर की ओजस्वी वाणी आज भी भूले नहीं भूलती। मेरे गुरूजनों का अनुग्रह मानते हुए मुझे अलेक्जेंडर दी ग्रेट के सुर में सुर मिलाकर यह कहने में गर्व होता है कि - I owe my life to my parents but my knowledge to Arstotle. अरस्तू सिकंदर महान का गुरू था।

आज अधिक पढ़े लिखे सम्मानीय शिक्षक अवश्य हैं परन्तु उनके विद्यार्थियों को उनसे बड़ा बनाने वाले और जीवन संग्राम के लिये तैयार करने को तत्पर रहने वाले गुरूवर नहीं। मेरे उन आदर्श गुरूओं को प्रणाम।

विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के दर्शन में यदि खेल की भूमिका छोड़ दूँ तो कुछ अधूरा सा लगेगा। हरदा स्कूल उस समय जिले का मान्य स्कूल था। पढ़ाई में अव्वल, खेलों में अव्वल। कबड्डी खेल में तो हरदा की टीम से लोहा लेना, लोहे के चने चबाना ही था। लल्लू गुरूजी, गौरीशंकर पहलवान, रामदीन वगैरह कबड्डी के अच्छे खिलाड़ी थे। मैं तो हाथ पैर टूटने के डर से कबड्डी कभी नहीं खेला परन्तु हाँ, मिडिल स्कूल ग्राउंड पर वॉलीबाल जरूर खेलने लगा था। पहले तो हम खिलाड़ियों की गेंदे उठा उठाकर लाते थे और बाद में कभी कभी हमें भी दो चार हाथ मारने का मौका मिल जाता था। भोपाल आने के बाद भी हम वॉलीवाल खेलते रहे। जिन खेल गुरूओं को मैं आज भी नहीं भूला हूँ, उनमें सरदार हरवंशसिंह चावला, विजय अवस्थी, मुमताज अली मास्साब मुख्य हैं। अभी चार माह पहले ही हरदा स्टेशन के पास के क्रॉसिंग पर जब मेरी गाड़ी बिगड़ गई थी, मैं समय का लाभ लेकर हरवंशजी से मिल लिया था। साठ वर्ष बाद के इस मिलन में परिचय के बाद उनकी आँखों में स्नेह के अश्रु थे। नई बातें तो कम हुई, केवल स्मृतियॉ ही खंगाली गई। आज भी मैं जब कभी अपने गाँव जाता हूँ तो हरदा की माटी को स्पर्श करते हुए ही जाना पड़ता है। पूरा स्टेशन रोड, घंटाघर, खेड़ीपुरा और अजनाल का पुल पार करते करते 60-65 वर्ष का अतीत वर्तमान को जोड़ देता है। मुझे कविवर महेश संतोषी की कविता याद आ जाती है -

'गुजर सकता तो हर रोज गुजरता मैं, उम्र की उस पहली सीढ़ी से
जहाँ पिता की उंगली पकड़े, एक पीढ़ी मिलती थी दूसरी पीढ़ी से।'

मित्रों, हरदा हमारी मातृभूमि है। यह हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। दुनियाँ में अपनी जड़ों से टूटकर, कृत्रिमता लपेटकर जिन्दा रहने वाला व्यक्ति आत्महंता हो जाता हैं। आज जब सुनता हूँ कि पश्चिम की लहर ने भारतीय संस्कृति पर ऐसा आक्रमण किया हैं कि संस्कारवान भी बदल गये हैं, तो थोड़ा कष्ट होता है। आदमी देवता न बने परन्तु वह कम से कम असुर न बने, यह हर प्रगतिशील भी सोचता है। लोगों से, खबरों से मालूम होता है कि हरदा बदल गया है, बदल रहा है और अशान्त वातारण की ओर तेजी से बढ़ रहा है। लूट, चोरी, लालच, जमीनों पर कब्जे, कत्ल, परिवारों में असांमजस्य, कोर्ट, कचहरी, दिखावा, बनावटीपन सब बढ़ता जा रहा है। ऊपरी सौन्दर्य एक न एक दिन नष्ट होता है। भौतिक और ऊपरी उन्नयन के साथ नैतिक और आंतरिक उन्नयन अतीत और वर्तमान को जोड़कर एक युक्तिसंगत-जीवन बनाता है। हर क्षेत्र में अवमूल्यन होते देख मुझे डॉ. हरिवंशराय बच्चन की

मधुशाला की पंक्तियॉं याद आ जाती हैं : *'अब न रहे वे पीने वाले, अब न रही वह मधुशाला।'* प्रतिभा के गिरते स्तर और उसे विकृत होते देखकर डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने आजकल के हालात पर मुझे एक बार लिखा था -

मित्र, वरिष्ठ पीढ़ी की एक कमजोरी होती है। वह नई पीढ़ी का भौतिक उन्नयन देखकर जितनी खुश होती है, उतनी ही संस्कारों और नैतिकता की अवनति को देखकर दुखी होती है। अत: भावी पीढ़ी को मैं यह संदेश देना चाहूँगा कि, 'हमारी मातृभूमि के ऊपर फलने वाले कपास के निर्मल श्वेत धागों से बुनी हुई पुरानी चादर पर यदि नई पीढ़ी कोई काला दाग लगाकर खुशी होती है तो स्वभावत: हमें अच्छा नहीं लगता। आखिर यह हमारी मातृभूमि की अस्मिता का सवाल जो ठहरा।'

प्रभु सबको सन्मति दें। सब खुश रहें।

ई-४-३५९ अरेरा कॉलोनी, भोपाल

हृदय में हरदा

राजेन्द्र जोशी

मेरी पहचान यही है कि मैं हरदा का हूँ। हालांकि मेरा पैतृक गाँव छिदगाँव है, जो हरदा जिले का प्रवेशद्वार है। होशंगाबाद की ओर से हरदा जाते समय जिले का जो सबसे पहला गाँव पड़ता है वह मेरा ही गाँव है। आप प्रदेश के किसी भी जिले में हों देश में आप मध्यप्रदेशवासी कहलाते हैं और देश के किसी भी प्रदेश के वासी हों, देश के बाहर आप भारतवासी कहलाते हैं। इसी तर्ज पर मुझे हरदावासी होने का गौरव प्राप्त हुआ है। हरदा से मेरा आत्मीय जुड़ाव है। अपने परिचय में बिना हरदा का नाम जोड़े मेरा परिचय अधूरा ही रहता है। अपने कर्मस्थल भोपाल में ही नहीं बल्कि पूरे मध्यप्रदेश और यहां तक कि देश के विभिन्न भागों में, जहाँ-जहाँ तक मेरे संबंधों का दायरा फैला है, मेरे शुभचिंतक और ढेर सारे परिचित लोग मुझे मुम्बईया की तर्ज पर हरदैया के रूप में स्नेह और आदर देते हैं। मैं महसूस करता हूँ कि हरदा की तस्वीर ही कुछ ऐसी है कि इस शहर का नाम सुनते ही लोगों में सम्मान के भाव पैदा हो जाते हैं। सेवा के दौरान विभिन्न शहरों के प्रवासों में मुझे अनुभव हुआ है कि वहाँ के लोगों पर आपका प्रथम प्रभाव (फर्स्ट इम्प्रेशन) तो इसी बात से पड़ जाता है कि आप हरदा के हैं। यह प्रभाव हरदा की जमीन का ही है।

प्रदेश के विभिन्न विभागों, संभागों और जिलों के वरिष्ठ अधिकारी, जो कभी हरदा में पदस्थ रहे हैं, वे सदैव कहा करते हैं कि हरदा की उनकी पदस्थापना उनके सेवाकाल का एक स्वर्णिम अवसर था। ऐसे अधिकारियों का मानना है कि प्रदेश के विभिन्न अंचलों की तुलना में हरदा का आंचलिक जनजीवन अत्यंत ही शालीनता का है। यहाँ के लोग मिलनसार, खुशमिज़ाज और संतोषी हैं। अधिकारियों का तहेदिल से सम्मान आदर और स्वागत करना, यहाँ के लोगों की विशेषता के रूप में देखा जाता है। यहाँ की भूमि और पानी का ऐसा प्रभाव

है कि एक बार हरदा में रह लेने के बाद कोई भी व्यक्ति हरदा से मिले प्रेम भाव को अपने हृदय से निकाल नही पाता है। यहाँ के जनजीवन में व्याप्त निश्छलता, रहन सहन, रीति रिवाज और व्यवहार की मधुरता ही हरदा के प्रति लगाव का मात्र कारण नहीं है, बल्कि हरदा का सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक और व्यवसायिक परिवेश भी अपनत्व का भाव प्रदर्शित करता है। प्रदेश के कतिपय नगरों की तरह हरदा नगर भी उपेक्षाओं के बावजूद बौद्धिक दृष्टि से पिछड़ेपन का शिकार कभी नहीं रहा है। अंग्रेजों के शासनकाल में जब कई नगरों में लोगों को जगमगाते विद्युत बल्वों के दर्शन नहीं होते थे, वे जानते भी नहीं थे कि बिजली की लाइनें क्या होती हैं, उस दौर में भी हरदा नगर विद्युत रोशनी से जगमगाया करता था। आसपास के नगरों और गांवों के लोगों के लिए हरदा आने पर चमचमाती बिजली का चमत्कार देखना एक अजूबा था। वर्तमान दौर में विकास की तेज रफ्तार के चलते जिस गति से हरदा का औद्योगिक या आर्थिक विकास होना चाहिए था वह नहीं हो पाया है, किन्तु बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाय तो हरदा का जनजीवन आज जो भी संसाधन उपलब्ध हैं, उन्हीं के बीच अमूमन संतुष्ट रहने का आदि हो गया है। आज संपूर्ण देश का वातावरण राजनीति प्रधान हो गया है, जिसने चलते गाँव-गाँव में वैचारिक टकराहटों और निहित स्वार्थों के परिणाम स्वरूप परस्पर सामाजिक सद्भाव और सौहार्द्र दुष्प्रभावों से, आंशिक रूप से प्रभावित होता जा रहा है।

पाँच दशक पूर्व की यादों के पृष्ठों को जब पलटने बैठ जाता हूँ, तो उनमें मुझे कई ऐसे शब्द और वाक्य मिल जाया करते हैं, उन्हें मैं अंडरलाइन करता जाता हूँ। मैं टिमरनी के राधास्वामी हाईस्कूल का छात्र था किंतु सिनेमा देखने का शौक हरदा जाकर ही पूरा हो पाता था। उन दिनों नारायण टॉकीज और प्रताप टॉकीज का पूर्ववर्ती होशंगाबाद जिले में काफी नाम था। सिवनी, टिमरनी, खिरकिया यहाँ तक कि उधर हरसूद और इधर होशंगाबाद तक के सिनेमा प्रेमियों के लिए हरदा की ये दोनों टाकीजें मनोरंजन का केन्द्र हुआ करती थी। उन दिनों हरदा नगर जिले का बड़ा और आधुनिक शहर माना जाता था, जहाँ ताजी-ताजी रिलीज होने वाली फिल्मों का प्रदर्शन होता रहता था। इन टाकीजों में नई फिल्में लगने पर प्रथम-दिन प्रथम-शो देखने की दर्शकों में होड़ लगी रहती थी। नगर में दो चार ऐसे लोग भी थे जो अपने बचपन से बुढ़ापा आने तक फिल्मों के पहले दिन का पहला शो देखने में चूक नहीं करते थे। आसपास के गाँवों के लोगों में भी हरदा की टाकीजों में नई लगने वाली हरेक फिल्मों को देखने का चस्का लगा हुआ था। उन दिनों में हरदा में लगने वाली जितनी भी ि फिल्में मैंने देखी उनके कथानक, गीत, संवाद और कलाकारों का प्रभाव, इतना लम्बा समय गुजरने के बाद भी भुलाया नहीं जा सका है। वह हरदा ही था जहाँ से मेरे फिल्मी ज्ञान का विकास प्रारम्भ होकर फिल्मों के प्रति मुझ में आकर्षण पैदा हुआ। बाल्यकाल में हरदा से बना संपर्क धीरे-धीरे प्रगाढ़ होता चला गया। वहाँ के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक

और व्यवसायिक जगत की हलचलों से हरदा के प्रति बढ़ते मेरे मोह में निरंतर इजाफा होता चला गया। हालांकि मेरी नाल हरदा नगर की माटी में नही गड़ी है, किंतु जिस जलवायु में मैंने साँस लेना शुरू किया वह पूरी तरह हरदामयी थी। मित्रों, शुभचिंतकों, परिजनों के साथ ही पारिवारिक रिश्तों-नातों से भी हरदा का कौटुम्बिक और आत्मीय जुड़ाव इतना अधिक मजबूत है कि फेवीकोल भी उसके आगे पानी भरता है। ऐसा कौनसा नाता है, जो हरदा में नहीं है। भाई-भतीजे, बहन-भौजाई, मामा-भानजे, साला-सलहज, समधी-समधन जैसे अपने परिवार और ससुराल पक्ष के तमाम रिश्तों से हरदा भरा पड़ा है।

हरदा में परिजनों के सुख-दुख में साल में कई बार शामिल होने जाना पड़ता है, कभी रेलमार्ग से तो कभी सड़क-मार्ग से, नगर के रेल्वे फाटक की रूकावट को झेलते हुए। हरदा के साथ मेरे जीवन का एक प्रसंग भी जुड़ा है कि मेरे प्रथम विवाह के सात फेरे हरदा में ही पड़े थे। उन दिनों मेरी पहचान हरदा के एक दामाद के रूप में बन गई थी। आसपास के गांवों में फैली नातेदारियों के चलते उन गांवों में अक्सर जाना आना बना रहता है। वहाँ पहुँचने के लिए हरदा हमारे लिए जंक्शन है। सुखरास या कुकरावद जाना हो, भौरोंपुर या अबगांव जाना हो, कांकरिया-मसनगांव जाना हो या चारखेड़ा, खिड़कीवाला जाना हो, हरदा को टच करना ही पड़ता है। हरदा के साथ मेरे जीवन का एक अमिट प्रसंग यह भी जुड़ा है कि मेरी नौकरी की शुरूआत का पहला नियुक्ति आदेश हरदा से ही जारी हुआ था। राधा स्वामी हाईस्कूल, टिमरनी से मेट्रिक करने के बाद मैं प्राथमिक शाला का शिक्षक नियुक्त हुआ था। उन दिनों जनपद सभाओं के अधीन स्कूल संचालित होते थे। जनपद सभा हरदा के अध्यक्ष और तत्कालीन विधायक श्री लक्ष्मणराव नाईक ने कृपावंत होकर मेरी नियुक्ति कर आदेश निकलवाया था। मेरे पैतृक गाँव छिदगाँव मेल के नियुक्ति आदेश जारी होना था, किंतु गाँव के नाम में भ्रमपूर्ण स्थिति होने से जनपद कार्यालय से मेरा आदेश छिदगाँव (पानतलाई) में पदस्थापना के लिए निकल गया। इस आदेश को संशोधित कराने के लिए अनेक पापड़ बेलने के बाद भी, छिदगाँव मेल में जगह खाली नहीं होने के कारण, मुझे सफ लता नहीं मिली। मुझे अंततः छिदगाँव (पानतलाई) की एक शिक्षकीय शाला में पदभार ग्रहण करना ही पड़ा। वो तो भला हो जनपद कार्यालय के स्तम्भ कहे जाने वाले बड़े बाबू 'लच्छू बाबू' का जिन्होंने बरसात के बाद कुछ ऐसा रास्ता निकाल ही लिया कि उसी शिक्षा सत्र की समाप्ति के पूर्व छिदगाँव मेल में मेरा तबादला आसानी से हो गया। मांडे (मंडप) की पंगत तो आधीरात के आस-पास ही हुआ करती थी। मुझे भी हरदा की सांस्क्रृतिक परम्पराओं की उन पंगतों में धोती पहनकर बैठने और दूधकड़ी फड़काने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। पंगत की समाप्ति पर पत्तल पर बैठे ही बैठे श्लोक पढ़े जाते थे। मुझे तो अपने उसी हरदा पर आज भी गर्व है जहाँ संस्क्रृति और जनजीवन की मधुरता और शालीनता सहज ही मिली जो

अजनबी को अपना बना लिया करती थी। बाजार से या किसी भी गली से निकल जाओ, राह चलते लोगों से ये ही शब्द सुनने को मिला करते थे - भैयाजी नमस्ते, काकाजी नमस्ते, दादाजी प्रणाम, सेठजी जयगोपाल जी, पंडितजी पांव लागीं। मैंने ऐसे दृश्य भी देखे हैं, जब महिलाऐं बाजार में होती या घंटाघर चौक से गुजरती होती तो वहां के लोग, अनुशासित और मर्यादित होकर महिलाओं को सम्मान दिया करते थे। यदि कहीं मित्र मंडली झुंड बनाकर पान की दुकान पर चाय की होटल के पास खड़ी है और उनमें हँसी-मजाक या ह हा ही ही चल रही हो तो ये लोग वहां से किसी महिला को गुजरते देख उसके प्रति आदर और सम्मान का भाव रखते हुए बातचीत बंद कर चुप हो जाया करते थे। मुझे विश्वास है कि आज भी हरदा की वे सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराएं, उसी रूप में बरकरार होंगी, जिस रूप में मैंने कभी देखी थी।

हरदा मेरे जीवन के महत्वपूर्ण पड़ावों और खट्टे-मीठे अनुभवों का एक ऐसा केन्द्र रहा है जो अब स्मृतियों का खजाना बन गया है मेरा मानना है कि हरदा को सही रूप में उसी ने पहचाना है, जिसने हरदा की माटी की गंध के एहसास को आत्मसात कर लिया है। मेरी नजर में हरदा की विशेषता सिर्फ इतनी है कि वह सिर्फ और सिर्फ हरदा है।

४७, पत्रकार कॉलोनी, भोपाल

अतीत के झरोखे से

कैलाश चन्द्र पारे

हरदा मेरा गृह नगर है, जहां मैंने अपने विद्यार्थी जीवन के अलावा युवावस्था के प्रारंभिक वर्ष भी व्यतीत किये। उन्हीं दिनों की कतिपय स्मृतियाँ आज भी हृदय पटल पर ताजा है, जिन्हें यहां प्रस्तुत करने में मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। सन् 1952 के बाद शासकीय सेवाओं में हरदा से बाहर रहने के कारण इस शहर से मेरा जीवन्त सम्पर्क कुछ कम हो गया। अत: प्रस्तुत यादें उस वर्ष के पूर्व तक ही सीमित है। हरदा मेरी दृष्टि में प्रारंभ से ही एक विकसित एवं प्रगतिशील नगर रहा है। वर्षों पूर्व तक यह होशंगाबाद जिले की हरदा तहसील का मुख्यालय रहा। इसके काफी पूर्व नरसिंहपुर और गाडरवाड़ा तहसीलों सहित होशंगाबाद जिले में छ: तहसीलें थीं। इनमें हरदा में ही सबसे पहले बिजली, नल व सड़क के किनारों पर पक्की नालियों की व्यवस्था हुई। विद्युत संचालन सन् 1936-37 के लगभग प्रारम्भ हुआ। सड़कों की सफाई बड़े सुबह ही हो जाती थी। शहर की इस प्रगति का मुख्य श्रेय तत्कालीन नगर पालिका अध्यक्ष पं. चन्द्रगोपालजी मिश्र व उनके सहयोगियों को जाता है।

सन् 1940-41 के शिक्षा सत्र में मेरा अध्ययन राधास्वामी हाई स्कूल, टिमरनी में हुआ। इस स्कूल का नया भवन अपना भव्य स्वरूप लिये सन् 1939 में तैयार हुआ। वह अंग्रेजियत का जमाना था। प्राय: अधिकांश शिक्षक सूट व टाई पहने पढ़ाने आते थे। हेड मास्टर (प्रिंसीपल) श्री गुरूप्रसाद माथुर सहित कुछ अध्यापक दयालबाग (आगरा) से ही नियुक्त होकर आये थे। उन दिनों इस स्कूल की पढ़ाई व अनुशासन का स्तर जिले में सर्वोच्च

कोटि का माना जाता था। वहां का वार्षिक बसंत टूर्नामेंट तो देखने लायक था। वह दशहरा, दीपावली के समान एक बड़े उत्सव के रूप में मनाया जाता था, जिसे देखने शहर के सैकड़ों लोग भी आते थे। रात्रि में स्कूल का भवन दीपमालाओं से जगमगा उठता था।

सन् 1941-42 के सत्र से मेरा अध्ययन हरदा में प्रारंभ हुआ। यहां का स्वदेशी वातावरण मुझे अच्छा लगा। कुछ शिक्षक तो आदतन खादी के कपड़े ही पहनते थे। उन दिनों श्री हल्वे साहब मिडिल स्कूल में हेड मास्टर थे, वे काफी अनुशासनप्रिय थे। यदि किसी विद्यार्थी को सजा देना हो तो वे शिक्षक श्री जोशी दद्दा (जी.वी. जोशी) के सुपुर्द कर देते थे, जिनके घूसों की मार से विद्यार्थी बहुत डरते थे। श्री जोशी जी कालान्तर में इस स्कूल के हेड मास्टर हुए। सन् 1941-43 के शिक्षा सत्र में मिडिल स्कूल की हमारी कक्षा स्थानाभाव के कारण हाई स्कूल के भवन में स्थानांतरित की गई। उन दिनों श्री डी.जी. देशपाण्डे वहां के हेड मास्टर थे। वे सच्चे राष्ट्रवादी थे। अगस्त सन् 1942 की क्रान्ति के दिनों में जब आन्दोलनकारी विद्यार्थियों ने कक्षाओं का बहिष्कार किया तो कुछ विद्यार्थी उनके साथियों द्वारा आव्हान करने पर भी कक्षाओं में डटे रहते थे। तब श्री देशपाण्डेजी मौखिक रूप से तो उन्हें डाँटकर कक्षाओं में ही रहने को कहते थे, किन्तु हाथ के इशारे से उन्हें भी बाहर जाने को कहते थे। एक बार हमारा जत्था राष्ट्रीय नारों का जयघोष करते हुए जब कचहरी प्रांगण में पहुँचा तो तत्कालीन नायब तहसीलदार व मजिस्ट्रेट श्री बी.सी. राय ने स्वयं हाथ में बेंत लेकर आन्दोलनकारियों की पिटाई की व पुलिस ने भी डण्डे बरसाये। श्री बद्रीप्रसाद व कुछ अन्य आन्दोलनकारी वहीं गिरफ्तार हुए।

सन् 1942 के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के आन्दोलन में महात्मा गांधी 9 अगस्त को गिरफ्तार हुए जिनमें मुझे एक दो उदाहरण याद हैं। लगभग तीन चार दिन बाद ही शाम को टाउन हॉल के प्रांगण में एक विशाल जनसभा में श्री रामेश्वर अग्निभोज, नर्मदाप्रसाद गार्गव व कुछ अन्य नेताओं के अंग्रेज सरकार के विरूद्ध अत्यंत जोशीले भाषण हुए। फलस्वरूप श्री अग्निभोज गिरफ्तार हुए। दूसरे ही दिन जब श्री नर्मदाप्रसाद गार्गव, श्री चम्पालाल सोकल की दुकान पर आगे की कार्यप्रणाली की चर्चा हेतु बैठे थे, तो पुलिस के सिपाहियों ने उन्हें वहीं से गिरफ्तार कर होशंगाबाद जेल ले जाने के लिए तांगे में बैठा लिया और रेल्वे स्टेशन ले जाने लगे। देखते ही देखते तांगे के पीछे सैकड़ों की संख्या में आन्दोलनकारी इकट्ठा होकर 'नर्मदाप्रसाद जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने गये। श्री गार्गवजी को उनके परिजनों से मिलने उनके निवास गृह भी नहीं जाने दिया।

जहां तक हरदा के सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक व क्रीड़ा जगत का प्रश्न है, हरदा का इन क्षेत्रों में भी अपना विशिष्ट स्थान रहा है। 1943-44 व उसके लगभग हरदा में

'यंग मेन्स एसोसियेशन' नामक सामाजिक संस्था का अस्तित्व प्रारंभ हुआ, जो प्रतिवर्ष नगर पालिका के सहयोग से गुलजार भवन में विशाल प्रदर्शनी वे मेले का आयोजन करती थी। शाम को सामने ही स्कूल प्रांगण में कवि सम्मेलन, वाद- विवाद प्रतियोगिता, सांस्कृतिक कार्यक्रम व किन्हीं विशेष विषयों पर बौद्धिक वर्ग के भाषण होते थे। श्री मुमताज अली इस संस्था के सेक्रेटरी थे। सभाओं की अध्यक्षता श्री चन्द्रगोपाल मिश्र या कभी तत्कालीन सब-जज श्री शिवनाथ मिश्र व अन्य लोग करते थे। मुझे स्मरण है कि अध्यक्ष के लाख अनुरोध करने व नाराजी जताने पर भी समाजसेवी पं. टीकाराम तिवारी अपनी बातें पूरी कहे बिना अपना धारावाहिक ओजस्वी भाषण समाप्त नहीं करते थे, और अन्त में नाराज होकर बैठ जाते थे।

हाई स्कूल के असेम्बली हॉल में भारत के महान देशभक्तों के बड़े साईज के फोटो लगे थे, जिनमें लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू, रासबिहारी बोस, सुभाषचन्द्र बोस, लाला लाजपतराय, अरविन्द घोष, यतिन्द्रनाथ दास, चितरंजन दास, चन्द्रशेखर आजाद, सरोजनी नायडू, बटुकेश्वर दत्त आदि के फोटो थे। विद्यार्थियों को इन्हें जानने की जिज्ञासा व प्रेरणा मिलती थी। हाई स्कूल में प्रतिवर्ष (1945-47) तक हिन्दी के अध्यापक पं. भागवत प्रसाद गंगेले के मार्गदर्शन में विद्यार्थियों की 'हिन्दी साहित्य समिति' के तत्वाधान में तुलसी जयंती, तिलक जयंती, गांधी जयंती व सुभाष जयंती आदि बड़े उत्साह के साथ मनाई जाती थी। शहर के अनेक नागरिक भी इनमें शामिल होते थे। पं. माखनलाल चतुर्वेदी, राय साहब सेठ हरिशंकर व श्री कृपाशंकर अवस्थी आदि ने समय-समय पर इन समारोहों की अध्यक्षता कर आयोजनों को सुशोभित किया। उन दिनों ऐसा कोई क्षेत्रियतावाद नहीं था कि तिलक जयंती महाराष्ट्र में ही मनाई जावे या सुभाष जयंती बंगाल में। सन् 1946-47 के शिक्षा सत्र में हाई स्कूल प्रांगण में मॉक पार्लियामेन्ट का सफल आयोजन हुआ। श्री सी.एल. पारे, एडव्होकेट स्पीकर थे व श्री मगनलाल कोठारी ने शिक्षामंत्री का दायित्व सम्हाला। श्री डी.जी. देशपाण्डे विपक्ष के नेता थे। इन्हीं वर्षों में स्कूल के कवि सम्मेलनों में इंदौर के मालवी कवि श्री नरेन्द्रसिंह तोमर, जबलपुर के कवि श्री रामकृष्ण दीक्षित 'विश्व', इटारसी के श्री नत्थूसिंह चौहान, भोपाल के हास्य कवि श्री जीवनलाल 'विद्रोही' व सरदार दिलजीत सिंह 'रील' ने इन कार्यक्रमों को सफल बनाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। क्रीड़ा जगत में बॉलीवाल, कबड्डी व कुश्ती में हरदा का विशिष्ट स्थान रहा। बॉलीवाल में सर्वश्री विजयशंकर अवस्थी, सरदार हरवंशसिंह, मुमताज अली, श्रीनारायण पारे व अनवर हुसैन आदि ख्यातिप्राप्त खिलाड़ी थे। इन सभी की ऊँचाई लगभग छः फीट थी। हरदा की कबड्डी टीम ने तो न केवल जिले में बल्कि प्रदेश में भी अपनी धाक बनाये रखी। शाम के समय युवा यहां वहां भटककर कोई गलत राहों पर न चले जायें, इस हेतु शहर में श्रीराम

व्यायामशाला, बलवीर व्यायामशाला, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं एन.सी.सी. आदि संस्थायें कार्यरत् थीं, जहां शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के अवसर प्राप्त होते थे।

हरदा के विकास एवं शहर को विशिष्ट स्थान दिलाने में जिनका विशेष योगदान रहा, उन में से कुछ नाम का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, सर्वश्री चन्द्रगोपाल मिश्र, दादाभाई नाईक, महेशदत्त मिश्र, चम्पालाल सोकल, जस्टिस सी.बी. केकरे, कमिश्नर, श्री रामविलास अग्रवाल व वर्तमान में जस्टिस अभय नाईक व सर्वश्री कमल पटेल, सुरेन्द्र जैन, श्री अजातशत्रु, माणिक वर्मा, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त श्री गोपीकृष्ण जोशी, पत्रकार व प्रखर वक्ता मदनमोहन जोशी आदि।

आज भी हरदा निरन्तर विकास व प्रगति की ओर अग्रसर है मुझे विश्वास है कि यह शहर प्रदेश में प्रगति के हर क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाये रखेगा। अन्त में मैं डॉ. धर्मेन्द्र पारे, ज्ञानेश चौबे, प्रेमशंकर रघुवंशी व उनके अन्य सहयोगियों को साधुवाद देना आवश्यक समझता हूँ, जिन्होंने हमें हमारे भूले हुए अतीत को पुनः ताजा करने का अवसर प्रदान किया।

126, रेडियो कालोनी, इंदौर

घंटाघर, घर आँगन सा लगता था

डॉ0 लोकेश अग्रवाल

हरदा में जन्म होना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। बचपन से लेकर आज तक की यादें जो कि हरदा से जुड़ी हैं, वे मेरे स्मृति पटल पर सदैव के लिए अंकित हो गयी हैं। पता नहीं कि यादों का यह अंतहीन पथ कब समाप्त होगा। यहाँ की मिट्टी, पानी, हवा और धूप की मैं रचना हूँ, जिसके ऋण को मैं कैसे चुकाऊँगा समझ ही नही पाता हूँ। सोचता हूँ कि जब-जब यहाँ की याद आये तो वही स्मरण, मेरा सृजन बने जिसने मेरे संस्कृति को, सजाने-संवारने में कोई कोर कसर नही छोड़ी। बात आज से आधी शताब्दी पूर्व से शुरू करूँ। शहर का बहुत बड़ा वर्ग प्रतिवर्ष होली के दिन रंग खेलने के लिए घंटाघर के पास एकत्रित होता था, पिताजी के साथ मैं भी वहां जाता था। बहुत उमंग, उल्लास व आत्मीयता से शालीन होली खेली जाती थी। मन भरने के बाद महेश चाचा (स्वर्गीय महेश दत्त मिश्र) अपने साथियों के साथ होली खेलने के लिए हरिजन मोहल्ले में जाते थे, वहाँ खुलकर होली खेली जाती तथा खाना-पीना भी होता था। अमीर-गरीब, ऊँच-नीच की भावना से बहुत ऊपर उठकर लोग गले मिलते व रंग लगाते थे। मैं शपथ पूर्वक कथन करता हूँ कि होली के इन प्रसंगों ने मेरे बाल मन पर कुछ ऐसा प्रभाव छोड़ा कि मै आजीवन ऊँच-नीच व छूआछूत की भावना से कोसों दूर रहा। मै अपने शहर का ऋणी हो गया। लगभग आधी शताब्दी पूर्व की एक ऐसी घटना है जिसे मैं कभी भूल ही नहीं पाया हूँ। हरदा नगरपालिका के सफाई कर्मियों ने एक बार हड़ताल कर दी। पूरे शहर की सफाई व्यवस्था ठप्प पड़ गयी, चारों और गन्दगी फैलने लगी, देशी संडासों में सड़ान्ध होने लगी व लोग बीमार पड़ने लगे। पूरा शहर एक अजीब सी छटपटाहट के साथ खामोशी से सब कुछ सहन कर रहा था। ऐसे समय में महेश चाचा शहर के नौजवान साथियों के साथ सारे भेदभावों से परे होकर हाथों में झाड़ू, टोकने व फावड़े लेकर सफाई कार्य में जुट गये। संडासों की सफाई शुरू हो गयी, शहर का अमन-चैन लौटने लगा। मुझे अभी भी याद है कि कई स्थानों पर नौजवानों की इन टोलियों को, शहर की महिलाओं व पुरूषों ने रोते-रोते कार्य करने से इसलिए रोका कि हमें पाप का भागी मत बनाओ, किन्तु ऐसा दृश्य शहर की सड़कों पर दुबारा कभी देखने को नही मिला। मैं

आज भी उस घटना को जब याद करता हूँ तो मुझे अधिक स्फूर्ती व आत्म गौरव मिलता है कि मेरा जन्म इस भूमि पर हुआ है।

हरदा की जनता ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में स्मरणीय भूमिका निभाई है। मैं अपने बचपन से ही इस क्षेत्र में हुए उत्सर्ग व बलिदान के अनेक प्रेरक प्रसंगों को सुनता रहा हूँ। मेरे परिवार के बुजुर्गों ने पास पड़ोस के लोगों ने और जिन सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में मैं आया उन्होंने मुझे क्षेत्र के राष्ट्रीय आन्दोलन के संबंध में बहुत कुछ बताया, आकर्षित किया। दादा भाई नाईक, प्रो. महेश दत्त मिश्र, ठाकुर गुलजार सिंह, पं सीताचरण दीक्षित, रामेश्वर अग्निभोज आदि अनेक नेताओ ने स्वाधीनता संघर्ष में क्षेत्र का गौरव बढ़ाया है। उनके आत्मबलिदान का पुण्य स्मरण आज भी गौरवान्वित करता है, ऐसा उत्साह व मतवालापन किसी अन्य शहर में बिरला ही देखने को मिलता है। स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, उसकी घटनाओं का लेखा अथवा प्रसंगों की गणना मात्र नहीं है, और न ही वह केवल चरित्र विवरण ही है, वह एक जीवित समाज की समग्र प्रक्रिया है, जिसके द्वारा उनके मस्तिष्क और ह्दय को स्वतंत्र होने की गतिमय आन्तरिक प्रवृति की अभिव्यंजना दिखाई देती है। हरदा शहर ने इन सबको न केवल सार्थक किया वरन् अन्य क्षेत्रों के लिए उदाहरण भी प्रस्तुत किया। आदरणीय महेश चाचा मुझे सदैव से ही प्रेरित करते रहे कि अपने जन्मस्थान के स्वाधीनता संघर्ष पर शोध कार्य कर उसका ऋण चुकाओ मैंने उनके ही निर्देशन में **होशंगाबाद एवं पूर्व निमाड़ (खंडवा) जिलों में स्वाधीनता संघर्ष का इतिहास** विषय पर शोध कार्य कर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। हरदा का घंटाघर, जत्रा-पड़ाव, गुप्तेश्वर मन्दिर, मिडिल व हाई स्कूल, बारह बंगले व चिन्द्रा इमली आज भी याद आते हैं। डोलग्यारस पर घंटाघर पर होने वाली कव्वाली, नागपंचमी पर मिडिल स्कूल ग्राउण्ड का दंगल, सब्जी बाजार में रखे जाने वाले ताजिये कभी-भूल ही नहीं सकता। लच्छू कप्तान के रसीले भाषण, बाबूलाल का घण्टाघर पर अंतहीन बड़बड़ाना मानो वर्षों शहर की पहचान बनी रही। बचपन से हाईस्कूल तक अनेक श्रद्धेय गुरूजनों के सम्पर्क में आया जिनकी प्रेरणा व आशीर्वाद आज भी मेरी सम्पति बनी हुई है। आज भी हरदा जाने का जब अवसर मिलता है, मन पुलकित हो जाता है। अखबारों में जब भी हरदा का समाचार पढ़ता हूँ, अनायास ही सारी स्मृतियां सजीव हो उठती हैं।

घंटाघर के पास आज भले ही खूब रौनक हो गयी हो, किन्तु तब का घंटाघर अपने घर का आंगन सा लगता था।

स्कीम नं. ७४ डी.एच. सेक्टर विजय नगर, इंदौर

मेरी संस्कारधानी हरदा

डॉ. नरेन्द्रदत्त भार्गव

यह अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध सूक्ति है कि वयस्क होकर हम कितने सुसंस्कृत होगें, इसका बीजारोपण बचपन में ही हो जाता है। मैं आज जो कुछ भी हूँ, वह हरदा में हुई मेरी शिक्षा-दीक्षा का सुपरिणाम है। मेरा बचपन हरदा में बीता, यहाँ मेरी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। यहीं से संस्कार मिले। यहीं मुझे मेरा रूप, रंग और मेरी अपनी पहचान विकसित हुई। मैं भाग्यशाली हूँ कि मेरा जन्म हरदा में हुआ। उपयुक्त जलवायु, उपजाऊ जमीन और प्रबुद्ध सामाजिक मान्यताओं के साथ, आम और खास लोगों का संगम स्थल है, हरदा। यहाँ के लोग जहाँ कही भी गये उन्होंने अपनी अलग पहचान बनाई। जब भी इस शहर का नाम आता है, मेरा मन इन्द्रधनुषी रंगों से भर जाता है। पुरानी माटी की सौंध सांसों में भर जाती है। यादों के झरोखों में हरदा को याद करना एक सुखद अनुभूति है।

मैनें जत्रापड़ाव के स्कूल में प्रायमरी की शिक्षा प्राप्त की। जीन सड़क के चौहान मास्साब और बड़े मन्दिर के पंडित जी आज भी याद है, वे कड़क पर सह्दय थे। 'मास्टर साहब' कहीं दूर से भी दिख जायें तो हम भाग कर गली में छिप जाते थे। शहर के सब लोग एक परिवार के समान थे। हमारी शरारत पर मोहल्ले के किसी भी बुजुर्ग को तमाचा जड़नें का अधिकार था। घर आकर शिकायत करने पर जवाब मिलता कि "तुमने ही गलती की होगी।" आपस में अगाध विश्वास, सामंजस्य और स्नेह जनित अनुशासन हुआ करता था। मिडिल स्कूल के भवन की आदर्श वास्तुकला व विशाल मैदान आज भी गर्व की अनुभूति देता है। उन दिनों भाषा में शुद्धता थी। व्याकरण, नींव मजबूत करती थी। खेल व चरित्र निर्माण पर विशेष ध्यान रहता था। श्रद्धेय मुमताज अली, मनोहर दुबे, रामलाल दुबे व शिवराज मासाब यादों में है। स्कूल से भागकर नदी पर नहाने और शर्त लगाकर, खेतों की

बागुड़ लांघने का अलग रोमांच था। बच्चों के खेल गोपनी, गुल्ली डण्डा हुआ करते थे। मोहल्ले के सभी लड़कों को अलिखित नियम के तहत अखाड़े जाना व कबड्डी खेलना अनिवार्य था। हमारे समय श्री चंद्रगोपाल सोनी 'चंदू खलीफा' अखाड़े के प्रमुख थे। वे वक्त पर काम आने वाले, मददगार व्यक्ति हैं, ईश्वर उन्हें दीर्घायु करें। छुट्टियों में सभी रिश्तेदार हमारे यहाँ इक्ट्ठे होते थे। बहुत सारे बच्चे, शरारतें, शरारतों की सजा, उन सबका आनंद ही अलग था। एक घर में हम सौ-पचास लोग एक साथ एक-दो दिन नहीं, महीनों तक रहते थे। हमारे सभी भाई विशेषकर आदरणीय राजा भैया पढ़ने के शौकीन थे। घर में अच्छी साहित्यिक पत्रिकाएँ, कहानी व उपन्यास उपलब्ध रहते थे। अच्छा साहित्य दिमाग के खिड़की दरवाजे खोल देता है। उन दिनों बच्चों व युवकों के लिए दो अच्छी संस्था कार्यरत थी। बाल विकास मन्दिर (बी.वी.एम.) और ए.बी.एम.। मैं, बी.वी.एम. मे जाता था। जिसके संस्थापक श्री बालकृष्ण अग्निहोत्री थे। पी.टी., कबड्डी, खो-खो, सामान्य ज्ञान और सबसे अहम् चरित्र निर्माण संबंधी गतिविधियां सहज उपलब्ध थीं। बालू भैया का उद्धेश्य पवित्र था। ए.बी.एम. भी एक अच्छी संस्था थी। स्व. श्री शांताराम काका इसके प्रमुख थे।

15 अगस्त और 26 जनवरी की अल सुबह झण्डा वंदन हो जाता। सभी स्कूलों में लगभग शतप्रतिशत उपस्थिति होती। प्रभात फेरी भी निकलती थी। आजादी के बाद का समय था। उस समय सभी उम्र के लड़के अपने कमरों में, गाँधीजी, नेहरूजी, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, रविन्द्रनाथ टैगोर, चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह की फोटो रखते थे। कमरे की दीवारों पर सुघड़ सुभाषित, मुहावरे लिखे होते थे। आदमी के संस्कार 5-15 वर्ष की उम्र में पड़ते हैं। उम्र के इसी पड़ाव में आदमी का मूल स्वभाव निर्मित होता है। बाद में कितना भी सत्संग में जाए, प्रवचन सुनें संस्कार वही रहते हैं। शहर का वातावरण धार्मिक था। रामसत्ता, रामलीला, अखण्ड रामायण, भागवत कथा, नियमित रूप से आयोजित होती रहती थी। घर में बिना स्नान, पूजा के खाना नहीं मिलता था। सत्यनारायण की कथा, प्रदोष, घर में गणेश जी की स्थापना और झाँकी, जन्माष्टमी का आयोजन, शाम को मन्दिर की आरती में जाना, हड़ताली का जागरण (मिठाई फल का लालच) कार्तिक में सुबह चार बजे नदी स्नान, सवा लाख अनाज के दाने या फूल गिनकर चढ़ाना, सक्रांति में सुबह का स्नान, फिर तिल्ली के पकवान, पार्थेश्वर, होली में लकड़ी चुराना, टेसू, सांझा, दीपावली की रात, घंटाघर के चारों कोनों से अग्निवाणों का मुकाबला, दूसरे दिन जुलूस की शक्ल में हर चौराहे पर गजगुण्डी, हलवाई जी की गुड़पट्टी, ऐसी अनगिनत यादें अपनी अमिट छाप छोड़ गई हैं। हरदा मेरी संस्कारधानी है।

हरदा की सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियाँ उच्च स्तरीय थीं। हरदा के लोग प्रबुद्ध हैं। अच्छी हिन्दी बोलते है, कवि सम्मेलन हरदा में सफल रहते हैं। हरदा मालगुजारों,

काश्तकारों और व्यापारियों की बस्ती रही है। लोग शिक्षा के लिये, बनारस, अलाहाबाद, नागपुर और जबलपुर जाते थे, हरदा में प्रबुद्ध वर्ग की संस्थायें आज के मुकाबले ज्यादा थीं। वकीलों की संस्था 'बार एसोशियेसन' की साख थी। हरदा के वकीलों को हाईकोर्ट तक सम्मान प्राप्त था। हमारे पितामह स्वर्गीय श्री रामेश्वर दास गार्गव उनके छोटे भाई स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गार्गव व हमारे पिता स्वर्गीय श्री नर्मदा प्रसाद गार्गव भी इस संस्था के सम्मानीय सदस्य रह चुके हैं। प्रगतिशील विचारों वाली महाराष्टीयन समाज का हरदा के सामाजिक व सांस्कृतिक परिदृश्य में अहम स्थान रहा है। दादा भाई गांधी वादी थे, प्रो. महेशदत्त मिश्र राजनीति के अलावा शिक्षाविद भी थे। श्री रामेश्वर अग्निभोज, पंडित रविशंकर शुक्ल के मंत्रीमंडल में मंत्री थे, वे सांसद भी रहे। श्री नन्हे लाल पटेल ने, गुर्जर समाज को संगठित किया, वे सज्जन व सरल व्यक्ति थे, श्री रामदीन पटेल से उनकी मित्रता मिसाल थी। सच्चे समाजवादी लच्छू कप्तान को सलाम। हाजी सेठ खुली विचार धारा के व्यक्ति थे, श्री चांदरतन सेठ, मुन्नालाल पंडित जी सभी चर्चित व्यक्ति थे, तिवारी स्टोर्स पर शहर के गणमान्य लोगों की बैठक हुआ करती थी। घंटाघर के आस पास में मित्रों के साथ बैठकर जो बातें होती, जैसे वियतमान में शांति के लिये संयुक्त राष्ट संघ को प्रस्ताव भेजना शायद हरदा में ही संभव है। स्वतंत्रता संग्राम में हरदा से बहुत लोगों ने भाग लिया। हमारे पिता स्वर्गीय नर्मदा प्रसाद गार्गव स्वतंत्रता सेनानियों की अग्रणी पंक्ति में, प्रो. मिश्र व श्री रामेश्वर अग्निभोज के साथ रहे। वे बाद में शासकीय सेवा में चले गये, और स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भागीदारी विस्मृत हो गई। श्री रामनारायण अग्रवाल, बंसी बाबू, सेठ विट्ठलदास 501, चम्पालाल जी सोकल, नाजर जी उनके साथी रहे। 1857 के गदर में गढ़ी पर ठाकुर साहब ने झंडा फहराया था। मैं उन्हें नमन करता हूँ। मिडिल स्कूल के वॉलीबाल ग्राउंड पर सरदार हरवंश सिंह का खेल आज तक याद है। उनकी टीम ने कई टूर्नामेंट जीते थे। कबड्डी हरदा का 'नेशनल गेम' था, श्री शिवराज सिंह वर्मा एक समय हरदा के खेल जगत की शान थे। यह हरदा का दुर्भाग्य रहा कि पारिवारिक परिस्थितियों के चलते वे ओलंपिक में मेराथान रेस में भाग नहीं ले सके, वे इसके लिए क्वालीफाई करते थे। अदालत के पीछे यूनियन क्लब था। साफ सुथरे खेल के कपड़ों में सजे, भद्र लोग नजाकत से लॉन टेनिस खेलते थे। जब हम छोटे थे, तो बड़े होकर इस क्लब में खेलने के सपने देखा करते थे। यूनियन क्लब प्रदेश के प्रतिष्ठित क्लबों में से एक है। सुना है आजकल शासकीय अधिकारियों की पैतरे बाजी चल रही है। हरदा अब जिला मुख्यालय जो बन गया है। दुनिया अब बदल चुकी है, हरदा भी बदला है। गिल्ली डंडे, कबड्डी, खो-खो अब इतिहास बनते जा रहे है। बच्चे टेलीविजन के सामने बैठे हैं। शारीरिक व्यायाम समाप्त प्राय हैं। संस्कृति, शुचिता संस्कार, अनुशासन, स्नेह, जैसे शब्द सिर्फ किताबों में मिलते है।

हरदा का इतिहास वैभवशाली और सशक्त है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाये तो हरदा में अपेक्षित विकास नहीं हुआ। कृषि और वनोपज आधारित उद्योग की स्थापना की जानी चाहिए। वनोपज और नैसर्गिक संसाधनों का दोहन नहीं हुआ। हरदा के लोगों को पढ़ने लिखने और खेलने का शौक था। मेरे ख्याल से यह शौक अभी भी बरकरार है। हरदा में एक अच्छा शिक्षा केन्द्र स्थापित करने की पूरी संभावना है। हरदा में पारम्परिक और भारतीय खेलों के विकास की भी पूरी संभावना है। विकास की दौड़ में हरदा पिछड़ गया। इंदौर और भोपाल के बीच फोरलेन रोड बनाकर औद्योगिक विकास को गति दी जा सकती है। हरदा के आस पास प्राकृतिक सौंदर्य भरा पड़ा है। यहां महत्वपूर्ण पुरातत्व स्थल हैं। हरदा एक पर्यटन स्थल के रूप में विकसित किया जा सकता है। हरदा आज भी सृजनात्मक संस्कार और ऊर्जा से लबरेज है। एक अच्छी पहल होनी है। हरदा को एक रहनुमा की तलाश है।

कौन कहता है आसमां में सुराख हो नहीं सकता।
एक पत्थर तो तबीयत से, उछालो यारों।।

57 एम.एल.ए. क्वाटर्स जवाहर चौक, भोपाल

ज्ञानेश मोहे हरदा बिसरत नाही

प्रफुल्ल निलोसे

भाई ज्ञानेश का फोन आया है। हरदा की कुछ यादें, संस्मरण लिपिबद्ध कर के भेज दें। दो माह से ऊपर गुजर गया है और मैं इसी उधेड़बुन में हूँ कि क्या लिखूं क्या छोडूं ? कहाँ से शुरू करूं कहाँ खत्म करूं। हरि अनंत, हरि कथा अनंता। अब हरदा कोई ऐसी वैसी जगह तो है नहीं कि बस घंटाघर टोन्ढाल (टाउनहाल) कचेरी और दो चार मोहल्लों की बातें लिख दो और हो गया, हरदा तो हरदा ही है ना भाई।

सन् 1959 में बाबूजी के रिटायर होने पर हमारा परिवार हरदा आकर बस गया। मैं तब 11 वर्ष का था और कक्षा 9 का छात्र था। तब से 1990 तक तो हरदा से गहरा संबंध रहा पर उसके बाद संपर्क कम होता गया। हॉलाकि अभी भी साल में 1-2 बार आना तो हो ही जाता है भले ही कुछ घंटों के लिये। तो भैया मेरा हरदा साठ सत्तर और अस्सी के दशक का है जबकि मैंने बचपन से किशोर और युवावस्था से गुजरते हुए, अधेड़ावस्था में प्रवेश किया। स्वाभाविक है, मेरे इस हरदा में फाका मस्ती, उत्साह है, जोश है और एक तरह का फक्कड़पन है आप मुझे हरदा से निकाल सकते है पर हरदा को मेरे दिल से नहीं निकाल सकते। अब मुश्किल यह है, इस सब को 2-3 पृष्ठों में कैसे समेटा जाये। ज्ञानेश भाई तो कह देंगे ना कि 'भैया 2-3 पेज में ही निपटाओ। अब आप कोई जलोदे की तोप तो हो नहीं कि मन मर्जी से जित्ते चाहो उत्ते पेज भर दो (अनभिज्ञ पाठकों के लिये जिलाधीश कार्यालय के प्रांगण में जो तोप रखी हुई है वह पहले नर्मदा किनारे स्थित ग्राम जलोदा में हुआ करती थी। जलोदे की तोप, मुहावरे के तौर पर प्रयोग किया जाता था) तो मैं कोशिश करता हूँ हरदा के तब के सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, साहित्यिक पारिवारिक माहौल को पकड़ने की कुछ वर्णन, कुछ संस्मरण, कुछ प्रथाएं, और कुछ संवाद।

मैं प्रारंभ गुरूवंदना, गुरू वर्णन और शिक्षा क्षेत्र से करता हूँ। श्री नर्मदा प्रसाद चौबे कक्षा 8वीं में मेरे कक्षा शिक्षक थे। लंबा डील डौल, कड़क आवाज, सख्त अनुशासन और समर्पित शिक्षण, मैं पढ़ने में अच्छा था। कक्षा 6 और 7 में प्रथम आया था और सर का प्रिय छात्र था। पर तकदीर का खेल आठवीं की छमाही परीक्षा में मैं द्वितीय हो गया। आठवीं 'ब' के भाई सोहराब खंभाटा, जो कि ज़ाकिर अली सर के छात्र थे, मुझसे आगे निकल गये। चौबे

सर काफी क्षुब्ध रहे, मुझसे 2 दिन बात नहीं की। मेरे घर आये, मेरे पिताजी से शिकायत की मैं आजकल पढ़ता-लिखता नही आदि। दुर्भाग्य कक्षा 8वीं की वार्षिक में भी मैं द्वितीय ही रहा, और सर नाराज ही रहे। क्षमा उन्होंने तभी किया जब मै नवीं में पुन: प्रथम आया। वे ऐसे शिक्षक थे - हमेशा ऊंचाइयों को छूने की प्रेरणा देने वाले। हरदा शिक्षकों के मामले में भाग्यशाली रहा है, अच्छे शिक्षकों की बहुलता रही है। हरदा में सर्वश्री हरगोविंद गार्गव, हरिशंकर तिवारी, गोपीकृष्ण जोशी, जाकिर अली, मधुकर मुजुमदार, विजयशंकर तिवारी, अनंत टिकलकर, के.आर. विश्नोई, रायजादा साहब, नारायण प्रसाद तिवारी, बी.सी. लोकरे, सारे एक एक करके स्मृति पटल पर आते जा रहे हैं इन्होंने हरदा को जीवन दिया है, आने वाली पीढ़ियों को बनाया है।

तब ज्यादा स्कूल नहीं थे। प्राथमिक शालाएँ तो कई थीं, पर मिडिल स्कूल एक और हाई स्कूल एक। सन् 1960-61 के आसपास कुछ गणमान्य वकीलों ने 'लॉ' की कक्षाएँ चालू की थीं, सर्वश्री मुमताज अली, श्री चिंतामण बापट, रामनारायण अग्रवाल, चंपालाल पारे। आने वाले वर्षों में कला और वाणिज्य महाविद्यालय में परिवर्तन हुआ। उन्हीं दिनों, हरदा के कुछ उत्साही और शिक्षा-प्रेमी लोगों ने गुलजार भवन में 'हरदा-पॉलिटेक्निक' प्रारंभ किया। तब यह प्रायवेट कॉलेज था। मेरे बाबूजी लगभग 3 वर्ष इसमें हेड-क्लर्क रहे। कुछ वर्षों बाद यह सरकारी हो गया और हंडिया रोड पर अपने भवन में चला गया। शिक्षा के अलावा हरदा सदा से साहित्यप्रेमी भी रहा। नदी किनारे पुरानी सब्जी मंडी-शंकर मंदिर के पास नगर पालिका का वाचनालय था। वहाँ पर अच्छी पुस्तकें थीं और वहाँ जाना कई लोगों की दिनचर्या में शामिल था। अपने हाई स्कूल के तीन वर्षों के दौरान मैंने लगभग सभी अच्छे लेखकों के उपन्यास-कहानियां पढ़ डाली थी। अन्य छोटे शहरों की तरह हरदा में भी कविता सुनने-सुनाने की परंपरा थी। अधिकांश शिक्षक कविताएँ भी लिखते थे और अपने छात्रों को भी प्रोत्साहित करते थे। स्वाभाविक है, हर माह छोटे बड़े कवि सम्मेलन होते रहते थे। कुछ गंभीर साहित्य चर्चा भी हुआ करती थी। कभी गोपीकृष्ण जोशी जी के घर या कभी विजय शंकर जी तिवारी के भाई उमाशंकर तिवारी जी की घंटाघर स्थित किताबों की दुकान पर। माणिक वर्मा की पहचान बन गई थी और अपने वाले दिनों में भाई माणिक वर्मा हरदा की पहचान बन गये। टॉउन हाल के सभागृह में कितने ही कवि सम्मेलनों का आनंद लिया है। पर मिडिल स्कूल ग्रांउड पर होने वाले बड़े कवि सम्मेलनों की बात ही कुछ और थी। बात से बात निकलती है, और जब मिडिल स्कूल ग्राउंड की बात निकली है तो मैं विषय बदल रहा हूँ। बोलचाल की भाषा में इसे 'गिरोन' कहा जाता था। हरदा में कुछ और भी ऐसे ही मजेदार अपभ्रंश थे या हैं, जैसे टोन्हाल या टोंढाल (टाउन हाल) पपिंजन (पंप इंजन) या फिर गल्ला मंडी जिसे अड्डा कहते हैं। बंसी बाबू (श्री बंशीलाल अग्रवाल) के पेट्रोल पंप से लगा हुआ पासी सा. का 'बिरकसाप' (वर्कशाप) भी हुआ करता था। तब यह ग्राउंड

काफी खुला-खुला सा था। हंडिया रोड से लगी दो इमारतें, एक लाल और एक सफेद। गुलजार भवन के सामने गर्ल्स हाई स्कूल बस। हरदा के हर छोटे-बड़े उत्सवों-मेलों का साक्षी मिडिल स्कूल ग्राउंड। कभी दंगल, कभी कवि सम्मेलन, कभी किसी नेता का भाषण कभी 26 जनवरी या एन.सी.सी. की परेड।

हरदा के नागरिक राजनीति के प्रति सदा जागरूक रहे। आजादी से पहले स्वतंत्रता आंदोलन में और बाद में साफ-सुथरी राजनीति जो शनै:शनै: घटिया होती गई। उन दिनों कांग्रेस का ही वर्चस्व था। महेशदत्त मिश्र-सांसद और लक्ष्मणराव नाईक विधायक ने लंबे समय तक हरदा का प्रतिनिधित्व किया। काम तो ठीक ठाक ही किया पर छवि दोनों की साफ-सुथरी थी। कम्युनिस्ट पार्टी के लच्छू कप्तान और मंजुला बाई कांग्रेसियों को कड़ी टक्कर देते थे। जनसंघ और प्रजा समाजवादी पार्टी मजबूत नहीं थे। हिंदू महासभा भी कुछ वोट बटोर लेती थी, पर चुनाव के दिनों में अच्छी रौनक हुआ करती थी। मिडिल स्कूल ग्राउंड और घंटाघर पर काफी सभाएँ होती थीं और लोग सुनने के लिये बड़ी संख्या में उपस्थित होते। मैं भी लगभग सभी पार्टियों के भाषण सुनने जाया करता था, 1971 में आयु 21 वर्ष थी।

खेल कूद के मामले भी में हरदा का माहौल अच्छा था। एक और शांताराम 'काका' नाईक आदर्श बालकमंदिर चलाते थे। कचेरी के सामने वाले मैदान में खेल हुआ करते थे। आमतौर पर इसे 'टीम' कहा जाता था और इसमें महाराष्ट्रियन लोगों की बहुलता होती थी पर कुछ गैर महाराष्ट्रियन भी यहाँ महत्व रखते थे क्रिकेट, टेबल-टेनिस, हॉकी और खो-खो में इनकी जबर्दस्त पकड़ थी। दूसरी ओर हरदा की कबड्डी टीम होशंगाबाद से बुरहानपुर और बैतूल तक राज करती थी। कुल हरदा, मानपुरा, गढ़ीपुरा, फाईल आदि की टीमें तगड़ी थीं। कचहरी के पीछे यूनियन क्लब में टेनिस लोकप्रिय था।

अन्य सभी छोटे शहरों की तरह हरदा का भी सामाजिक ताना बाना सरल था। आस पास के गाँवों के लगभग सभी सपन्न जमींदार लोगों के हरदा में घर थे। इनमें अधिकांश जाट, विश्नोई, गुर्जर आदि थे, फिर अग्रवाल, जैन, माहेश्वरी और ब्राह्मण परिवार इनके अलावा मुस्लिम एवं अन्य समाजों के लोग थे। इन समुदायों के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा रहा करती थी। हम लोग नार्मदीय ब्राह्मण हैं। 1971 की जनगणना में हरदा की जनसंख्या लगभग 16 हजार थी। सन् 1970-71 के आसपास तक सड़क पर पंगत हुआ करती थी। जबकि दूसरे कई समाज काफी पहले इस प्रथा को बंद कर चुके थे। दरअसल दोस्त लोग नारमदेवों की पंगत का काफी उपहास भी उड़ाया करते थे। पंगत जीमने के लिये घर से लोटा-गिलास ले जाना सामान्य था और प्रसिद्ध यह था कि लोग बाग पंगत से लौटते हुए कुछ लड्डू-सेव

लोटे में भर लाते थे। आज शादी के रिसेप्शन में सूट-बूट पहन कर 'बुके' लेने वाली पीढ़ी को 'सड़क की पंगत' का कंसेप्ट पचेगा नहीं, पर यह यथार्थ है। सौभाग्य वश 1974 में मेरी शादी तक यह प्रथा समाप्त हो चुकी थी। मेरी शादी खेड़ीपुरा स्थित नार्मदीय धर्मशाला से हुई थी।

यातायात के मामले में हरदा उस वक्त काम चलाऊ था और बाद में बद से बदतर होता गया। 'वाटरिंग स्टेशन' होने के कारण सभी मेल-एक्सप्रेस ट्रेन हरदा रूकती थी। तब स्टेशन पर 8-10 कुली होते थे और बाहर 15-20 तांगे। आज मुश्किल से 1-2 कुली हैं जो अब नहीं मिलते और बाहर आटो रिक्शा वाले इतने सज्जन नहीं हैं। हरदा से भोपाल, खंडवा और इंदौर की सड़कें सकरी और खराब भी। इंदौर की सड़क अब ज्यादा खराब है। पहले हरदा से भोपाल के लिये 5 बसें सीधी जाती थीं। आज हरदा से भोपाल यात्रा अति-दुखदायक है। बस से जाने के लिये होशंगाबाद में बदलना पड़ती है। लंबी दूरी के मेल एक्सप्रेस गाड़ियों में सामान्य डिब्बे में यात्रा सजा से कम नहीं और रिजर्वेशन हमेशा मिलता नहीं। यह समझ से बाहर है भोपाल से सागर, दमोह, पिपरिया, इंदौर, धार, ग्वालियर गुना आदि सब जगहों के लिये दिन भर सीधी बसें चलती हैं, सिर्फ हरदा-खंडवा को छोड़कर। सन् 1975 के पहले हंडिया में नर्मदा पर पुल नहीं था। अब पुल तो है पर सड़क इतनी खराब है कि लोग खंडवा होकर आना ही पसंद करते हैं। इन सब बातों के अलावा हरदा बना है, अपनी प्रथाओं से, अपने तौर तरीकों से।

मुझे विश्वास है - आज नागपंचमी है, मिडिल स्कूल ग्राउंड पर दंगल का आयोजन है, कुलहरदा का ''पेलवान'' जीत कर जाता है, ढोल-नगाड़े और भीड़, जनता कुश्ती की शौकीन है, और ये डोल-ग्यारस आ गई, लंबे जुलूस, कन्हैया मंदिर का डोल और अग्रवाल समाज का डोल सबसे शानदार, हरनारायण मामा भोले शंकर बन कर नाच रहे हैं, आज शिवरात्रि है तो सबको नदी के पार गुप्तेश्वर मंदिर ही जाना है। उस जमाने में घंटाघर के आसपास चलने फिरने की जगह होती थी। कोने में बिजली के खंभे के सहारे एक ब्लैक बोर्ड होता था जिस पर नगर पालिका के नोटिस कम और 'जनता की आवाज' ज्यादा लिखी जाती है। यह उस जमाने का 'ब्लाग' या के फेस बुक की 'वाल' हुआ करता था।

लच्छु कप्तान (कम्युनिस्ट पार्टी) का जुलूस निकल रहा है। वे एक पैर से लाचार थे अत: तांगे पर बैठ कर जुलूस की अगुवाई करते नेहरू और कांग्रेस की धज्जियां उड़ाते और अपने आपको 36000 हरदा वालों का लाड़ला कहते थे। (यह बात अलग है कि 62 और 67 के चुनावों में जीत नहीं पाये।) हरदा कवि सम्मेलनों के लिये जाना जाता था, तुलसी जयंती, गाँधी जयंती, गणेशोत्सव, दशहरा, हिन्दी दिवस पर कवि सम्मेलन जरूर किया जाता था।

चंद्रसेन विराट, देवराज दिनेश, सुल्तान मामा आदि कवि लगभग हर वर्ष आते थे। प्रथा के अनुसार पहले लोकल कवियों को कविता पाठ के लिये आमंत्रित किया जाता व बाद में मेहमान कवियों को। अपने हरदा की बातें करने में प्रफुल्ल निलोसे कहीं खो सा गया, पर उसे भी एक बार वापस बुलाना होगा। क्योंकि वही तो यह सब लिख रहा है।

मेरी बहुत सी उपलब्धियों की शुरूआत हरदा से हुई, मिडिल स्कूल व हॉयर सेकेण्डरी में मेरिट छात्रवृत्ति मिली। 1964 में नर्मदा संभाग में सृजनात्मक लेखन के लिये प्रथम पुरस्कार और हॉयर सेकेण्डरी में सभी विषयों में विशेष योग्यता। कॉलेज जाने पर नेशनल मेरिट स्कॉलरशिप मिली, हमारा 1965 का हॉयर सेकेण्डरी का बैच उन दिनों मिसाल माना जाता था। मेरे अलावा पुरूषोत्तम अग्रवाल व किरण नाईक एम.ए.सी.टी. भोपाल में, ओमप्रकाश यादव शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज जबलपुर, दो अन्य जी.एस.आई.टी.एस. इंदौर, सहदेव पासी, मनोहर अग्रवाल मेडिकल कॉलेज भोपाल और ओमप्रकाश अत्रे व श्याम साकल्ले रीजनल कॉलेज गये थे। एम.ए.सी.टी. में हम तीनों हरदा-वासी एक ही रूम में रहते थे। हमारा रूम 'हरदा-हाउस' के नाम से जाना जाता था। हम लोग हरदा की इतनी बातें किया करते थे कि कई अन्य मित्रों को कहना था कि 'हम हरदा कभी गये नही पर लगता है, वहाँ के हर गली कूचे से वाकिफ है।'

इतने वर्षों में हरदा काफी बदला है। मोटर साईकल, ट्रैक्टरों के शोर में तागें के घोड़ों की टाप खो गई है जो बता देती थी पठानकोट या काशी आ गई है। हंडिया रोड, गांधी चौक, शिवाजी गंज, सब जगहों बाजार ही बाजार, भीड़ ही भीड़। सड़क पर चलना दूभर हो चला है। गर्मी के दिनों में सिरपर टोकरी भरकर आम 'आम ली ल्यो आम' की आवाज भी खो गई है। पता नही हाई-स्कूल के प्रांगण में इमली के पेड़ पर अब इमली लगती है या नहीं, इस पेड़ की इमली तोड़ने के चक्कर में हरदा के आज के बहुत से वरिष्ठ नागरिक, शिक्षकों से पिट चुके हैं। नदी किनारे शंकर मंदिर में संस्कृत पाठशाला चलती है या बंद हो गई ? अब हरदा में मोबाइल है, इंटरनेट है, कृषि के बड़े बड़े यंत्र हैं, जिला है, जिले के कार्यालय हैं, बहुत से कॉलेज और स्कूल हैं पर बहुत से लोग खो गये। बाबूजी खो गये, बाई चली गई, पर मेरे पासपोर्ट में जिसमें दर्जनों देशों की यात्राएँ दर्ज हैं, स्थायी पता लिखा है - '67 राणा प्रताप वार्ड, हरदा।' यह बात और है कि यह घर भी लगभग बिक चुका है। हरदा से जोड़ने वाली एक और कड़ी टूट रही है। पर बात यहीं आकर टिकेगी, आप मुझे हरदा से निकाल सकते है, पर मेरे अंदर से हरदा को बाहर नहीं निकाल सकेंगे, और अंदर से यही आवाज आयेगी, मोहे हरदा बिसरत नाहीं ....

ए-1504 इटार्निया, हीरानंदानी गार्डन मुंबई

संतो की संस्कारी-भूमि : हरदा

रामदास मांगीलाल छलोत्रे

हरदा मेरा गुरूकुल रहा है, और मातृभूमि के समान मैं हरदा का सम्मान करता हूँ। मेरा जन्म स्वतंत्रता पूर्व 21 अक्टूबर 1937 को ग्राम रहटाकलां में, श्री रघुसंत महाराज की पुण्य स्थली में हुआ था। पिता श्री मांगीलाल जी छलोत्रे, आजा श्री रामभाऊ जी छलोत्रे, मध्यम कृषक थे। पिताजी केवल प्राथमिक पाठशाला तक ही पढ़े थे। ग्राम रहटाकलां में महाराष्ट्रीयन, नार्मदीय व सनाड्य ब्राह्मण भी कृषि से जुड़े थे। ब्राह्मण परिवारों में से बहुत से लोग हरदा, इंदौर शिक्षा व रोजी-रोटी के लिए निकल गये थे। उनके सत्संग से आये दिन पराधीन भारत के शासकीय सेवकों का व्यवहार व रूतबा देख, पिताजी के मन में टीस होती थी तथा उन्होंने संकल्प लिया कि वे अपने बच्चों को आगे पढ़ायेंगे ताकि हीन व उपेक्षित भावना से उबरकर समाज में सम्मानित जीवन जी सके।

हम तीन भाईयों में स्व. श्री राधेश्याम ने ग्राम पाठशाला की पढ़ाई कर कृषि कार्य सम्हाल लिये। मेरे आजा श्री रामभाऊ जी ने मुझे व छोटे भाई श्रीराम को पढ़ाने का संकल्प लिया। तत्कालीन परिस्थितियों में साधनों के अभाव में कृषि आय तो परिवार को पालने में ही व्यय हो जाती थी। परिस्थितियों से समझौता कर मैंने व छोटे भाई श्री राम ने हरदा से हाईस्कूल परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास कर क्रमशः बी.ई. व डिप्लोमा (सिविल) पास किये।

मैंने परिवार में कई दुःखद अवरोध के कारण बहुत बिलंब से वर्ष 48-49 में रहटाकलॉ प्राथ. शाला से तीसरी कक्षा उत्तीर्ण की। उस समय वहाँ तीसरी कक्षा तक ही स्कूल था। मेरी आगे पढ़ने की जिज्ञासा के कारण, मेरे गुरूजी स्व. श्री बाबूराव जी चैतन्य जो ग्राम रहटाकलॉ के ही थे अथक प्रयास से मुझे केवल एक छात्र को चौथी की पढ़ाई कराई।

मैं ग्राम रोलगाँव प्राथमिक पाठशाला केन्द्र से परीक्षा देकर उत्तीर्ण हुआ। उस समय रहटाकलॉ से हरदा या तो 20-22 कि.मी. कच्चे रास्ते से बैलगाड़ी से जाना होता था या मसनगाँव रेल्वे स्टेशन 8 कि.मी. पैदल आना होता था। सड़क नहीं थी बिजली नहीं थी। अधिकतर पैदल चलते थे।

वर्ष 49-50 जुलाई में नगरपालिका माध्यमिक शाला हरदा में प्रवेश लिया। वर्ष 1954 में आँठवी के बाद 1957 में नगर पालिका उच्च माध्यमिक शाला हरदा में शिक्षा लेकर महाकौशल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन जबलपुर से हाई स्कूल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। यह महाकौशल बोर्ड का प्रथम वर्ष था। उल्लेखनीय यह था कि पेपर सेट्स नागपुर बोर्ड द्वारा किये थे, परीक्षा महाकौशल बोर्ड द्वारा आयोजित की गई थी। वर्ष 1957 में मैट्रिक में हरदा से केवल तीन लड़के प्रथम श्रेणी आये थे जिनमें श्रवण कुमार दीपावरे, मैं तथा गोविंद प्रसाद अग्रवाल।

मिडिल स्कूल में अध्ययन के समय पाँचवीं से सातवीं कक्षा तक में गणेश चौक में ग्राम के ही मेरे सीनीयर श्री शरद व श्री रमेश चैतन्य भाईयों के साथ रहा। यह व्यवस्था, परम पूज्य बाबूराव जी चैतन्य जो रहटाकलां में गुरू थे, ने की थी। पड़ोस में रहटाकलॉ से जुड़ी इंदुबाई चैतन्य जो काशीबाई कन्या पाठशाला की प्राध्यापिका थी, परिवार सहित रहती थी। उल्लेखनीय है कि इंदुबाई ही पिता जी को हमेशा हरदा पढ़ने के लिए प्रेरित करती रही थीं। सातवीं की परीक्षा के बाद श्रीमती इंदुबाई जिसे मैं बुआ का सम्मान देता हूँ, ने गढ़ीपुरा में श्री हरिशंकर सेठ के घर के पीछे के मकान में शिफ्ट किया। उनके साथ ही मुझे भी एक खोली किराये से दिलवा दी। गढ़ीपुरा में, मैं मेट्रीक तक रहा उस समय मेरे कमरों में बिजली नहीं थी, पूरी पढ़ाई चिमनी के प्रकाश में ही पूरी की। मिडिल स्कूल स्तर तक के मित्रों में श्री लक्ष्मण राव चैतन्य, श्री अरविंद परूलकर, श्री प्रेमचंद जैन (काका) आदि मित्र रहे। हाईस्कूल के अभिन्न मित्रों में डॉ. महेश चन्द्र वशिष्ठ गोलापुरा, सुधाकर घन, भीकम चंद्र व्यास, किशनदेव पासी, प्राणेश अग्रवाल, केशव बंसल, डॉ. नर्मदा प्रसाद आदि उल्लेखनीय है। पूरे शालेय समय में खेलकूद मे अग्रणी रहा। उस समय मिडिल स्कूल का ग्राउण्ड हरदा नगर का, आकर्षण का केन्द्र था जहाँ हॉकी, फुटबाल, कबड्डी, खो-खो, वॉलीबाल व सभी एथलिट खेलों के आयोजन होते रहते थे। कबडड्‌ी व खो-खो की टीमों में पूरे कार्यकाल जिला स्तर खेलता रहा।

उस समय के गुरूजनों जिनसे मुझे प्रेरणा मार्ग दर्शन मिला, उनमें सर्व श्री गेंदालाल छलोत्रे, रमाशंकर पाँडे, ठाकुर दयाल सिंह तथा के.सी. शर्मा प्रधानाध्यापक मिडिल स्कूल उल्लेखनीय है। हाईस्कूल में श्री हरगोविंद गार्गव प्राचार्य, श्री लोकरे, श्री अग्रवाल, श्री जोशी,

श्री व्ही.के. तिवारी, श्री रामभाऊ शास्त्री, व श्री हरिशंकर तिवारी उड़ा वाले स्मरणीय है। वर्ष 1957 में मैट्रिक में कई विषयों में विशेष योग्यता के साथ मेरा प्रथम श्रेणी में आना, रहटाकलां से संबंध रखने वाली कई विभुतियों के लिए जो इंदौर निवास करते थे चर्चा का विषय बन गया। उसी समय, स्व. डॉ. विजयेन्द्र शास्त्री जो छात्र जीवन में इंदौर होलकर कॉलेज के प्रतिभावान छात्र रहे तथा बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे, रहटाकलां आये तथा पिताजी व दादाजी को मेरी प्रतिभा से परिचित करवाते हुए मुझे इंदौर इंटर सांइस हेतु भेजने का परामर्श दिया। मेरे घर की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी। यद्धपि 70-75 एकड़ में कृषि होती थी, किन्तु साधनों के अभाव में उपज बहुत कम होती थी। उन दिनों मैट्रिक के बाद अधिकांश लोग शिक्षक या शासकीय लिपिकीय सेवाओं में लग जाते थे। ऐसे ही विचार दादाजी व पिताजी के थे, किन्तु श्री विजयेन्द्र शास्त्री जिन्हे मैं 'दादा' सम्बोधित करता था, ने परिवार को मेरी कॉलेज शिक्षा हेतु न्यूनतम, आवश्यकता की समझाइश देकर मुझे अपने साथ इंदौर ले गये। वहाँ होलकर कॉलेज में इंटरमिडीएट सांइस के प्रथम वर्ष में दाखला करवा कर होस्टल में प्रवेश दिलवा दिया। उस समय होस्टल केवल 100 सीट का होता था। वर्ष 58-59 में मैनें इंटर साइंस किया। इंदौर में मेरे गार्जियन श्री विजयेन्द्र दादा थे, जो उस समय होलकर कॉलेज से केमेस्ट्री में एम.एससी. कर रहे थे उल्लेखनीय है, कि दादा के पिता श्री पं. रामकृष्ण शास्त्री ज्योर्तिभवन मल्हारगंज, प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य थे। श्री शास्त्री जी का परिवार मूलतः रहटाकला से ही है। उस समय रहटाकलां के ही पं. आचार्य जुगलकिशोर शास्त्री का मुझे इंदौर निवास में पितृ-तुल्य संरक्षण प्राप्त हुआ।

इंटर साईंस के बाद मैं दो राहों पर खड़ा था। उन दिनों मेडिकल, इंजीनियरिंग के लिए पी.एम.टी. एवं पी.पी.टी. परीक्षा नहीं होती थी। मैट्रिक की मार्कशीट पर मेरिट अनुसार व्यक्तिगत साक्षात्कार होकर प्रवेश मिलता था। मैने भी जबलपुर इंजीनीयरिंग कॉलेज हेतु आवेदन भरकर इंटरव्यू दिया था। इंजीनियरिंग के लिए मेरा चयन हुआ तथा मुझे गोविन्द राम सेक्सरिया इंस्टीयूट इंदौर दिया जो कि प्रायवेट मैनेजमेंट के अंतर्गत था। प्रायवेट कॉलेज होने से कॉलेज फीस रू. 400 प्रति माह थी, जबकि शासकीय कॉलेज जबलपुर व रायपुर में रू. 180 प्रतिमाह थी। शासकीय कॉलेजों में आवश्यक स्टेशनरी भी शासन की तरफ से विद्यार्थी को दी जाती थी, जबकि निजी कॉलेजों में पूरा व्यय विद्यार्थी को ही वहन करना होता था। इंदौर इंजीनीयरिंग कॉलेज का व्यय अधिक होने से मैंने बी.एससी. में एडमिशन ले लिया। लगभग 1 माह बाद मुझे तार द्वारा चयन समिति से सूचना प्राप्त हुई कि यदि मैं रायपुर शास. इंजीनीयरिंग कॉलेज ज्वॉइन करना चाहता हूँ तो 8 दिन में फीस जमा कर प्रवेश ले। इस सूचना पर मैं हरदा आया। हरदा में पूर्व शिक्षक व नगर पालिका अध्यक्ष समाज के सम्मानीय पू. श्री रामरतन लाल जी बागरे से भी मिला। उन्होंने परिस्थितियों पर ध्यान से

विचार कर, मुझे रायपुर जा कर इंजीनीयरिंग की पढ़ाई करने हेतु प्रेरित किया। इस पढ़ाई का आर्थिक बोझ परिवार पर बहुत रहा परन्तु पू. दादाजी व पिताजी ने कठोर परिश्रम कर कुछ कृषि आय, कुछ कर्ज लेकर मुझे इंजीनीयरिंग डिग्री व छोटे भाई श्रीराम को भोपाल से इंजीनीयरिंग डिप्लोमा करवाया।

माता पिता व गुरूजनों के आशीष से मैंने, बेचलर ऑफ इंजीनीयरिंग में सागर विश्वविद्यालय से मेरिट में चौथा स्थान पाया। गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ इंजीनीयरिंग एन्ड टेक्नालॉजी रायपुर में मुझे मेरे रीडर तथा प्रोफेसर डॉ. आर. खन्ना साहब का विशेष अनुगृह प्राप्त हुआ। 1963 में मैं इंजीनीयरिंग अंतिम वर्ष का छात्र था। यह समय 1962 में 'चाइना वार' के बाद का समय था। भारत सरकार रक्षा मंत्रालय द्वारा सेना में यांत्रिकी विंग में सेकेण्ड लेफ्टीनेन्ट की भर्ती हेतु कमीशन द्वारा, जनवरी-फरवरी 1963 रायपुर इंजीनीयरिंग कॉलेज का दौरा किया। मैं कमीशन के समक्ष उपस्थित हुआ जहाँ सामान्य ज्ञान व मेडीकल टेस्ट हुआ। मैं चयनित हो गया बी.ई. की अंतिम परीक्षा के बाद 'फायनल सिलेक्शन बोर्ड बेंगलोर' में बुलाने पर उपस्थित होना था। परीक्षा के बाद जब में गाँव गया और पिताजी तथा गाँव के प्रबुद्ध जनों को सेना में सिलेक्शन के विषय में बताया तो हौआ खड़ा हो गया। उस समय अपने क्षेत्र में सेना की नौकरी को भयावह तथा अशुद्ध माना जाता था। सेना की नौकरी का सुनकर वे क्षुब्ध हो गये, आखिर माहौल ऐसा बनाया कि मुझे बेंगलोर बोर्ड के समक्ष नहीं जाना है। वर्ष 1965 की पी.एम.सी. में मैंने टॉप करते हुए सहायक यंत्री का पदभार सम्भाला। सहायक यंत्री के पद पर लगभग 12 वर्ष अम्बाह जिला मुरैना, चंबल नहर निर्माण कार्य में, छुईखदान (राजनांदगॉव) भिलाई, बालोद (दुर्ग) आदि स्थानों पर रहा। वर्ष 1977 में कार्यपालन यंत्री पद पर पदोन्नति हुई। इस पद पर रहते हुए रायपुर, राजनांदगाँव, सबलगढ़, भोपाल, दतिया, रीवा एवं भोपाल रहा। वर्ष 1989 में अधीक्षण यंत्री पर पर प्रमोशन हुआ, इस दौरान भोपाल प्रमुख अभियंता कार्यालय एवं बिलासपुर रहा। वर्ष 1995 के आरंभ में मुख्य अभियंता के पद पर पदोन्नति हुई। दिसम्बर 1995 में सेवा-निवृत्त हो गया। सेवानिवृत्ति के बाद 1997 से 2006 तक म.प्र. के डेम सेफ्टी पेनल का सदस्य रहा। वर्ष 2002 से 2004 तक एन.आर.डी.ए भारत शासन नई दिल्ली में नेशनल क्वॉलिटी मॉनीटर रहते हुए प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना की उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बिहार, महाराष्ट्र, ओरिसा, कर्नाटक छत्तीसगढ़ तथा आंधप्रदेश की लगभग 351 सड़कों का निरीक्षण किया। वर्ष 2005 से 2007 तक म.प्र. शासन के पंचायत ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए स्टेट लेवल क्वॉलिटी मॉनीटर रहा। वर्ष 2008 से जनवरी 2010 तक नर्मदा विकास प्राधिकरण भोपाल ने इंदिरा सागर नहर परियोजना हेतु स्टेट क्वॉलिटी मॉनीटर नियुक्त किया जिसके तहत उक्त नहर का निरीक्षण किया। वर्ष 2004 में 'इंटरनेशलन पब्लिशिंग हाउस' द्वारा 'द बेस्ट सिटीजन ऑफ इंडिया अवार्ड' से नवाजा। मेरा जन्म रहटाकलां में हुआ जहां श्री गुरू

रघुसंत महाराज की जीवित समाधि बताई जाती है, हरदा आया जहां गुरूकुल रहा, संस्कार बने। मिडिल स्कूल ग्राउण्ड पर सुबह दौड़ने की सख्त सीख पिताजी ने दी थी, परिणाम स्वरूप अच्छा एथलेटिक बन गया, स्कूलों में पहचान बनी। महाविद्यालयों में कबडड्डी का अग्रणी खिलाड़ी रहा।

हरदा एक संस्कार वान शहर है, मैं जहां-जहां घूमा अपने को हरदा का ही निवासी बताता हूँ। मेरा मानना है कि रेवा के दोनों तट, संतों की भूमि है। जहां के लोगों की संस्कृति में एक प्रकार का खिंचाव है। क्षेत्र के लोग आत्म संतोषी हैं, धैर्यवान है, हरदा क्षेत्र के जनमानस में सतोगुणी अधिक, रजोगुणी न्यून संख्या में पाये जाते हैं। यही गुण स्पंदनों में समाया रहता है। अधिकतर सेवाएं छत्तीसगढ़ में रही जहां मित्रों का सुझाव होता था 'रायपुर में सेटल होने की योजना बनाओ' किन्तु मुझे हरदा आकर्षित करता रहा, वर्ष 70-72 में योग से श्री नवीन भाई बाफना से चलते फिरते भेंट हुई। बात-बात में उन्होंने एक प्लॉट रखने का सुझाव दिया। मैंने पिताजी से चर्चा कर उन्हें हां कर दी। वर्ष 80-85 में एक छोटा मकान भी बनाया जिसमें अधिकतर डॉक्टर रहते हैं। मेरी धर्म पत्नी ग्राम चारखेड़ा से है अतः हरदा आना जाना लगा रहता है। 81 से 85 तक भोपाल के रूपांकन शाखा में रहते हुऐ, बच्चों की शिक्षा को ध्यान में रखते हुए भोपाल में गृह निर्माण मंडल से वर्तमान घर लिया।

मेरा एक पुत्र चि. संजय जिसने नागपुर से ऑटोमोबाईल में डिप्लोमा कर, मैकेनिकल इंजीनियर में डिग्री की, भोपाल के एम.ए. सी.टी. से एम.टेक. किया तथा यहीं प्राइवेट कंपनी में कार्यरत है। चि. संजय की दो लड़कियाँ हैं जो कॉर्मल कान्वेंट गोविंदपुरा की छात्राएँ हैं। बस इन्हीं परिस्थितियों के तहत मैं भोपाल रहता हूँ। परिवार, सगे संबंधी सभी हरदा के आस पास के ग्रामों में बसे हैं अतः सुख दुख में हरदा जाना ही होता है। हरदा से जुड़ी मेरे जीवन की एक घटना, जो दुर्घटना होते होते बची और मुझे जीवन दान मिला भुला नहीं पाता हूँ। घटना वर्ष 52 की है, उस समय हम सभी छुट्टी के दिन नहाने के लिए अजनाल नदी के कबीट घाट जाया करते थे। मुझे तैरना नहीं आता था। पैड़ीघाट पर कम पानी में तैरना सीखता था। वर्षा काल के बाद का समय था, घाट की तरफ कटाव व गहरा पानी होता था। वरिष्ठ साथियों ने उत्साह बढ़ाया, तैर जाओ हम सम्भाल लेंगे। किन्तु सात आठ फुट में ही डूबने लगा। केवल एक श्री रामाधार शर्मा जो रहटाकलॉ के ही हैं, ने हिम्मत से काम लिया तथा मुझे जैसे तैसे धक्का लगाकर किनारे लगाया, मैं पस्त हो गया था, श्री रामाधार भैया जब भी मिलते हैं तो इस घटना को अवश्य याद करते हैं।

बाद में दौड़ने का शौक लगा परिणाम स्वरूप प्रतियोगिताओं में मैंने माइल रेस जीती। तथा सभी खेलकूद में कई अवार्ड जीते, एक बात और अविस्मरणीय है। ग्यारहवीं

कक्षा में मैं, और मेरा मित्र महेश वशिष्ठ छुट्टियों में एक लोहे वाली पानी की टंकी पर चढ़कर गेलरी में दोपहर से शाम तक बैठकर पढ़ते थे। महेश केमेस्ट्री अधिक पढ़ता था, तथा कहा करता था यदि फैल भी हो जाऊँ पर केमेस्ट्री में डिस्टिंगशन लाऊँगा। हमारा टंकी पर चढ़ना-पढ़ना चर्चा का विषय रहा। हरदा के समाज को प्रारम्भ से ही मैंने सांस्कृतिक पाया। हर त्योहार पर विशेषकर श्रावण व भाद्रपद में सभी मंदिरों को भव्यता से सजाया जाता था। पूरा शहर देर रात तक झांकियों के दर्शन हेतु जाता था। जगह-जगह कवि सम्मेलन व प्रवचनों के कार्यक्रम होते थे। बहुत ही धार्मिक प्रेम शांति का माहौल हुआ करता था। व्यायाम शालाओं का बहुत आकर्षण हुआ करता। नागपंचमी के दिन मिडिल स्कूल ग्राउंड पर भव्य दंगल आयोजित होते थे, पूरा शहर पहलवानों का उत्साह बढ़ाने एकत्रित होता था। वर्ष 55-56 के मानस यज्ञ की विशालता व मान्यता अभी याद आती है, अब तो गुलजार भवन व उसका ग्राउन्ड ही नहीं समझ आता। उस समय समाज में समरसता, सेवा भाव, बिना भेदभाव के सहयोग पाया जाता था।

मेरी दृष्टि में आजादी के छः दशक पूर्ण होने के पश्चात भी केवल जनसंख्या में वृद्धि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों के विकास नहीं के बराबर हुआ है। इसका सारा दोष नेताओं व जनता को जाता है। जनता में जुझारू पन नहीं है, अधिकारों के प्रति उदासीनता पायी जाती है, समाज संतोषी है। क्षेत्र में औद्योगिक शैक्षणिक प्रतिष्ठानों के अभाव के कारण पूरा जिला देश के नक्शे में पिछड़ा है। तवा बांध परियोजना के कारण वर्ष 1978 के बाद से होशंगाबाद संभाग में कृषि क्रांति हुई। यहां एक तरफा कृषि आय में वृद्धि दिखती है किन्तु आधुनिकता की चमक दमक में युवा पीढ़ी भोगवादी संस्कृति की ओर आकर्षित हो रही है। बाई नहर का वर्तमान कमांड नर्मदा-माचक नदी के दो आब में ही निर्धारित है, परिणाम स्वरूप माचक पार की लगभग 51 गांवों की 34 हजार हेक्टेयर भूमि, जो परियोजना के मूल प्रतिवेदन के अनुसार तवा बांध के कमांड में सम्मिलित थी, सिंचाई से वंचित रह रही है। यहां का कृषक भूजल व बिजली उपलब्धता के अनुपात में अपने परिवार का भरण पोषण, बैंक लोन के सहारे कर रहा है। यहां के कृषकों की 'क्रय-शक्ति' नगण्य है। इस सत्य को 25 वर्षों तक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले सभी सांसदों व विधायकों ने उपेक्षित किया। किसानों की माली हालत को सुधारने का कोई प्रयास प्रतीत नहीं होता। वर्ष 1988-90 में माचक पार के ग्रामों में अल्प वर्षा के कारण फसलें सूख गई, कुओं का पानी सूख गया। लोग पीने के पानी के लिए दूर दूर जाकर कोठियों में पानी एकत्रित करते थे। संयोग से उस समय प्रमुख अभियंता जल संसाधन विभाग भोपाल के कार्यालय में मैं, अधीक्षण यंत्री मानीटरिंग के पद पर था। गर्मी के दिन थे, एक दिन रात्रि में हरदा से श्री गेंदालाल छलोत्रे, जो मेरे गुरू समान थे। एक सब इंजीनियर के साथ भोपाल मेरे निवास पहुँचे। मुझे सोते से उठाया तथा क्षेत्र की

भयावह हालत से अवगत कराया। उनका दर्द भरा आग्रह कि मैं, सिंचाई विभाग में अच्छे पद पर हूँ, क्षेत्र की भावी पीढ़ी के लिए कुछ करूँ। मैं सोच में पड़ गया तथा अतः मुझे प्रेरणा मिली कि जन्म भूमि व क्षेत्र के लिए कुछ पुण्य कार्य आवश्य करूं ताकि मातृ ऋण से उऋण होऊँ। दूसरे दिन कार्यालय में मैंने परियोजना का मूल प्रतिवेदन निकलवाया। संयोग से मेरे एक कार्यपालन यंत्री, तवा के सर्वेक्षण के समय वही कांकरिया सब डिवीजन में पदस्थ थे। उनसे मुझे पूरी परियोजना की विस्तृत जानकारी मिली। मैंने बांध में उपलब्ध जल का वर्ष-वार सिंचाई रकबा तथा लॉसेस के आंकड़े एकत्रित किये। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि जल वितरण शाखाओं का निर्माण उचित नहीं होने से तथा प्रबंध की लापरवाही से बांध की क्षमता का लगभग 25 प्रतिशत कम उपयोग हो रहा है तथा अधिकारी लक्ष्य प्राप्त होने का उल्लेख कर यह प्रतिवेदन देते रहे कि अब उपयोगी पानी नहीं बचता। किसान पुत्र होने से यहां की कृषि व भूमि का व्यवहारिक ज्ञान होने से मैंने हिम्मत कर आंकड़ों के आधार पर, यह नोटशीट में प्रमुख अभियंता के समक्ष रखा तथा आग्रह किया कि मूल प्रतिवेदन के अनुसार कमांड का माचक पार विस्तार कर लगभग 25 हेक्टर क्षेत्र की सिंचाई विस्तार करने हेतु शासन से निवेदन किया जावे, ताकि माचक पार के क्षेत्र में सिंचाई के साथ भू-जल संवर्धन भी हो।

जैसी मुझे शंका थी प्रमुख अभियंता इस प्रस्ताव पर अप्रसन्न हुए। मुझे बहुत जिरह करना पड़ी, मैंने अनुरोध किया कि आप शासन के पास प्रस्ताव भेजें, टेक्नीकल कमेटी के समक्ष सभी तथ्य आने चाहिए। दो वर्ष तक प्रकरण लटका रहा। आखिर टी.ए.सी. ने 11 हजार हेक्टेयर की सिंचाई के लिए सहमती हुई। इसी बीच मेरा स्थानांतरण बिलासपुर हो गया। वहां अधीक्षण यंत्री रहते हुए श्री राजेन्द्र प्रसाद शुक्ला विधायक हुए, फिर विभाग के मंत्री बने, उनका मुझे बहुत स्नेह प्राप्त हुआ, उक्त प्रकरण उनके ध्यान में लाया गया, अंततः प्रशासकीय स्वीकृति प्राप्त हुई आवश्यक बजट हेतु प्रकरण नाबार्ड को भेजा। सचिवालय में पदस्थ मेरे मित्रों ने मेरी भावनाओं को ध्यान रखते हुए अवरोधों को हटाने में बहुत सहयोग किया। माचक नहर का कार्य प्रारम्भ कदाचित वर्ष 97-98 से आरंभ हुआ है। शायद सब मिलाकर 35-40 करोड़ रूपये व्यय हो गया है किन्तु किसानों की आशाएं अभी भी उलझी है। एक शाखा नहर के निर्माण में 10 वर्ष से अधिक समय लगना चिंता का विषय है।

हरदा भारत का हृदय है और दुख है कि अदूरदृष्टि के कारण नेताओं व ब्यूरोकेसी के साजिश का शिकार हो रहा है। देश के विकास के अनुपात में हरदा को लाने के लिए मेरे मतानुसार लोकसभा क्षेत्र हरदा होना चाहिए। रेल सुविधाओं में स्वतंत्रता पूर्व की स्थिति है। जिला मुख्यालय होने के बावजूद कई महत्वपूर्ण ट्रेनों का स्टापेज तक नहीं है। मसनगाँव, सिराली सड़क पिछले 50 वर्षों से लोगों के आंसू निकाल रही है, हरदा अभी एक बड़ा कस्बा

लगता है।

अच्छा शहर बनाने के लिए अगले 30 साल का मास्टर प्लान बनना चाहिए ताकि आवास का निर्माण व आवागमन निर्धारित प्रक्रिया अनुसार हो। सड़कों का चौड़ीकरण हो। होशंगाबाद, खंडवा, इंदौर भारी वाहनों व बसों के लिए बाईपास रोड बनना चाहिए। उचित विकास के लिए इन्फास्ट्रचर बहुत आवश्यक है। कृषि प्रधान जिला होने के कारण यहाँ कृषि आधारित कारखाने जैसे कृषि संयंत्र बनाने का कारखाना, शक्कर मिलें व गेहूँ भूसे से प्रोडक्ट्स व दूध-डेरी आदि को प्रोत्साहन हेतु शासन पर दबाव बनाना आवश्यक प्रतीत होता है। हरदा का इंडस्ट्रीयल क्षेत्र वर्तमान शहर से 4-5 कि.मी. दूरी पर होना चाहिए। शिक्षा केन्द्र बनाने के लिए प्राइवेट क्षेत्र में इंजीनियरिंग, मेडीकल कालेज आना बहुत आवश्यक है।

मेरी दिली इच्छा है कि हरदा का नाम आते जाते हर व्यक्ति से सुनें।

25, एच.आई.जी. ओल्ड सुभाष नगर, भोपाल

हरदा स्मृति के स्पदंन में

राधेलाल बिजधावने

स्मृतियों की कोई भाषा, शब्द संवेदना और व्याकरण नही होती। बावजूद इसके स्मृतियों के दृश्य बिम्ब जरूर होते हैं, जो बाह्य जगत से आन्तरिक संसार में अपने दृश्य चित्र यथार्थ के रूप में प्रस्तुत कर अकेलेपन में जरूरी संवाद करते हैं जिसमें आकांक्षित कुछ अपेक्षाएँ, उपेक्षाएँ, कुछ दुख दर्द, खुशियाँ, खिन्नताएं, आक्रोश या फिर हत्या अतिवाद के भयावह भाव संवेदन होते हैं। वास्तव में स्मृतियाँ यात्रा के बाद पुन: लौटने की भाव प्रक्रिया है जो आन्तरिक सौंदर्य बोध से होकर विरूपताओं, विपदाओं से भरी होकर भी आकर्षक सुखद अहसास कराती हैं तथा चिन्ताओं और चेतनाओं को जगाती हुई विस्मृत समय की लम्बी आनन्दमयी पुनर्यात्रा कराती हैं। उसमें अतीत की किताब के पृष्ठ, बार बार स्वत: उलटते पलटते हैं, जिसमें गुम हो जाना स्वाभाविक ही है। वास्तव में स्मृतियों के छद्म बिम्बों की अपनी लय होती है। इनका अपना विस्मृत इतिहास होता है। वास्तव में यह सब व्यक्तिगत जीवन के दृश्य बिम्ब है। जो रंगहीन और बदतर हो चुके होने के उपरांत भी स्मृतियों में नये रूप रंगों, नये आकर्षण के साथ जीवंत रूप में प्रस्तुत होते हैं। एलबम की तरह काल्पनिक परिदृश्य जीवंत होकर खोये हुए यात्री की ही तरह पुन: अचानक उपस्थित होकर आश्चर्य चकित कर देते हैं।

स्मृतियों का कोई निर्धारित समय बोध नहीं होता कि ये कब किस रूप में लौटेंगी। ये अदृश्य में दृश्यवान हो जाती है। तकलीफदेह काल क्षण में या फिर सुखद एवं फुरसत के निकम्में क्षणों में मूल स्थान से दूर स्थायी और अस्थायी निवास के दौरान स्मृतियों में लौटना जड़ों के मूल गुण स्वभावों, रूप परिवेश, भाषा शिल्प में लौटना है। जहाँ सब कुछ अपना ही होता है। फिर स्मृतियां कभी भी मानवीय जीवन और स्वभाव से अलग नहीं होती। भव्य

इमारत के टूट जाने के बाद भी वे नींव की ही तरह जमीन में दफन रहती हैं। और भवन के पुर्ननिर्माण की आशा और आकांक्षा करती है। इसलिए नींव की पहचान को कभी मिटाया नहीं जा सकता। इसमें संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन भी नहीं किया जा सकता आंधी तूफानों, विप्लव के बाजूद भी नहीं। शायद यही वजह है कि हरदा का जमीनी नक्शा अपने मौलिक बिम्बों के साथ मेरी स्मृतियों में समाया हुआ है। जो कभी अपने अक्षांश और देशांश नहीं बदलेगा। वह बार बार मिटाये जाने के बावजूद भी नहीं मिटता। वास्तव में विस्मृतियों की स्याही को मिटाने वाली रबर आज तक नहीं बनी।

यद्यपि आज हरदा के नक्शे मे बहुत कुछ नया जुड़ गया है। इसमें विस्तार हो गया। बहुत सी सुविधाएँ, आधुनिकता के साथ आकर बैठ गयी। परंतु हरदा शहर की मूल आत्मा और संवेदना नही बदली। नही बदली उसके रेशे रेशे में बैठी, आत्मीयता, सौहार्द्र। आज भी हरदा में वे ही गलियां, वे ही मोहल्ले, रास्ते, मकान और बाजार, उसी मूल स्वभाव और परिवेश के साथ मौजूद हैं। जो वर्ष 1948-49 में मौजूद थे। टन टन घड़ी की आवाज, जो पूरे शहर को समय बताती थी।

जहां तक मुझे याद है मै अपने गाँव, चारखेड़ा से कक्षा चौथी उत्तीर्ण कर 1948-49 में हरदा आया था। मेरा दाखिला म्यूनिसिपल मिडिल स्कूल में कक्षा पाँचवी में हुआ था। उस समय हरदा की सड़कों गलियों का ज्ञान नहीं था। स्कूल जिस गली से जाता उसी से घर लौटता। अकेला था, तीन चार माह पिताजी के मित्र स्कूल इन्सपेक्टर के घर अन्नापुरा में रहा। फिर बुआ के लड़के के साथ अन्नापुरा में ही रहने लगा, हाथ से खाना बनाना आता नहीं था, फिर भी किसी तरह बनाता था। 1958- 59 तक मैं हरदा में रहा। एक वर्ष तक अन्नापुरा में, बाद में शुक्रवारा में राम जानकी मंदिर परिसर में रहने लगा। उस समय इस परिसर में जहां रहता था, उसके कमरे में कोई दरवाजा खिड़की नहीं थी। यह ऊपरी मंजिल थी। परंतु यहां अपनत्व एवं आत्मीयता थी। घर की ही तरह भागीरथ बैरागी मंदिर के पुजारी थे। परंतु पेट परिवार पालन के लिए बिछियों का व्यापार करते थे। बड़े आत्मीय आदमी। 1958-59 तक हम इसी मकान में रहे। इसी परिसर में गेंदालाल छलोत्रे शिक्षक भी रहते थे। जिनका गाइडेंस हमें मिलता ही रहा। वे पढ़ाते भी थे, गार्जियन भी वही थे। पूरे शहर में उनके व्यक्तित्व का अच्छा प्रभाव था। वे बच्चों के जीवनांत तक हितचिंतक रहे। उनके शैक्षणिक तौर तरीके से सब खुश थे, शिक्षक-बच्चे सभी। उस समय हायर सेकेण्डरी स्कूल भी म्यूनिसिपल का था। परंतु म्यूनिसिपल मिडिल एवं हाई स्कूल की पढ़ाई और स्तर उच्च था। पहले नागपुर बोर्ड था, लेकिन हमारे समय 'महाकौशल बोर्ड, जबलपुर' बन गया, उस समय राजधानियां बदल गई थी। उससे पहले यहां के युवक नागपुर उच्च शिक्षा के लिए जाते थे।

म्यूनिसिपल हायर सेकेण्डरी स्कूल, हरदा में उस समय एम.आर. लोकरे, वी.सी.लोकरे, एन.पी. तिवारी एवं विजय कुमार तिवारी शिक्षक थे, जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा रही है। हेडमास्टर गार्गव, सेवा निवृत हो गये थे। उस समय प्राचार्य एवं लेक्चरर का पद नहीं था। सभी शिक्षक हुआ करते थे, 'ए' ग्रेड शिक्षक। उस समय हरदा में कोई कॉलेज नहीं था। ट्यूशन परिपाटी को अच्छा नहीं माना जाता था। टयूशन में मित्तल कॉलेज प्रतिष्ठित था। यह प्रायवेट ट्यूशन क्लास थी। कॉलेज नहीं, यहां हर कक्षा का हर विषय पढ़ाया जाता था। हम अक्सर प्रात: चार बजे उठकर घूमने जाते थे ठंड के दिनों में शुक्ला के सब्जी फार्म पर पहुँचकर टमाटर खाते। अब शुक्लाजी का सब्जी फार्म समाप्त हो चुका है। उत्कृष्ट शासकीय हायर सेकेण्डरी स्कूल बन गया। अबगाँव मार्ग उस समय कच्चा और कीचड़ भरा रहता था। हायर स्कूल उस समय शहर की अंतिम इमारत थी। हम शाम के समय फुटबाल खेलते, या फिर घूमने जाते। खेल के खत्म होने के बाद नारायण टॉकीज में सिनेमा के पोस्टर देखते, उस समय सिनेमा टाकीज नहीं थी। कैलाश टूरिंग टॉकीज थी जो बरसात में टूट जाती थी। इसका बाद में नारायण टाकीज नाम हो गया।

घूमने के लिए चिन्दरा इमली और हनुमान मंदिर हंडिया रोड तक जाते। ये शहर से बहुत दूर थे। लगता था बहुत दूर घूमने चले आये। परंतु अब यह शहर के बीच आ गये है। प्रताप टाकीज बहुत बाद में बनी। पावर हाउस हंडिया रोड की अंतिम इमारत थी। अजनाल नदी के पास एक खंबे का पुराना जर्जर मंदिर था। इसे देखने जाते अब यह नहीं है। बैरागढ़ स्थित शंकर मंदिर नदी पार कर जाते, उस समय गर्मी में नदी में गहरा पानी होता था। इसलिए नदी पार जाना आसान नहीं लगता था। अजनाल नदी के पैड़ी घाट पर नहाते, कपड़े धोते थे। चकरी घाट खतरनाक घाट था, जहां जान का खतरा नहाने वालों को रहता। एक बार उन घाटों पर नहाते नहाते डूबने से बचा तो नदी में नहाना छोड़ दिया। अजनाल नदी की बाढ़ देखने लायक होती थी, घंटाघर तक पानी भर जाता, नीचे का मंदिर डूब जाता। अनेक दुकानें डूब में आ जाती। हम बाढ़ के पानी का मजा सड़कों पर चलते हुए लेते थे। घंटाघर के सामने राजनैतिक पार्टियों एवं स्वतंत्रता सेनानियों की सभाएं आयोजित हुआ करती थीं। महेशदत्त मिश्र को यहां के लोग बहुत पसंद करते थे। यहां के बड़े बड़े लीडरों ने हरदा का नाम रोशन किया, हरिविष्णु कॉमथ, रामेश्वर अग्निभोज आदि हरदा के बड़े नेता थे।

हरदा में उस समय गणेशोत्सव और दुर्गाजी के सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होते थे। जिसमें रामायण, कृष्णलीला, रामलीला, गीता के प्रवचन आदि, प्रतिदिन शाम को बड़े मंदिर के परिसर में होते झाँकियां बनती। हर दिन नई झाँकियां, जिन्हें देखने के लिए जन समूह उत्साह की गेंद उछालता उमड़ पड़ता। पूरे हरदा में यह वैचारिक चेतना के बदलाव और ईश्वरीय आस्था का संकल्पित मनोरथ होता था। हरीश पाराशर की बनाई झांकियाँ

बहुत ही प्रभावी होती थी, दर्शक प्रसन्न हो जाते थे।

स्कूलों में प्रतिवर्ष वार्षिक स्नेह सम्मेलन होते। जिसमें खेलकूद प्रतियोगिता, चित्रकला प्रतियोगिता, गायन नृत्य नाटक और कवि-सम्मेलन होते थे। इससे विद्यार्थियों में साहित्य संस्कृति एवं कला के प्रति अभिरूचि पैदा होती, इन्हें नया रास्ता मिलता। शहर में साहित्यिक कार्यक्रम नहीं होते थे, कव्वाली होती। म्यूनिसिपल वाचनालय में अंग्रेजी हिन्दी अखबार आते थे। धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवनीत, कादम्बनी और ज्ञानोदय जैसी पत्रिकाएं पढ़ने को मिलती। मेरे मित्र प्राणेश अग्रवाल को जनरल पुस्तकें पढ़ने का शौक था। इसी समय हमें कोर्स की पुस्तकों के अलावा पुस्तकें पढ़ने को मिल जाती थी। उनके पिता हायर सेकेण्डी स्कूल में शिक्षक थे, जिन्होंने हमें पढ़ाया भी था। हम जासूसी किताबें तक पढ़ते। माया, मनोहर कहानियां पढ़ना विद्यार्थियों के लिए उस समय उचित नहीं समझा जाता था। कक्षा नौवीं में साहित्य एवं ड्राइंग के प्रति रूचि होने से मैंने उपन्यास, कविता लिखना, फिर फाड़ देने का क्रम शुरू कर दिया था। क्योंकि इनके स्तर पर विश्वास नहीं बन पाता था। हमारे ड्राइंग शिक्षक, चम्पालाल पाराशर थे। जो कोर्स के अनुसार मॉडल, लैंडस्केप, फ्रीहेंड, ड्राइंग के पीरियड में सिखाते थे। अच्छा लगता था। ड्राईंग के प्रति रूचि यहीं से शुरू हुई। आगे जे.जे . स्कूल ऑफ आर्ट्स में स्कूल द्वारा फार्म समय पर नहीं भेज पाने की वजह से एडमिशन नहीं हो सका। इसके बाद आर्ट सीखने का मौका नहीं मिला।

मेरे उपन्यासों की पृष्ठभूमि चारखेड़ा एवं आस-पास के गांवों की है। हरदा में रामाधार उपाध्याय शिक्षक म्यूनिसिपल मिडिल स्कूल ने कविता लिखना शुरू किया था, जो कि छन्दबद्ध कविताएं थीं। उन्होंने ही साहित्यिक गोष्ठियां करना भी शुरू किया था। परंतु उसमें बहुत कम उपस्थिति रहती थी। इनकी संस्था ज्यादा दिन नहीं चल सकी। हरदा में यद्यपि मैं अब नहीं रहता, मेरा निवास भोपाल हो गया है। परंन्तु वर्ष में न्यूनाधिक चार-आठ बार तो हरदा जाना होता ही है। और वहां की स्मृतियों को पुनर्जीवित करता रहता हूँ। रिश्तेदार हरदा के पास ही हैं। उनके यहां कार्यक्रमों में शामिल होने तथा पैतृक ग्राम चारखेड़ा के अपने निजी कार्य संपन्न करने हेतु, खास कर ग्रीष्मावकाश में तो जाना ही पड़ता है, चाहे कहीं भी जाना हो। हरदा में पुन: बसने की मन में इच्छा होती है। परंतु स्थितियां नहीं बनती। इसलिए इच्छाओं को मूर्त रूप नहीं मिल पाता है। हरदा में प्रेमशंकर रघुवंशी से तो मुलाकात होती ही रहती है। कौन चाहता है कि अपनी मिट्टी के रंग और गंध से अलग हो जायें, अपनी जड़ों से कटकर अलग हो जाएँ, जड़ों से कटे आदमी की अपनी कोई पहचान नहीं होती, अस्तित्व भी नहीं होता, फिर मिट्टी बोलती है, मिट्टी, मिट्टी के रस गुण और स्वभाव को पहचानती है। इसलिए वह अपनी भाषा बोली से अलग नहीं होती। फिर अपनी जड़ों से जुड़ा पेड़ कहीं भी चला जाय कोई फर्क नहीं पड़ता, जड़ों की जगह तो नहीं छूटती

और टूटती। उस समय भी नहीं जब उसकी जड़ों में दीमक जैसी बीमारी लग जाये और वह सूखकर संवेदनहीन ठूंठ बन जाये। परंतु ठूंठ की भी जाति और गोत्र होता है, जो उसकी लकड़ी में भी अपनी पहचान को सुरक्षित रखता है। जाति-गोत्र की पहचान की हिफाजत स्वत: पेड़ की लकड़ी में उसके तंतु तंतु में होती है। हरदा के स्मृति बिम्बों की प्रति छवि, जाति गोत्र, खून, मिट्टी के रंग और भाषा शब्द संवेदना के साथ आज भी हमारे दिलो दिमाग में समाहित है, जिसे मौत भी अलग नहीं कर सकती। कई बार स्थिति यह भी होती है कि परिंदे घोंसला छोड़ने के बाद वापिस नहीं लौटते परंतु वे अपनी स्मृति गंध उसी घोंसले में सुरक्षित रख देते हैं। हरदा से मेरे अधिकांश सहपाठी अपना घोंसला छोड़कर चले गये, परंतु उनकी स्मृति गंध मौजूद है, ऐसा मैं महसूस करता हूँ।

ई-8-53 भरत नगर (शाहपुरा) अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462039

हरदा में चेरिटी अस्पताल खोलना चाहता हूँ

बिजू जॉन

मेरे पिताजी हरदा सन् 1950 में आए थे। इस शहर और शहरवासियों के हम हृदय से कृतज्ञ रहेंगे, क्योंकि हरदा हरदा वासियों ने हम लोगों एवं हमारे परिवार को बहुत कुछ दिया है। मेरे पिताजी नें बिलासपुर में टॉयर ट्रेडिंग की दुकान डाली थी। किन्हीं कारणों से उनका व्यापार चल नही पाया, और बाद में उन्होंने फिर मेहनत कर हरदा में व्यापार शुरू किया। शुरूआती असफलता के बाद उन्हें सफलता मिली, इस सफलता में हरदा शहर के दोस्तों ने भी मदद की। मेरा जन्म तो बिलासपुर में हुआ था, पर मेरा बचपन हरदा शहर में गुजरा है। कक्षा पहली से कक्षा पाँचवी तक की पढ़ाई कुलहरदा स्कूल में अध्ययनरत रहकर की जो कि अभी नये बस स्टेण्ड के पास स्थित है। वहां सबसे पहले आदरणीय शाँडिल्य पंडित जी ने पहली कक्षा में पढ़ाया एवं नींव को मजबूत करने में पूरी मेहनत की जिसके लिए मैं जिंदगी भर उनका ऋणी रहूँगा। वहीं पर श्री जियालाल यादव सर ने 5 वीं तक पढ़ाया और बहुत सारी उपयोगी बातें सिखाई जिंदगी में मेहनत का महत्व समझाया। इसके बादा में मिडिल स्कूल में जो तब 'लाल स्कूल' कहलाता था वहां पर दाखिला लिया और वहीं पर मेरे जीवन में परिश्रम का पाठ श्री एस.एन. दुगाया, श्री सरफराज अली, ने पढ़ाया। इसी स्कूल में श्री जे. पी. लभानिया सर ने हमेशा जीवन में प्रथम बने रहने के लिए प्रोत्साहित किया। मेरे प्रधान अध्यापक श्री एन.पी. चौबे ने जीवन में मेहनत एवं ईमानदारी का पाठ पढ़ाया और उसका महत्व समझाया। श्री चौबे सर ने हमें सादगी की शिक्षा दी। हायर सेकेण्डरी साईंस स्कूल से पास की जिसमें कुछ शिक्षकों का मैं दिल से आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मार्गदर्शन दिया जैसे श्री एम.के. गर्ग सर, श्री जे.पी. भायरे, श्री के.के. पाठक, श्री ए.जी. टिकलकर और जी.एस. जोशी सर, ये गुरू मेरे जीवन निर्माण के शिल्पी हैं इन गुरूओं के बिना मैं वर्तमान स्थिति में आ ही नहीं पाता।

बचपन के दोस्तों को मैं जिंदगीभर याद रखूंगा विशेषकर कुलविन्दर सिंह चॉवला (टोनी) जो अभी इंग्लैड में है। अभी भी उनसे बातें होती रहती हैं, बचपन में एक दोस्त हुआ करता था उसका नाम था सुधीर पल्सकर बाद में वह कहीं सेटल हो गया लंबे समय से हम मिल नहीं पाये उनकी याद आती है। उसके बाद स्व. कैलाश दुगाया और स्व. ईशाक खान दोनों अब इस दुनिया में नहीं है। अन्य मित्रों में विनोद पस्टारिया, कमल कामेश पटेल, हाई स्कूल के दोस्तों में हसन अली, ज्ञानेश और सुरेश लेखवानी प्रमुख हैं। वर्तमान में पवन लोकरे से हमेशा बातें होती रहती हैं।

तब हरदा वास्तव में शांत था। लोग हमेशा एक दूसरे की मदद करते थे। मेरे पिताजी जब हरदा आए थे, तब उन्हें गुजराती परिवार के रतिलाल जी सेठ ने दुकान किराये पर दी थी। तब बहुत ही शांत शहर होता था हरदा। होशंगाबाद जिले में हरदा का नाम था। लोग मेहनती थे और आपस में भाई चारे से रहते थे। ईमानदारी व मिलनसारिता यहां के जीवन का हिस्सा है।

सन् 1970 से सन् 1993 तक मैं हरदा में था। इसके बाद में इंजिनियरिंग करने के लिये रीवा चला गया, बाद में नौकरी करनें इन्दौर, दिल्ली, दिल्ली से पांडिचेरी, पांडिचेरी से वापस इन्दौर। इन्दौर में मध्यप्रदेश राज्य वित्त निगम में नौकरी की, अंत में एम.पी.एफ.सी में जाब करते करते वेलनेस के व्यवसाय को स्थापित किया और मैं इन्दौर में सेटल हो गया हूँ। आज भी जेहन में हरदा का ध्यान आता है अभी भी मैं अपने को और परिवार को हरदा का रहने वाला मानता हूँ।

आज मैं जो भी हूँ, वहां के आदरणीय शिक्षकों के मार्ग दर्शन के कारण हूँ और मुझे गर्व है कि मैं हरदा का रहने वाला हूँ। शहर ने मुझे और मेरे परिवार को बहुत कुछ दिया है। आज भी मेरे परिवार वालों से मिलने जाता रहता हूँ। मेरा तो यह सपना है कि अगर ऊपरवाले की कृपा रही तो आने वाले समय में इस शहर में एक बहुत बड़ा अस्पताल खोलना है जो कि मेरे दादी के नाम रहेगा जिनका हरदा में ही देहांत हुआ था। इस चेरिटेबल अस्पताल में नाम मात्र के शुल्क पर हरदा और हरदा के आस पास के उन बीमारों का इलाज होगा जो पैसे के अभाव में इलाज नहीं कर पाते।

हरदा एक ऐसी जगह है, जहां से मेरा विश्वास है कि जीवन की अंतिम सांस तक साथ रहेगा। हरदा में रामलीला हुआ करती थी, उसका अपना ही अनुभव था, हर त्यौहारों पर चाहे वो किसी भी धर्म का हो एक अलग ही माहौल होता है सभी धर्म के लोग उत्साह से मनाते हैं।

आज के वर्तमान माहौल में हर आदमी स्वार्थी हो गया है उसे न तो शहर की चिंता है और न ही देश की चिंता है। यह हाल सिर्फ हरदा शहर का ही नहीं पूरे देश का है। लोग खुद के बारे में शहर और देश से ज्यादा सोच रहे हैं। जातिगत समीकरण बन गये हैं। लोग यह भूल रहे हैं देश शहर ही ठीक नहीं रहेगा तो उनकी आने वाली नस्लों का क्या होगा ? यह एक सोचनीय विषय है। इस पर हमें मिलकर विचार करना होगा।

165-डी न्यायनगर सुखलिया, इन्दौर

वही रंगत है, महफिल की

डॉ. जगदीश जैसानी

मैं जब 5-6 साल का हुआ तो मेरे वरिष्ठ स्वजनों ने बताया कि फाल्गुन कृष्ण 7, सम्वत् 1994 तदनुसार फरवरी 1938 को इस धरती पर दोपहर 4 बजकर 8 मि. पर मैंने पहली किलकारी भरी थी। रोलगाँव के उस तिमंजिले ईंट गारे से बने मकान में जो आज भी गाँव का सबसे ऊँचा मकान होने का गर्व किये, अपने उन्नत मस्तक के साथ ज्यों का त्यों खड़ा है।

शैशवकाल कैसे बीता किसी को भी याद नहीं रहता। थोड़ा बड़ा कोई 7-8 साल का रहा होऊंगा, तब पता चला कि मेरी माँ का मेरे जन्म के महज साढ़े तीन माह बाद ही हैजे से स्वर्गवास हो गया था। पिताश्री जब मैं 8 साल का था, मुझ से बड़ी एक बहन और दो भाइयों को छोड़कर अपने 6 भाई, दो बहनों और माता पिता का भरापूरा परिवार छोड़कर फरवरी 1942 में निमोनिया का शिकार होकर चल बसे। हैजे और निमोनिया जैसी बीमारियों का उस समय कोई तात्कालिक उपचार नहीं मिल पाता था, मेरे पिताजी की दादी माँ उस समय परिवार की मुखिया थीं। उनके संरक्षण में पला बढ़ा और आज उम्र के इस पड़ाव आ पहुँचा। पल भी गये, बड़े भी हो गये, किंतु जीवन के 72 पतझड़ देखने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बचपन में ही माँ बाप को खो देने से बड़ा दुर्भाग्य कुछ नहीं हो सकता और जीवन की कोई भी उपलब्धि उस अभाव को पूरा नहीं कर सकती। ६ साल का हुआ तो स्कूल जाने लगा माँ सरस्वती ने कृपा कर रखी थी ईश्वर ने सब कुछ छीनकर अच्छी याददास्त दी थी, वही मेरी जीवनी शक्ति और संबल रही और आज भी है।

मुझे याद है, जब स्कूल जाना शुरू किया उन दिनों गाँव का वह स्कूल बड़ा सुंदर था

उस वक्त के गुरूजनों ने अच्छा बगीचा लगा रखा था। कीचड़ भरे रास्ते पर, पनिहारिनों के आने जाने से रबड़ीनुमा कीचड़ उस पगडंडी की पहचान होता था हमें भी उसी पर चलकर जाना पड़ता था। 10 वर्ष के होते होते प्रायमरी की पढ़ाई पूरी हो गई थी, आगे पढ़ने के लिए हरदा जाना था। इस विचार से ही मन रोमांचित हो जाता था, हरदा के प्रति मन में बड़ा आकर्षण होता था। कुछ पैसे इकट्ठे कर रखते थे, जब कभी दादाजी खुश हो जाते थे अपने साथ मुझे और मेरे सबसे छोटे काका श्री रामशंकर को जो आजकल भोपाल निवासी हो गये हैं हरदा ले जाते थे। वहाँ बेर, रेणी सिघांड़े और मिठाईयां सब उपलब्ध हो जाती थीं। उधम न करने के लिए अकसर हरदा का प्रलोभन दिया जाता था।

आगे की पढ़ाई के बारे में सोचकर अजीबो गरीब विचार मन में आते थे, जैसे कि पाँचवी में पैर रखते ही फर्राटेदार अंग्रेजी बोलना आ जायेगा, गुरूजी को सर कहने का रोमांच मन में था। कापियों में कलम से लिखना पड़ेगा और सबसे बड़ी खुशी इस बात की थी बरसात के कीचड़ से छुटकारा मिल जायेगा। पर कभी जब बरसात में सब्जी बाजार जाना पड़ता तो वही कीचड़ हाजिर मिलता था। खैर दिन कटते रहे हम आगे बढ़ते रहे और वह दिन 1955 में आ ही गया जब हम 58 अंक प्रतिशत लेकर 11 वीं पास हो गये।

उस समय में बोर्ड परीक्षा का ऐसा हौआ बैठा दिया जाता था जैसे मैट्रिक पास करना एवरेस्ट विजय के समान था। हमने बड़ी उपलब्धि हासिल कर ली ऐसा लगा था। अब कॉलेज जायेंगे इस कल्पना से मन अभिभूत था। हम अपने बड़े भाइयों को देखते थे कि कितने ठाट हैं। उनके और दीवाली-दशहरे पर एक महीने की छुट्टी और दिसम्बर में 15-20 दिन की यही सब सोच-सोच कर मन खुशी से हिलोरे लेता था। जून 1955 के अंतिम सप्ताह में जबलपुर के महाकौशल महाविद्यालय जिसे उस समय और आज भी राबर्टसन कॉलेज कहने में गर्व का अनुभव करते थे, एडमिशन हो गया। मन में कल्पना कर रखी थी कि ज्ञान बरसता होगा कॉलेज की पढ़ाई में ठीक वैसे ही जैसे भेड़ाघाट के धुँआधार में कलकल नाद करता माँ नर्मदा का उज्ज्वल धवल जल नीचे प्रपात में गिरता है। पर यह मृग तृष्णा ही साबित हुई हम हिन्दी माध्यम से पढ़कर आये थे यहाँ सारे अध्यापक हिन्दी निबंध को छोड़कर शेष सब विषय अंग्रेजी में पढ़ाते जो सिर के ऊपर से निकल जाता था। फिर किताब से पढ़कर कुछ कुछ समझने का प्रयास करते वर्ष बीतते बीतते यह बात समझ में आई ज्ञान तो बटोरना पड़ता है।

लगभग 55 वर्ष बीत गये जब हरदा छोड़ा था, बहुत कुछ बदल गया है विकास भी हुआ, शिक्षा के क्षेत्र में कुछ संस्थान भी जन्में है जनसंख्या भी बढ़ी है रहन सहन में बदलाव भी आया है बहुत सारे कोचिंग संस्थान भी हो गये हैं पर हम स्वयं से पूछें कि क्या वास्तव में

उन्नति हुई है ? नवमीं कक्षा में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता पंचवटी में लक्ष्मण में एक पद्य यहा था - **परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं।** हरदा पर मुझे नाज है और रहेगा यहाँ के लोगों की सादगी सरलता और भाई चारा सबसे बड़ा गुण है पूरे हरदा क्षेत्र का। मैं तो बीच बीच में मेहमान की तरह आता जाता रहा हूँ पर पहले जैसी बात रही नहीं। धन का खूब प्रसार हुआ, लकदक कपड़े और चमक दमक से लबरेज युवकों के गूंजते ठहाके और आपस में बातचीत के दौरान कहे जुमले, मोटर साइकलों, ट्रैक्टरों, जीपों की भरमार। मोटर साइकलों का अभेद्य चक्रव्यूह सा, ऐसा नजारा तो पिछले 55 वर्षों में जबलपुर में भी नहीं देखा। प्रगति तो हुई है पर अभी भी बहुत कुछ किया जा सकता है, जो युवाशक्ति ही कर सकती है। कचहरी के सामने एक छोटा सा पार्क था और बगीचा भी। उससे लगा बहुत बड़ा मैदान था जिसपर स्व. शांताराम नाईक एक संस्था 'आदर्श बालक मंदिर चलाया करते थे' जिसमे हर शाम खेलकूद हुआ करते थे। न जाने किन परिस्थितियों में वह संस्था लुप्त हो गई। वह अच्छी संस्था जिसमें खेलकूद के साथ ही सांस्कृतिक गतिविधियों के विकास व क्रियान्वयन की योजनायें बनती थीं। वहाँ एक सुंदर सार्वजनिक पार्क बनना चाहिए। 'प्रगति' की गणना करना हो तो सबसे पहले नगर पालिका कार्यालय पर दृष्टि टिकती है, वह वास्तव में बहुत सुंदर और भव्य बन गया है, पहले ऐसा नही था। सामने का छोटा सा पार्क भी अच्छा है पर ऐसे कई सार्वजनिक पार्कों की जरूरत है हरदा को। जिला बनने से सिविल अस्पताल भी सुधरा है 'अंदर की बात' तो मालूम नहीं, पश्चिम में खेड़ीपुरा पुल के पास बाजार बन गया है।

अस्पताल के बाद अच्छे -अच्छे मकान और बहुत सी कालोनियाँ विकसित हुई है कुछ जगहों पर राष्ट्रीय नेताओं की मूर्ति भी लगी हैं। यह सब तत्कालीन नगर पालिका अध्यक्ष प्रो. सुरेन्द्र जैन के कार्यकाल में हुआ है इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। उनके कार्यकाल में जितने निर्माण कार्य हुए उतने पहले कभी नहीं हुए। निश्चित ही उनका कार्यकाल एक मील का पत्थर है। हरदा को आज म.प्र. का पंजाब कहा जाने लगा है। हरदा में शिक्षा का वास्तविक विकास ही भारत की संस्कृति व उसका पुन: उद्धार हो। स्कूलों की दशा सुधरे वे वास्तव में ऐसी संस्था बने जहाँ व्यक्तित्व का विकास हो। पंत जी की पंक्तियां याद आ जाती हैं -

यहाँ साँझ उबा का आंगन है, आलिंगन बिरह मिलन का
चिर हास अभय आनन रे, इस मानव जीवन का
चिर सुख भी है उत्पीड़न, चिर दुख भी है उत्पीड़न
सुख दुख की दिवा-निशा में, सोता जाता है जगजीवन

और अंत में यह कहते हुए मैं अपनी बात समाप्त कर रहा हूँ –
न जाने किसकी जलवागाई, नाज है ये दुनिया
हजारों जा चुके फिर भी, वहीं रंगत है महफिल की।

गोविन्द-भवन कॉलोनी, जबलपुर

स्मरणीय क्षण हरदा के संग

पी.सी. शर्मा

मेरा संबंध हरदा शहर से बचपन से ही रहा, क्योंकि मैं हरदा जिले की तहसील खिरकिया से 3 कि.मी. दूर ग्राम चौकड़ी से आता हूँ। हमारे शर्मा (खले) परिवार को चौकड़ी से जाना जाता है। हमारे पुरखे सैकड़ों वर्षों से चौकड़ी व इससे पूर्व खिरकिया के नगर पंचायत के ग्राम छीपावड़ में रहे, पले बढ़े। मेरी प्रायमरी की शिक्षा चौकड़ी ग्राम में प्रायमरी स्कूल में ही हुई व बड़े भाइयों व चाचाओं की स्कूली शिक्षा हरदा में हुई। पिता स्व. एम.एल. शर्मा म.प्र. शासन की शासकीय नौकरी में थे। वे डिप्टी कलेक्टर के ओहदे से सेवानिवृत हुए, अत: खण्डवा, बैतूल, छिन्दवाड़ा, भोपाल आदि शहरों में उनके स्थानांतरण के साथ शिक्षा चलती रही। काका एस.एल. शर्मा भोपाल के मशहूर डॉक्टर रहे जिन्होंने भोपाल को अपना मेडिकल मुकाम बनाया, एडवोकेट पी.एन. शर्मा ने वकालत पेशे में अपना स्थान बनाया। अत: परिवार के छोटे भी यहीं भोपाल में आकर बस गये। जहां मेरी शिक्षा मॉडल स्कूल से हायर सेकेण्ड्री व मौलाना आजाद कॉलेज से इंजीनियरिंग (बी.ई.) की डिग्री प्राप्त की। इंजीनियरिंग के बाद भोपाल में छोटे उद्योग क्रेशर एवं भोपाल के पास सीहोर में स्प्रींग लीफ के उद्योग के माध्यम से रोजी रोटी के साधन बनाये। चूँकि हरदा जिले के हर गाँव हर क्षेत्र के नागरिक अपनी समस्याओं के निराकरण के लिये आते रहे और मैं उनकी मदद करता रहा। अत: जब भी हरदा में विधानसभा, लोकसभा, हरदा नगरपालिका, खिरकिया ग्राम पंचायत, जिला पंचायत और चौकड़ी का ग्राम पंचायत या टिमरनी के चुनाव हुए सभी जगह कांग्रेस की ओर से ड्यूटी लगती रही, अत: हरदा खिरकिया, चौकड़ी से संबंध गहरा होता रहा। दूर रहकर भी हरदा जिले के मैं बहुत नजदीक हूँ और हरदा एवं हरदा जिले की सभी गतिविधियों से जुड़ा हूँ। पुरखों की खेती, घर बार सभी चौकड़ी (हरदा)

में है। अत: स्मृति व जुड़ाव बना है तथा हमारे कुलदेवता 'मुआड़ा बाबा' चौकड़ी ग्राम से 1 कि.मी. दूरी पर बसे हैं। अत: मैं, मेरा परिवार, चाहे परिवार के लोग अमेरिका में हो, इग्लैण्ड में हो, दिल्ली में हो या भोपाल में, कुलदेवता के दर्शन करने चौकड़ी जरूर जाते है।

एक संस्मरण मुझे याद आता है, 1971 में भारत पाकिस्तान के युद्ध के समय जब श्रीमती इंदिरा गाँधी देश की प्रधानमंत्री थीं, उनका एक संदेश देश के नाम रेडियो पर आना था। आज की तरह टेलीविजन मीडिया का समय नहीं था। मैं अपने गाँव के पटेल के साथ मोटर साइकिल पर ग्राम चौकड़ी से हरदा आ रहा था। हम लोग हरदा से 4-5 कि.मी. दूर मसनगाँव पहुँचे ही थे, कि मसनगाँव की चाय की होटल पर भीड़ लगी थी, रेडियो को हजारों की तादाद में लोग घेरे थे। हम भी रूक गये, पहले पार्श्व गायिका लता मंगेशकर ने देशभक्ति का गीत गाया और फुल वॉल्युम में रेडियो पर लोगों ने प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी की वह ऐतिहासिक स्पीच सुनी। माहौल बिल्कुल शांत था। जिसने लोगों में जोश भर दिया कि भारत पर युद्ध थोपा गया है हम बंग-बन्धु की मदद कर बंगला देशवासियों की मदद करेंगे। इस युद्ध में पाकिस्तान के दो टुकड़े हुए तथा बंगला देश का उदय हुआ। 1 लाख सैनिकों ने भारत की सेना के सामने आत्म समर्पण किया था।

स्वतंत्रता संग्राम से भी हरदा का गहरा ताल्लुक रहा पूर्व होशंगाबाद जिला जिसमें हरदा भी आता था। म.प्र. में सबसे ज्यादा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी होशंगाबाद जिले से ही आते थे, जिसमें उल्लेखनीय नाम श्री बसन्त चौरे, श्री ठाकुर गुलजार सिंह, श्री महेश दत्त मिश्र, चम्पालाल सोकल आदि के है। हरदा की सांस्कृतिक, साहित्यिक व कलागत परिवेश हमेशा मजबूत रहा है। माणिक वर्मा जैसे कवि, मदन मोहन जोशी व श्री विष्णु कौशिक जैसे वरिष्ठ पत्रकारों ने हरदा का नाम रोशन किया है।

हरदा जिला आर्थिक रूप से भी सम्पन्न विकसित हुआ है। सिंचाई के साथ आधुनिक कृषि में अब तरक्की हुई है व गेहूँ उत्पादन में सबसे अधिक उत्पादन करने वाला जिला हरदा है। हरदा जिले के युवा शिक्षा के क्षेत्र में भी अग्रणी है, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील, बनकर सारी दुनिया में फैले हैं व इसके साथ ही उन्नत खेती कर सम्पन्नता की ओर आगे बढ़ रहे हैं।

एफ 1-7-1100 क्वाटर्स, भोपाल

हरदा - स्मृतियों के गर्भगृह में

रविशंकर परसाई

'जिन तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नोन हरामी' मैं नहीं हूँ। आदमी सब कुछ भूल सकता है परन्तु अपनी मातृभाषा और मातृभूमि कभी नहीं भूल सकता। मैं इतना गया गुजरा नहीं हूँ, न ही इतना एहसान फरामोश हूँ कि जहाँ का अन्न, जल पान किया हो, जहाँ की प्राणवायु से अनुप्राणित हुआ हूँ, उसे भूल जाऊँ। मेरी माँ कहती थी कि तेरा नरा (गर्भ-नाल) हरदा जिले के टिमरनी में गड़ा है। टिमरनी, तिमिरहरणी जहाँ अज्ञान के अंधकार का हरण होता हो, वहाँ मूर्ख कैसे पैदा हो सकते हैं ? अपने अतीत और व्यतीत के पुण्यस्मरण का आनन्द ही निराला है, हरदा नगर में बिताए गए जीवन-काल को यदि मरूस्थल मान लूँ तो उसमें कटीले केक्टस भी थे और हरे भरे नखलिस्तान भी, धूप भी थी और छाँव भी, गर्मी भी थी और ठंडक भी, दिन घुमावदार भी थे और सीधे भी, वहाँ बाणरेखा पथ भी था और सर्वकुण्डल पथ भी। लब्बोलुआब यह कि हरदा में बिताए जीवन में सब कुछ था।

सन् 1937 में जब मैं दो वर्ष का था मेरे पिताश्री टिमरनी से स्थानांतरित होकर हरदा स्टेशन के पोस्ट आफिस में पोस्टमास्टर के पद पर आसीन हुए। हरदा आते ही मुझ पर चेचक माता की असीम कृपा हुई। परन्तु मैं जीवित रहने के लिए छोड़ दिया गया। देवीमाता ने मेरे गोरे चाँद से सुन्दर मुखड़े पर, मुरादाबादी लोटे की सी नक्कासी कर गई। मेरी सेवा पुस्तिका में पहचान के चिन्ह के नाम पर लिखा है, 'चेहरे पर चेचक के दाग'। जिस हरदा ने मुझे इतनी बड़ी पहचान दी उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ। बड़ी माता प्रदत्त दारूण दु:खद त्रासदी मैंने कैसे झेली, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। एक वर्ष बाद पिताजी का ट्रॉन्सफर हरदा से सिरोंज (टोंक) हो गया।

मेरा दुबारा हरदा आगमन जुलाई 1969 में हुआ। मैं शिवपुर से स्थानांतरित होकर शा. उ. मा. विद्यालय क्र. 1 (सांईस स्कूल) में रसायन शास्त्र एवं जीव विज्ञान के व्याख्याता पद पर आया। इस बार मै हरदा में सात वर्ष, हरदा के गणेश चौक, तिलक बालक मंदिर के पास श्री एस. डी. अग्निहोत्री के मकान में किराए से रहा। मेरे एक ओर श्री बाल गोविन्द दुबे तथा दूसरी ओर डा. साने और सामने श्री केकरे का मकान था। चौक में परूलकर का पुराना बाड़ा। इस बार मुझे हरदा को विस्तार से देखने समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ। घन्टाघर जहाँ पर बाबूलाल का अनवरत नान स्टाप, बिदऑउट फुलस्टाप चेनल चला करता था। सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार अजातशत्रु व्हॉयस आफ हरदा में घंटाघर से बाबूलाल स्तम्भ लिखते हैं। घंटाघर इसलिए भी याद है क्योंकि वहाँ एक स्थाई निन्दापट रहता था जिस पर गाहेबगाहे नगर के नामचीन लोगों की ब्याज निन्दा लिखी जाती थी। दरअसल निन्दारस का स्थाई भाव है ईर्ष्या। ईर्ष्या उत्पन्न होती है स्वयं की हीन भावना से, सत्कर्मी की लोकप्रियता से, पड़ोसी की आर्थिक उन्नति से, उसकी प्रसिद्धि से, मेरा अनुभव था कि यह जटिल कृत्य अधिकतर हरदा में आए हुए विजातीय, असामाजिक तत्वों, मलिन मनोवृत्ति वाले लोगों का था। निन्दापट पर अंकित अधिकांश सत्य झूठ की कोंख से जन्म लेता था। मैं जितने दिन भी हरदा में रहा मुझे यही भय सताता रहा कि मेरी लोकप्रियता भी निन्दापट पर न लटक जाए।

मेरे मतानुसार हरदा स्वभाव से नागार्जुन रहा है। बाँकपन भी और सीधा सरल सज्जन सहिष्णु भी। किसी भी नगर के स्वभाव में उसके भूगोल और इतिहास का इतना योगदान नहीं रहता जितना उस आबादी का जो वहाँ बसती है। यहाँ की आबादी में 25 प्रतिशत महाराष्ट्रीयन थे जो शान्त, शिक्षित, अनुशासित, मितव्ययी, तथा पड़ोसी-निरपेक्ष थे। भुआणा क्षेत्र के मूल निवासी गूजर जो सरल, सज्जन, सहिष्णु, परिश्रमी हैं। महाराष्ट्रीयन्स पेशवा के साथ आए थे। निर्भीकता निडर स्वभाव का सद्‌गुण है परन्तु यह भी सत्य है कि निर्भीकता, विनम्रता के अभाव में उद्‌दंडता मे बदल जाती हैं।

मेरे किसी भी छात्र ने कभी भी मर्यादा की लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण नहीं किया। एक बार मेरे एक पटु शिष्य देवकीनन्दन लल्ला के समूह ने मेरी पत्नी से पुरजोर शब्दों में शिकायत की आँटी सर खुद तो शनिवार, रविवार को फिल्म देखते हैं और हम लोगों पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। पत्नी ने उन्हें समझाया, सर फिल्म के बहाने तुम लोगों को देखने जाते हैं। कहीं ये छात्र उद्‌दंडता, उश्रृंखलता, अभद्रता तो नहीं कर रहे। मात्र पाठयक्रम पूरा करना ही शिक्षक के कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं है। वह अपने को शासकीय सेवक ही न समझे समाज के प्रति उसके उत्तरदायित्व को भी निभायें। शिक्षक को अपनी दिनचर्या इस प्रकार नियोजित करनी चाहिए कि वह शाला के बाहर भी छात्र की गतिविधियों को ध्यान में रखकर उनके सर्वांगीण विकास में सहायक हो। मैंने इस सिद्धांत का पालन हरदा में छात्रों के साथ भी

किया। उन दिनों साईंस स्कूल का भवन नगरपालिका के नियंत्रण में हमारी शाला के नाम पर दर्ज था। सन 1972 की अतिवृष्टि में रसायन शास्त्र प्रयोग शाला गिर गई, मैं प्रभारी प्राचार्य था, मैंने सीधे डी.पी.आई. से संपर्क किया। उनके एक आदेश पर यह भवन तुरन्त पी.डब्लू.डी. की पुस्तिका पर मेरे हस्ताक्षर से ट्रान्सफर हो गया। बीस वर्षो से लम्बित कार्य एक झटके में हो गया। इसी संस्था के भूखंड पर मेरे जाने के बाद कलाशाला का भवन बना। इसी भवन में कला शाला सुबह की शिफ्ट में लगती थी।

उन दिनों कला शाला में सर्वश्री एन.पी. तिवारी, रामभाऊजी शास्त्री, एस.एल चन्द्रवंशी, आर.पी.सीठा, आर.एन. सक्सेना, रमेश शर्मा, के.एल. पाण्डे थे। श्री एन.पी. तिवारी कलाशाला में प्राचार्य भी रहे। मेरे सहकर्मियों में थे, सर्वश्री जी.के. जोशी, के.आर. विश्नोई, विजय कुमार तिवारी, यू.एस. त्रिवेदी, ए.जी. टिकलकर, एम.ए. खान, बी.सी. लोकरे, एम.एम. सिलाकारी, सुरेश सोनी, जगदीश भायरे, गेंदालाल छलोत्रे। मेरे दो विद्यार्थी बलराम बाथोले, आर.आर. जगनवार भी कार्यरत थे। शा. कन्या शाला में श्रीमती सुशीला जैन प्राचार्य थीं। शाला विकास समिति के अध्यक्ष स्थानीय विधायक श्री नन्हेंलाल पटेल (रन्हाई) थे। अबरार मामू भी याद आ रहे हैं।

उस समय नगर में तीन कवि थे, सर्वश्री माणिक वर्मा सुप्रसिद्ध व्यंग्य कवि, माणिक सोकल और पॉलिटेक्निक कॉलेज के प्रो. सूरी जी। श्री माणिक वर्मा के प्रयास से, नगर के सहयोग व सौजन्य से वर्ष में एक दो बार अखिल भारतीय स्तर के कवि सम्मेलन हरदा में होते थे। मंच पर चुटकुले बाजी नहीं थी। विशुद्ध साहित्यिक रचनाएँ सुनाई जाती थी। मुझे गोपालदास नीरज, हुल्लड़ मुरादाबादी, बेकल उत्साही संतोषानन्द आदि कवियों को सुनने देखने का मौका यहीं मिला। मध्य प्रदेश लेखक संघ, भोपाल ने श्री माणिक वर्मा व्यंग्य सम्मान की स्थापना की है। सन् 2003 में यह सम्मान डा. ज्ञान चतुर्वेदी को तथा सन् 2008 में मुझे प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर मुझे भोपाल में पुनः श्री माणिक वर्मा जी, हरि जोशी और उर्मि कृष्ण के दर्शन लाभ हुए। जिस प्रकार हमारे राष्ट्र में महाराष्ट्र है उसी प्रकार हरदा में कुलहरदा है। यहाँ फरहत सराय नामक एक सुन्दर भवन है। हरदा गांधीवादी विचारधारा का गढ़ रहा है। एक बार सफाईकर्मियों की हड़ताल होने पर मूर्धन्य नेता चम्पालाल सोकल के नेतृत्व में नागरिकों ने सड़कों तथा शौचालय की सफाई की थी। हरदा गाँधीवादी चिन्तक, विचारक, समाजसेवी प्रो. महेशदत्त मिश्र जी की कर्मस्थली रहा है। राष्ट्रकवि माखनलाल जी चतुर्वेदी उनके यहाँ आकर कई बार ठहरे थे। हरदा ने स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाही।

मैं हरदा में खाए लल्ला मिष्ठान-भंडार के मलाई के लड्डू और चतुर्भुज पुरोहित के

कुन्दे के पेड़े कभी नहीं भूल सकता इनका स्वाद अभी भी जीभ पर है। हरदा कपास की प्रसिद्ध मंडी थी। श्री एकनाथ जी की जिनिंग फैक्ट्री जो हमारे स्कूल के पास थी उसमें भयानक अग्निकाण्ड हुआ, आग स्कूल के पास तक आ गई थी जो कि जनता, नगर पालिका, फायरब्रिगेड के अथक प्रयासों से शान्त हुई।

हरदा अपने हँसोड़, हास्यरस प्रधान, जिन्दादिल स्वभाव के लिए भी जाना जाता है। एक बार किसी मसखरे ने अफवाह फैला दी कि हरदा का घंटाघर इतना खूबसूरत है कि अंग्रेज इसे उठा कर इंग्लैण्ड ले जाने की तैयारी में हैं। नगर उद्‌दवेलित हो गया। सुना था कि रविवार को छद्‌म अदालत लगी मुकदमा दर्ज हुआ।

हरदा मुझे याद आता रहा, याद आता है, याद आता रहेगा। यदि हरदा की उन्नति होना है तो वहाँ से इन्दौर सीधी रेललाईन बने, दूसरे बुदनी की तर्ज पर कुछ फैक्ट्रियाँ खुले, मेडिकल हब एजुकेशन हब बने, हरदा में सब कुछ है किसी बात की कमी नहीं है।

सांडिया रोड़, पिपरिया

हरदा, अभी भी मेरा घर

आर.एस. माकवा

मनुष्य का जीवन समय के चक्र के साथ चिरकाल से गतिमान है। मनुष्य को खुद पता नहीं कि उसने कितने पड़ाव तय किए हैं, कितने उतार और चढ़ाव देखे हैं और उन्हें पार किया है।

वे अनगिनत क्षण भी याद नहीं कि हम कहाँ रूके थे, कहाँ ठहर गए थे और वो क्षण भी याद नहीं जो आनंद में बीते तथा वो क्षण भी याद नहीं जो दुख का अतीत बन गए। दुख और सुख, खट्टा-मीठा समय का परिवर्तन धूप ओर छाँव ही तो जीवन है। दुख न होता तो सुख की अनुभूति कैसी होती ? अंधकार न होता तो प्रकाश की कामना हम क्यों करते ? संसार में हर चीज के दो पहलू हैं जब तक दोनों मिलते नहीं, हर चीज अधूरी है। जब भी हम एकांत और शांति में बैठकर आत्म चिन्तन करते हैं और अतीत की परतें हटाते हैं तो हमें यह आभास अवश्य होता है कि हम आज, कल से बेहतर हैं। हमारा जो अस्तित्व है वह अतीत की तपस्या पर निर्भर है। वर्तमान का आलौकिक पुरूषार्थ, भविष्य की दिव्य ज्योति में इस कलयुग में समाहित है जो सदैव हमारा मार्गदर्शन करेगा। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी' मृत्युलोक प्रकृति का क्रीड़ांगन है एवं जीवन नियति के प्रांगण की गेंद है।

बच्चा जन्म लेते ही जननी, जनक और जन्म भूमि का आलोक बनकर उभरता है। वह ऊषाकाल के त्रिविध उल्लास की सरस, सुखद प्रभाती के समान जीवन पथ को आलोकित करता है। यही भावना एवं विश्वास मेरे जीवन काल में भी घटित हुआ। यदि यह कहा जाए कि 'जीवन जीना एक कला है' कला से अभिप्राय है सभी को दुनिया में जीना भी आए और दुनिया से जाना भी आए। जिसे दिन और रात, जन्म और मरण याद है। आना-जाना,

संयोग-वियोग का जिसे आभास है, पाना-खोना, लेना-देना, मान-अपमान, उन्नति-अवनति नदी के दो किनारों को जिसने देख लिया हो, उसे कभी जीवन में निराशा नहीं होती। इसी भावना के साथ मैंने अपने जीवन की शुरूआत की।

हरदा शहर दो नदियों के संगम पर बसा है। दोनों नदियों के नाम क्रमश: अजनाल और टिमरन है। नदियों के घाट पक्के, सुंदर व आकर्षक हैं। नदी के बाहरी भाग में भगवान शिव एवं अन्य देवी देवताओं के विशाल पुरातन मंदिर बने हैं जो शहरवासियों के आस्था के केन्द्र हैं। हरदा से लगभग 20 कि.मी. की दूरी पर पावन नर्मदा नदी प्रवाहित होती है। जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य पापों से मुक्ति पा लेता है। नर्मदा जी के दोनों किनारों पर क्रमश: हंडिया और नेमावर नामक गाँव बसे हैं, तथा दोनों स्थानों पर अनेक प्राचीन व भव्य मंदिर बने हैं। नर्मदा जी के नेमावर घाट पर महाभारत काल का प्राचीन विशाल सिद्धनाथ मंदिर है जहाँ पुरातन व आकर्षक भगवान शंकर की मूर्ति स्थापित है। नेमावर में जैन धर्मावलम्बियों का भी विशाल मंदिर स्थापित हो रहा है। देश व प्रदेश के विभिन्न स्थानों से रोजाना हजारों लोग नर्मदाजी में पवित्र स्नान व मंदिर के दर्शनार्थ आते हैं।

उल्लेखनीय है कि हंडिया नर्मदाजी का नाभिकुण्ड है। नर्मदाजी के उद्‌गम स्थान से लेकर कच्छ की खाड़ी (समागम स्थान) तक मध्य में हंडिया आता है। जहाँ नाभिकुण्ड की स्थापना हमारे पूर्वजों व तत्कालीन ऋषी-मुनियों ने की है। हरदा नगर की गल्लामंडी भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि रेल्वे स्टेशन के निकट होने से माल की आवाजाही में कठिनाई नहीं होती, यहां थोक में व्यापार होता है। यहां पर हर किस्म का अनाज तिलहन, कपास आदि विक्रय के लिए प्रचुर मात्रा में आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से प्रतिदिन आता है।

हरदा क्षेत्र एक कृषि प्रधान क्षेत्र है जहां सभी प्रकार की रबी व खरीफ की फसलें बहुतायत में होती है। वैसे पंजाब के बाद गेहूँ उत्पादन के क्षेत्र में हरदा दूसरे नंबर पर आता है। यहां गेहूँ के अलावा अरहर, चना, मूंग, सोयाबीन, मसूर, ज्वार, मक्का, कपास व अन्य फसलें पर्याप्त मात्रा में पैदा होती हैं। आजादी के बाद अनेक गाँवों में सिंचाई सुविधा उपलब्ध होने से फसलें उगाने में दिक्कत नहीं होती।

विक्रम संवत 1990, दिनांक 9 दिसम्बर 1933, दिन शनिवार प्रात: 9 बजकर 28 मिनिट पर मेरा जन्म हुआ। पुत्र जनम का समाचार फैलते ही परिवार के दोनों पक्षों, शुभचिंतकों व आसपड़ोस के लोगों को अपार हर्ष की सुखद अनुभूति हुई। उस दिन पौष मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि थी। मेरा जन्म हरदा शहर में घर पर ही हुआ था, क्योंकि उस समय चिकित्सालय का प्रचलन अधिक नहीं था और न ही आधुनिक चिकित्सा पद्धति की सुविधा थी। मेरे जनम के समय मेरे पिताजी की आयु लगभग 28 वर्ष थी एवं साधारण परिस्थिति थी, फिर भी मेरा लालन पालन बहुत अच्छी तरह किया गया तथा जन्मोत्सव बड़ी

धूमधाम से मनाया । मैं परिवार में सबका लाड़ला रहा एवं सभी रिश्तेदारों व पड़ोसियों का प्यार दुलार मिलता रहा। सन् 1938 में पाँच वर्ष की आयु में मैंने हरदा की शासकीय प्राथमिक शाला में कक्षा पहली में प्रवेश लिया एवं वर्ष 1943-44 में प्राथमिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। वर्ष 1944 में कक्षा छठवीं में नगर पालिका द्वारा संचालित माध्यमिक शाला में प्रवेश लिया जहां सभी कक्षाओं में प्रथम श्रेणी अर्जित की। वर्ष 1947-48 में कक्षा नवमीं में हॉयर सेकेण्ड्री स्कूल में प्रवेश लिया तथा सन् 1950-51 में हॉयर सेकेण्ड्री परीक्षा उत्तीर्ण की। किन्तु कक्षा बारहवीं के सभी छात्रों को सभी विषयों में पुन: परीक्षा देना पड़ी, हरदा में पूरक परीक्षा का केन्द्र नहीं था, अत: हरदा के सभी विद्यार्थियों ने शासकीय हॉयर सेकेण्ड्री स्कूल, खण्डवा से परीक्षा दी एवं कक्षा बारहवीं उत्तीर्ण की। हम चार पाँच लड़कों ने मिलकर कविवर श्री माखनलाल चतुर्वेदी जी के मकान के पास ही एक माह के लिए किराए का मकान लेकर खण्डवा में ही रहकर परीक्षा दी। यह हमारा सौभाग्य था कि दादा चतुर्वेदी जी के दर्शन एवं उनका सानिध्य प्राप्त कर सके।

हॉयर सेकेण्ड्री के अध्ययन तक मैंने भारतीय वेशभूषा ही धारण की अर्थात धोती कुर्ता ही पहना, क्योंकि उस समय शालाओं में ड्रेस कोड लागू नहीं था। मुझे शिक्षा के प्रति अधिक लगाव था हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत के साथ-साथ, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा शरीर विज्ञान का विशेष अध्ययन किया। शालेय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ शालेय स्तर की खेलकूद प्रतियोगिताओं में भी समय-समय पर भाग लेता रहा। शाला से निकलने वाली पत्रिकाओं में निबंध एवं रचनायें भी प्रकाशित होती रहीं। उस अवधि में श्री देशपांडे जी प्राचार्य थे। उनके बाद श्री टी.टी.मेहता, श्री जी.के. गौर सा. एवं श्री एच.जी. गार्गव सा प्राचार्य रहे। साथ ही योग्य व विद्वान शिक्षकों का मार्गदर्शन भी मिलता रहा। उस समय जनाब असगर अली सा. एवं एम.आर. लोकरे पढ़ाते थे। अंग्रेजी विषय के विद्वान शिक्षक श्री मुकुंद नाईक थे। हिन्दी एवं संस्कृत विषय के मर्मज्ञ श्री रामभाउ शास्त्री थे। इनके अतिरिक्त सर्व श्री जी.के. जोशी, विजय तिवारी एवं गवई सा. भी अध्यापन कराते थे, श्री के.एन. पांडे सा. शारीरिक शिक्षा के प्रभारी थे।

मैं भोपाल में या कहीं पर भी रहकर अभी भी अपने को हरदा का वाशिंदा मानता हूँ क्योंकि हरदा मेरी जन्मभूमि है एवं हरदा में जन्म से ही मेरा स्वाभाविक लगाव है। आजीविका हेतु मुझे हरदा छोड़ने पर विवश होना पड़ा, परन्तु अभी भी प्रतिवर्ष अवसर मिलने पर समय-समय पर हरदा जाता रहता हूँ। हरदा में अभी भी मेरा घर है। वर्ष 1945-46 में मैं मेरे सहपाठियों के साथ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में एक स्वयं सेवक के रूप में शामिल होकर आर.एस.एस. के सभी कार्यक्रमों व गतिविधियों में लगातार तीन वर्षों तक हिस्सा लेता रहा। 1945-46 में जब स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था तो मैंने मेरे मित्रों के साथ रैली निकालकर

पोस्ट ऑफिस पर तिरंगा फहरा दिया था। पुलिस मुझे थाने तक ले गई एवं लगभग 2 घंटे तक बैठाकर छोड़ दिया। 1947 में भारत विभाजन के बाद शरणार्थियों का दल जब हरदा आया तो तत्कालीन स्थानीय नेताओं के मार्गदर्शन में उनके भोजन ठहरने आदि की व्यवस्था सुनिश्चित की। 1947 में आजादी मिलने के बाद पूरा शहर सजाया गया। सभी ने मिलकर जश्न मनाया, सभी शिक्षण संस्थानों शासकीय कार्यालयों व निजी प्रतिष्ठानों में बड़ी धूमधाम से जश्न मनाया गया। सभी भवनों पर राष्ट्रीय ध्वज लहराए गए, मिठाईयां बांटी गईं, भवनों पर रोशनी की गई, खुशी का माहौल लगभग एक सप्ताह तक चलता रहा। वर्ष 1947 के पूर्व विदेशी हुकुमत के बाद भी हरदा में विभिन्न संस्थानों व संगठनों द्वारा सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलागत कार्यक्रमों का संचालन किया जाता रहा किन्तु 1947 के बाद इन कार्यक्रमों को संपन्न करने में गतिशीलता आ गई।

हरदा के विकास में वर्तमान में कोई बाधक तत्व नजर नहीं आ रहे हैं। किन्तु शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन में लम्बी प्रक्रिया के फलस्वरूप विलम्ब अवश्य होता है। जिससे जनता तात्कालिक लाभ से वंचित रह जाती है व नागरिकों में स्वाभाविक रूप से आक्रोश हो जाता है। हरदा को हवाई मार्ग से जोड़ा जावे आधुनिक सुविधा युक्त हवाई अडड्े का शीघ्र निर्माण कराया जावे। अंतर्राज्यीय बसों का संचालन आवश्यक है। (महाराष्ट्र, यू.पी., दिल्ली, गुजरात, राजस्थान आदि) इसके लिए पृथक से विशाल आधुनिक सुविधाओं व मार्केट सहित बस स्टेण्ड का निर्माण कराया जावे। वर्तमान में यात्रियों की संख्या को देखते हुए बसें बढ़ाई जावें तथा उनके फेरे भी बढ़ाए जावें। हरदा से राजधानी भोपाल तक आने जाने के लिए प्रतिघंटा बसें चलाई जावें। हरदा शहर के विस्तार को देखते हुए नागरिकों की सुविधा हेतु नगर वाहन सेवा शीघ्र चालू की जावे। साथ ही ऑटो, टेम्पों, मैजिक वाहन की व्यवस्था की जावे जो आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों तक आ जा सकें। हरदा शहर की सड़कों का चौड़ीकरण किया जावे एवं उन्हें जिला स्तर का रूप दिया जावे। साथ ही हरदा क्षेत्रान्तर्गत ग्रामीण सड़कों की मरम्मत कराई जावे। शासकीय इंजीनीयरिंग एवं ला कॉलेजों की स्थापना आवश्यक है। एक पृथक महिला चिकित्सालय स्थापित किया जावे जहां प्रसूति के साथ ही महिलाओं की चिकित्सा की समुचित व्यवस्था हो। इसी प्रकार आंखों के ईलाज के लिए नेत्र रोग चिकित्सालय हो ताकि नागरिकों को मंहगे निजी अस्पतालों से मुक्ति मिल सके। शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिए बी.टी.आई. एवं बी.एड कॉलेजों की स्थापना आवश्यक है। हरदा में राज्य स्तरीय खेलों के लिए खेल मैदान विकसित किए जावें। कलाकारों के उत्साह वर्धन हेतु रंगमंचीय व्यवस्था भी आवश्यक है। लघु उद्योगों को प्रोत्साहित कर वनोपज का लाभ लिया जावे।

383, नारियलखेड़ा बस स्टेण्ड के सामने, भोपाल

हरदा, विस्मृत नहीं होगा

डॉ. महेशचन्द्र वशिष्ठ

हरदा मेरी जन्म भूमि है, कोई भी व्यक्ति दुनिया के किसी भी हिस्से मे चला जाये वह अपनी जन्म भूमि को भूल नहीं सकता इसकी स्मृति, सदैव उसकी अन्तर्रात्मा में स्पंदन करती रहती है। जन्म भूमि उसके जीवन का अटूट अंग होती है। वही बात हरदा की मेरे लिये भी सत्य है। हरदा मेरे पूर्वजों का शहर है एक आकर्षण है, मायानगरी है, अलग-अलग लोगों के लिये अलग-अलग परिभाषायें, अलग-अलग मान्यतायें हो सकती हैं, पर यह सत्य है कि इससे बिछुड़ने वाले लोगों को यह अपनी तरफ खींचता है, बुलाता है। न जाने कौन सा तिलिस्म है, इस नगर में यहाँ लोगों ने कहीं कुछ खोया है, तो उससे कहीं ज्यादा पाया है।

कुछ क्षणों के लिये उनके मानस से हरदा विस्मृत हो यह संभव है, परन्तु उसका स्थायी विस्मरण असंभव है। फिराक साहब लिखते हैं कि मुद्दतें गुजरीं तेरी याद आई न हमें और हम भूल गये हों तुझे ऐसा भी नहीं। वो कौन सी रानाई है, वो कौन सा रहस्य है ? जो अपनों को मोहपाश में बांधे रखता है। शक्ल किसी की भी कुरूप हो बदसूरत हो उसकी हैरतजदा शक्ल उसे प्यार करने के लिये विवश कर देती है यह बात हरदा पर भी लागू होती है। यह सरापाखुलूस, सरापा नियाज, सुखनवाज शहर और यहाँ के प्रेम से लबालब जागृत चेतनमय और राष्ट्र के प्रति समर्पित लोग इसकी यही पहचान है। मोहब्बत और खुलूस से जीने वाले इस शहर का पैगाम मोहब्बत है, प्यार है।

बचपन की घटनायें व प्रसंग स्मृति बनकर मानस पटल पर अमिट है, जीवन्त हैं। कोशिशों के बाद भी कोई... उन्हें मिटा नहीं सकता। हरदा में जन्में हुए लोग और उसे छोड़कर जाने वाले लोगों के पास इन स्मृतियों के अतिरिक्त और क्या है ? अन्यथा हरदा भी

उन हजारों नगरों की तरह हो जाता, जिसमें उनका कोई हमदर्द और सारोकार नही है। यही उनकी धरोहर है यही उनकी पूँजी है और इसी के आधार पर उनका हरदा से आत्मीय संबंध बना हुआ है। कुछ लोग हरदा फिर से वापिस आ गये हैं और कुछ निकट भविष्य में आने की कोशिश करेंगे।

1956-57 तक हरदा एक कस्बाई शहर था, चिकित्सा सुविधायें नहीं जैसी थी। पूज्य पिताजी की इच्छा थी कि मै डाक्टर बनूं। 1964 में मैंने भोपाल के गाँधी मेडिकल कॉलेज से एम.बी.बी.एस. किया। उस समय भाई मदनमोहन जोशी और उनके अग्रज स्व. ब्रजमोहन जोशी का मेरी इस उपलब्धि में बहुत बड़ा योगदान रहा। उनकी प्रेरणा, सहयोग और मार्गदर्शन में ही मैं यह काम कर सका। उनका यह ऋण मैं जीवनभर नहीं उतार सकता। यह उदाहरण है कि हरदा के लोग उस समय अपने हरदा के साथियों के लिए कैसा सहयोग करते थे। पचास वर्षो के अंतराल के बाद मैं प्रयास कर रहा हूँ कि मैं बचपन की घटनाओं, व्यक्तियों और परंपराओं को याद करूं। हरदा वह नगर था जहां 18 मई 1967 में नगरपालिका की स्थापना हुई। स्वतंत्रता संग्राम में हरदा ने सक्रिय भूमिका निभाई, आजादी के आंदोलन के बड़े नेता हरदा आते रहे। हरदा एक ग्रामीण कस्बा था, जहां शाम होते ही सन्नाटा पसरने लगता था। नगरपालिका द्वारा लगाये गये लालटेनों की रोशनी में सड़कें जैसे रोशन हो जाती थीं। सन्नाटे के बीच के मानवीय क्रियाकलापों से सक्रियता की दास्तां बयान होती थी। मंदिरों की रामसत्ता, राम-लीलायें, हरि-कथा, कवि गोष्ठियां, नौटंकी व राम-दंगल के आयोजन खूब होते थे। बिजली आ जानें पर ये गतिविधियां और तेज हो गई थीं।

हरदा उस समय कविता व संगीत के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। हरदा की धार्मिक व आध्यात्मिक चेतना शिखर पर थी। धार्मिक त्यौहार के समय ढोल, मंजीरे, खड़ताल की मधुर संगीत स्वरलहरी वातारण में कई दिनों तक गूँजती रहती। उस माहौल को पुन: प्राप्त करना कठिन है। इसी अभियान में परम आदरणीय सेठ बद्रीप्रसादजी अग्रवाल का 'नर्मदा अभियान' भी उल्लेखनीय था। अमावस्या व पूर्णिमा पर पूरी रात भजन-कीर्तन, एक नया रस घोलते, इससे हरदा में धर्म-आध्यात्म की ज्योति प्रज्जवलित रही। बचपन में मैंने हरदा को एक नये रूप में देखा, यहां गजब की राजनैतिक चेतना दिखाई दिया करती थी, पर धर्म की राजनीति यहां कभी नहीं हुई।

हरदा के हर मुहल्ले में अखाड़े हुआ करते थे। ये अखाड़े संगठित संस्थायें थी। गोलापुरा, अन्नापुरा, कुलहरदा, मानपुरा, खेड़ीपुरा के पहलवान खूब दबंग हुआ करते थे। कुश्ती के दंगल, के अलावा, प्रतिदिन कसरत करना एक शगल था, स्वास्थ्य, संस्कृति का प्रतीक था। मिडिल स्कूल पर होने वाले दंगल और जीते हुए पहलवान के साथ स्वयं को

प्रतिष्ठित, गौरवान्वित समझना तब का एक सामाजिक रौब था। अखाड़ों के बनने और बिगड़ जाने की कई कहानियाँ सुनाई जाती हैं, पर वह समय अब नहीं रहा। कबड्डी, खो-खो, गिल्ली डंडा जैसे भारतीय खेलों पर अब क्रिकेट हावी हो गया है।

एक बात जिसने मुझे अपने विद्यार्थी जीवन में बहुत प्रभावित किया, वह था शिक्षा का उच्च उद्धेश्य, नवयुवकों और अभिभावकों का उत्साह। शिक्षकों की अपने कर्तव्य के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और अपने विद्यार्थियों के प्रति स्नेह, सद्भाव और अनुशासन-प्रियता। छात्र मेधावी हो या सामान्य, शिक्षकों से मिलने वाले स्नेह और मार्गदर्शन का भाव एक जैसा होता था। इसीलिए छात्र उनसे अंतरंगता महसूस करता था। उम्र कभी आड़े नहीं आती थी वे फिलासफर से थे और उनकी भूमिका गाईड की होती थी सभी शिक्षक गुणवान थे, पर श्री गोपीकिशन जी जोशी और स्व. नारायण प्रसाद तिवारी ने मेरे मनो-मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी है। वे अध्यापन के बाद भी छात्रों को अतिरिक्त समय देते थे। महापुरूषों जैसे टेगौर, तिलक, कबीर आदि की जयंतियों के अवसर पर वे भाषण, एकांकी, नाटक, वादविवाद आदि विधाओं में तैयारी करवाते। नगरपालिका का बगीचा तैयारी का केन्द्र हुआ करता था। इस परंपरा की बुनियाद गोपी किशनजी जोशी और एन.पी. तिवारी जी ने रखी।

इस तरह की अध्ययन पद्धति से हम कुछ मित्रों को जैसे प्राणेश अग्रवाल, रामदास छलोत्रे व अन्य मित्रों को बहुत लाभ मिला। मैं यह मानता हूँ कि मेरे जीवन की कुछ उपलब्धियों में मेरे इन गुरूजनों का बड़ा योगदान है। मेरी भावनाओं को समझने के लिए उर्दू के इस शेर पर ध्यान दीजिये :-

हर पत्थर की तकदीर संवर सकती है
शर्त यह है कि उसे सलीके से तराशा जाये।

अब चर्चा करते हुए उन महान विभूतियों की जिनका व्यक्तित्व हरदा के लिए वरदान बना और जिन्होंने हरदा को भारत में प्रतिष्ठा दिलाई। सबसे पहले आदरणीय महेशदत्त मिश्र का उल्लेख बहुत जरूरी है। सरलता, मीठी बोली, खादी के कपड़े, गोरा रंग उनके व्यक्तित्व को ऐसे निखार देता था कि कोई उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। कार्यशैली, नेतृत्व शक्ति संभावनाओं का आकलन और विश्लेषण आदि खूबियां उनके राजनैतिक व्यक्तित्व को समझने में मदद करती है। वे राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर थे, और हरदा के लिए समर्पण, निष्ठा और देशभक्ति के ज़ज्बे ने उन्हें न केवल सांसद बनाया, बल्कि महात्मा गाँधी के निजी सचिव होने का गौरव प्रदान किया। हरदा का कोई व्यक्ति इतना सम्मानित नही हुआ जितने प्रोफेसर महेशदत्त मिश्र। वे सचमुच में हरदा के हीरो थे। उनके अन्तिम समय तक जबलपुर उनके सानिध्य में था, और उनकी सादगी लोकप्रियता को सलाम करता

था।

श्री माणिक वर्मा जिन्होंने पूरे भारत में अपनी व्यंग्य और हास्य की कविताओं से काव्य प्रेमियों का दिल जीत लिया। उनके नाम से लोग हरदा को पहचानते हैं। उनके व्यंग्य और हास्य की कवितायें समय की शिला पर लिखे वो अमिट हस्ताक्षर हैं जिन्हें पढ़कर आने वाली पीढ़ियाँ युग की पीड़ा और द्वंन्द को बखूबी समझेंगी और समझा सकेंगी। उनकी प्रतिभा का शंखनाद करती पंक्तियां –

सूरज के संस्कार लिये, घूमते तो हैं
जुगनू है अंधेरों से मगर जूझते तो हैं।
अथवा
माना अंधेरा न हम मिटा पाये
मगर राह में कुछ दिये तो जलाये।

भाई मदन मोहन जोशी के साथ मेरा बहुत घनिष्ठ सम्पर्क रहा। जोशी परिवार (गोलापुरा) हरदा में जन्में इस व्यक्ति ने अपनी साधना और तपस्या तथा अपनी अंत: प्रज्ञा से भोपाल के भद्र लोक में अपना एक महत्वपूर्ण मुकाम बनाया। सुरूचिपूर्ण पत्रकारिता और ललित साहित्य की ओजपूर्ण लेखनी से अपनी और हरदा की गरिमा को पहचान दिलाई। बचपन में जिन लोगों ने मुझे प्रभावित किया उनमें डॉ. रामप्रसाद श्रीवास्तव और डॉ. गोकुलदास अग्रवाल प्रमुख थे। डॉ. रामप्रसाद बिलकुल देवता समान थे, टाई सूट और टोपी पहने अपनी पुरानी कार, कभी कभी साईकिल पर भी दिन रात पीड़ित मानवता का सेवा में लगे रहते थे। कंचनमुक्त सेवा के वो साक्षात् उदाहरण थे। चिकित्सा अध्ययन के समय मैं कभी कभी छुट्टियों में हरदा आता था। डॉ. रामप्रसादजी मल्हम पट्टी अथवा इंजेक्शन लगाने का कार्य सिखाते थे। उनके ओठों पर लहराती मुस्कान और मधुरवाणी मरीज को राहत दे जाती थी। अपने कार्य के प्रति इतना निष्ठावान डाक्टर मुझे आज तक नहीं मिला। मैंने भी अपने चिकित्सा जीवन में उनके नक्शे कदम पर चलने की कोशिश की और कामयाब भी रहा। हाँ कुछ अच्छा प्रतिसाद भी मिला जिससे इंकार नहीं किया जा सकता। प्रारंभिक दिनों में डॉ. गोकुलदास के साथ जुड़ा रहा। जो घर घर जाकर मोतियाबिन्द का इतना सफल ऑपरेशन करते थे कि आँखों पर विश्वास नहीं होता था। उनकी अद्‌भुत प्रतिभा टेक्निकल ज्ञान और कार्यकुशलता ने आज इस मुकाम पर पहुँचा दिया है कि हरदा के सभी नगरवासियों को उन पर गर्व है। हरदा नगर के लोग इस बात के साक्षी हैं कि जब भी वे इन्दौर में गोकुलदास अस्पताल में जाते हैं तो डॉक्टर गोकुलदास सब काम छोड़कर अविलम्ब हरदा वालों की सेवा सुश्रुषा में लग जाते हैं। यह उनका हरदावासियों के प्रति अगाध स्नेह का प्रतीक है।

हरदा में अपने ढंग का बहुत ही अद्‌भुत व्यक्ति पैदा हुआ, जिसको सभ्रांत समाज हिकारत से देखता रहा, परन्तु नई पीढ़ी के युवक उसे हीरो मानते रहे, मेहनतकश मजदूर उसे अपना मसीहा। उसने हरदा की राजनीति में एक बड़ा जलजला पैदा किया, नेतृत्व को एक नई परिभाषा दी। उस शख्स का नाम था कप्तान लक्ष्मीनारायण। लोग प्यार से उन्हें 'लच्छु कप्तान' भी कहते थे। वे कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रेरक और पोषक थे। हरदा के समकालीन राजनेताओं में उनके जैसा साहिबे हुनर नेता और कोई नही था। हरदा के हृदय स्थल घण्टाघर पर उनका भाषण होता था तो इस कदर भीड़ उमड़ती थी जो किसी अच्छे से अच्छे नेता की सभा में भी नहीं आती थी। 6 फीट ऊंचाई, काला रंग, थुलथुला शरीर, बिखरे बाल, बेतरतीब कपड़े, पैरों में चप्पल, मुँह में सिगरेट, यही उनका हुलिया था और यही उनकी सम्पत्ति थी।

शहर के धन्ना सेठों, पुलिस को कोसना और दूसरे नेताओं की कपाल क्रिया करना ही उनके भाषण के मुख्य मुद्दे हुआ करते थे। पर उनके बोलने की स्टाइल, बिंदास हाव-भाव चेहरे पर उतरते चढ़ते भाव शब्दों का चयन और उनकी अदा एक अजब सा तिलिस्म पैदा करती थी। जो लोग उनके भाषण सुनने आते थे बुत की तरह खड़े रहते थे, हटने का कोई सवाल नहीं। ठेठ भाषा, और आरोपों की बरसात शायद कुछ लोगों की संवेदनशीलता पर चोंट करती थी। परन्तु उनके भाषण के मोहपाश से भी वे मुक्त नहीं हो पाते थे। नगर पालिका के पास एक छोटी सी झोपड़ी में उनका आफिस था जिस पर शान से लाल झण्डा फहराया करता था। मैं और मेरे मित्र स्व. उमाशंकर तिवारी उनसे मिलने जाया करते थे। उद्धेश्य कुछ खास नहीं हुआ करता था, परन्तु उनका मायावी आकर्षण उनकी तरफ खींच ले जाता था। हरदा में कॉमरेड, शब्द के जनक भी लच्छु कप्तान ही थे। उस समय नगर में कॉमरेड शब्द बहुत प्रसिद्ध हो गया था। यह बात जरूर है कि शहर में अन्य वर्गों में उनके खिलाफ कुछ सरगोशिया चलती रहती थीं, परन्तु इतना सब मानते थे कि वे एक दबंग ओर मोहशील इंसान थे। पैसा और सम्पति उन्होंने नहीं बनाई। वे सदैव फक्कड़ और कलंदर बने रहे। उनके जीवन की एक घटना जरूर उल्लेखनीय है, उस समय नगर पालिका अध्यक्ष के ओपन चुनाव में भारी मतों से नगर के प्रतिष्ठित और दिग्गज प्रतिद्वंद्वियों को जब हराया, नगर एकदम भौंचक्का रह गया था। जुलूस का यह आलम था कि पूर्व में कृष्णा (आज की नारायण टॉकीज) से घण्टाघर तक पूरी सड़क जन सैलाब से लबालब भरी थी। ट्रक, साइकिलें, तांगे ओर बैलगाड़ियों में लदे लोग, हाथ में लाल झण्डा लिये कॉमरेड जिन्दाबाद ... लच्छु कप्तान जिन्दाबाद ...... के नारे लगा रहे थे। मैंने ऐसा अभूतपूर्व जुलूस हरदा में कभी नहीं देखा। कप्तान ने हरदा को क्या दिया ? हरदा के विकास में उनका क्या योगदान है? कहना कठिन है, पर 'लच्छु कप्तान' ने हरदा को एक निर्भीक आवाज दी। गरीबों और

मेहनतकशों की निस्वार्थ सेवा करना और शोषण की खिलाफत, दरअसल लच्छु कप्तान एक व्यक्ति नहीं एक संस्था थे। सचमुच में वह अपनी शर्तों पर जीने वाला एक अद्‌भुत व्यक्ति था।

उस समय सूरज उगाना चाहिए
चेतना पर धुंध जब छाने लगे।

हरदा के वर्तमान को तो हम देख ही रहे हैं। एक नगर आखिर कार समा जाता है या समाने की कोशिश करता है एक बड़े ओर मुकम्मल महानगर में। हरदा भी इसी प्रक्रिया के दौर से गुजर रहा है। सड़कों पर दौड़ती सैकड़ों मोटर साईकिलें, कार और ट्रक बदलाव के संकेत दे रहे हैं। स्कूल के लड़के लड़कियों में फैशन की नवीन क्रांति आ गई है। हमारे समय तक ऐसा नहीं था। क्या हो रहा है, इन बच्चों से महावीर, बुद्ध, टैगोर, तुलसी, गाँधी नानक या गालिब के बारे में यदि कुछ पूछा जाये तो शायद ही कोई कुछ बता पायेगा। यह संस्कृति, विकृति की निशानी है। भाषा के सवाल पर भी इस महानगरीय जीवन शैली ने हमारी मूल संस्कृति को विकलांग कर दिया है।

बदलाव ओर पाश्चात्यीकरण की इस आंधी ने गाँवों, कस्बों, नगरों ओर सभी शहरों को अपनी चपेट में ले रखा है। हरदा अकेला ही नही देश के सभी नगरों एवं शहरों का यही हाल है। यह बात भी ध्यान रखने की है कि जो व्यक्ति या शहर अपनी मूल पहचान खो देता है, वह पतन के अंधे गलियारों में भटकने लगता है। हमें लगता है कि ऊँची हवेलियाँ पत्थर की सड़कें जगमगाती रोशनी, सड़कों पर दौड़ती कारें यदि विकास का प्रतिबिम्ब है तो यह हमारा भ्रम है। हमारा भविष्य कहीं और है। एक विद्वान ने कहा है कि 'यदि राष्ट्र को एक वर्ष की योजना बनाना हो तो वह अधिक अन्न का उत्पादन करे। यदि कुछ वर्षों की योजना बनाना है तो वह वृक्ष लगायें। लेकिन उसे सदियों की योजना बनाना हो तो वह अच्छे मनुष्य को ढाले। यही सत्य है किसी राष्ट्र या नगर की शक्ति, उसके मानसिक संसाधन ही होते है'। यह बात हरदा नगर पर भी लागू होती है। विकास की प्रक्रिया में भौतिक मूल्यों से ज्यादा महत्वपूर्ण नैतिक मूल्य होते हैं। हमें कुछ नया करना होगा एक नई ज्योत जलानी होगी और हमारी परम्परागत संस्कृति को वर्तमान में हो रही विकृति से बचाना होगा। तभी हरदा का भविष्य सुरक्षित रह सकेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आज भी हरदा में ऐसे संवेदनशील, प्रबुद्ध और विचारवान नागरिक हैं, जो उसे अच्छे भविष्य की तरफ ले जा सकते है। इस अभियान में हरदा से बिछड़े हुए लोगों का योगदान भी बहुत जरूरी है। सभी को जागृत होना पड़ेगा, क्योंकि जागरण के बाद ही हमें पता चलता है कि हम सो रहे थे।

मैं रश्मि सिंह की एक अर्थपूर्ण कविता के साथ और हरदा के मंगलमय भविष्य की कामना करते हुए अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

लम्बी खामोशी
अब भारी है
इस शहर के सीने पर
तुम इसे सांस दो
खुली खुशबुओं के धल्लों में
लिपटी
ऐ मेरे मालिक
तुम इसे दो आँखें दो
साफ उजली
चाँदनी धुली
ताकि
बुत होता यह शहर
महसूस कर सके
देख सके
कि क्या हो रहा है ?
समझा सके
इस शहर को
इतना ही काफी है।
मेरे मालिक ....

यही उसका विकास, भविष्य ओर यही उसकी मंजिल है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हरदा के बुद्धिजीवी, उद्योगपति, शिक्षाविद् इस चुनौती को स्वीकार करेंगे और समन्वित प्रयासों से हरदा को विकसित नगर जरूर बना देंगे।

93, कोणार्क नगर, पुणे

स्वतंत्रता की पहली सुबह, मिडिल स्कूल में

- डॉ. बी. एम. कौशिक

चालीस का दशक मेरे जीवन का ऐसा दशक था, जिसके प्रारम्भ में ही कुछ मधुर सपने थे तो अभावों की टोकरी भी, कुछ महीनों के लिए सिर पर लद चुकी थी। उम्र होगी कोई छः वर्ष, विद्यार्थी जीवन शुरू हुआ, यद्यपि उसकी कोई स्मृति तो थी नही और न ही अब है क्योंकि इस उम्र में किस बालक को घटनाएँ स्मरण रहती हैं। वह समय तो गली कूचों में गिल्ली डंडा खेलने, कंचे खेलने, अपने से बड़ों को देखकर गोलापुरा मंदिर की व्यायाम शाला में शौकिया जाना, वह भी कभी कभी हुआ करता था। इतना अवश्य याद है कि एक दिन पिताजी अच्छे कपड़े पहनाकर अंगुली पकड़कर स्कूल ले गये और छोड़कर आ गये। संभवत: उसी दिन शाम के समय पिताजी को पुलिस घंटाघर से पकड़ कर ले गई। घर में सभी रोने लगे। खैर सुबह हुई, मैंने पिताजी को कई महीनों तक नहीं देखा। सब कुछ सामान्य सा चल रहा था।

इसी दशक के मध्य में जब होश संभाला और कुछ कुछ समझने लगा तो पाया कि मैं अन्नापुरा स्कूल में कक्षा तीसरी का छात्र हूँ। तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री जमना प्रसाद यादव जो हमें हिन्दी और गणित पढ़ाते थे, उनसे अधिक भय लगता था। उनका व्यक्तिव और प्रभाव देखकर मन में अपने आप यह इच्छा जागृत हुई कि बड़ा होकर मैं भी प्रधानाध्यपक बनूंगा और समय ने यह इच्छा पूरी की। उस समय की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ आज की परिस्थितियों से बिलकुल भिन्न थीं। इसका उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि उस समाज में मनुष्य पर उसकी आवश्यकताओं पर नैतिकता अधिक हावी थी। आज भौतिकतावादी युग है। सुख के सभी संसाधन मौजूद हैं और मनुष्य उनका आदी भी हो गया है। बस आवश्यकता है धन की जिसे वह किसी भी साधन से कमाना चाहता है जिसके लिए

भले ही उसे स्वयं को क्या, अपनी आत्मा को भी बेचना पड़े। इसीलिए नैतिकता ईमानदारी रसातल में चली गई है। शिक्षा व्यवस्था में उस युग में नैतिकता के पाठ पढ़ाये जाते थे, छात्र के हृदय में वह कूट कूट कर भरी जाती थी, आज की व्यवस्था में वह नहीं। उस समय लोग चाहे कितने ही गरीब क्यों न हों ईमानदारी का दामन नही छोड़ते थे। आज ईमानदारी की ओर देखते ही नहीं। सम्पन्न वर्ग और उच्च मध्यम वर्ग के लोग ही अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते थे। एक बानगी देखिये, जूता अथवा चप्पल पहनना अमीरों या सरकारी अफसरों वरिष्ठ कर्मचारियों का शगल था। सामान्य लोग या तो टायर की चप्पल पहनते थे या नंगे पैर ही घूमते देखे जाते थे जो चार छह आने में (आज के तीस चालीस पैसे) में मिल जाती थी। मुझे यह सुख कक्षा पाँचवीं में पहुँचने अर्थात् मिडिल स्कूल में दाखिले पर मिला। पाँच आने में टायर की सेन्डिल पहनाई गई और मैं उन्हें पहनकर दोस्तों, साथियों के बीच अकड़कर चलता था। अब सामाजिक सांस्कृतिक दायित्वों की बात करें तो इन्हे समझने की सूझबूझ भी कहाँ थी ? बहुत बाद में समाज के विभिन्न वर्गों के रीति रिवाजों को समझने की स्थिति में पहुँचा तो पाया कि वह युग भी आज भी 'खाप' पंचायतों से अलग नहीं था। मैंने मेरे परिवार ने यह दंश करीब डेढ़ वर्ष तक समाज या जाति बहिष्कृत होकर झेला था। अपराध केवल यह था कि परिवार के एक सदस्य का विवाह ऐसे ब्राह्मण की पुत्री से हुआ था जिसे हरदा शहर के ब्राह्मण सनाड्य नहीं मानते थे। प्रत्येक जाति के अलग-अलग नियम कानून थे। इतना जरूर कहूँगा कि हर समाज में तूती उन्हीं लोगों की बोलती थी जो धन बल या संख्या बल में अग्रणी होकर समाज की पंचायत को अपने हाथ में रखते थे। इसीलिए लोग विवाह आदि सम्बंध सीमित क्षेत्रों में स्थापित करते थे ताकि संख्याबल में श्रेष्ठ बनकर समाज के निर्णयों को नियंत्रित कर सकें। इसीलिए पंचायतें अपने हाथ में रखना इनका बायें हाथ का खेल था।

अब फिर से साठ साल पीछे की परिस्थितियों पर दृष्टिपात करूँगा क्योंकि दशक के अंत में जब मैंने हाईस्कूल में प्रवेश लिया, मेरे हाथ लगी जन्मपत्रिका, जो कि मोहल्ले के ही विद्वान पंडित श्री भगवानप्रसाद मिश्र ने तैयार की थी। उसमें मेरी जन्म तिथि 26 नवम्बर 1937 अंकित थी जबकि आठवीं के प्रमाणपत्र में 1 अक्टूबर 1936 थी। इस विरोधाभास के संबंध में जब पिताजी से पूछा तो उन्होंने उस समय की परिस्थितियों का विस्तार से उल्लेख करते हुए बताया कि पूरा हरदा शहर स्वतंत्रता संग्राम में उद्धेलित हो रहा था, कभी भी कुछ भी हो सकता था क्योंकि वे स्वयं भी उसमें सक्रिय थे। अत: कम उम्र होते हुए भी एक साल बढ़ाकर स्कूल में उम्र लिखवाना पड़ा। स्कूल में भरती नहीं किया जा रहा था क्योंकि सात वर्ष उम्र पूरी नहीं हुई थी। तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री यादव जिनके नाम का उल्लेख पूर्व में कर चुका हूँ, ने काफी मिन्नतों के बाद एक वर्ष बढ़ाकर नाम लिखा क्योंकि शिक्षा विभाग का नियम ही यही था कि सात वर्ष की उम्र के पूर्व बच्चे को भरती नहीं किया जावे। नियम

उल्लंघन पर प्रधानाध्यापक पर दंड का प्रावधान था। इन नियमों के सख्ती से पालन के पीछे सरकार की मंशा थी कि यह उम्र बालक के मस्तिष्क व शरीर के पूर्व विकास की होती, इस समय बालक पर शिक्षा का बोझ डालना उसका विकास रोकने में सहायक हो सकता था। बालक की जिज्ञासा शक्ति समाप्त होने लगती वह पढ़ाई को बोझ समझकर उससे भागने की कोशिश करता है, उसकी उपेक्षा करता है। आज का बालक इन्हीं परिस्थितियों से जूझ रहा है इसके निदान के लिए प्रयास हो रहे हैं।

मेरा हाई स्कूल तक का अध्ययन हरदा में ही हुआ। मित्रों सहपाठियों में प्रमुख थे सोहन लाला (नरेन्द्र), शरद शर्मा, सूरज गार्गव, नारायण शास्त्री, गिरजाशंकर गीते आदि। प्रायमरी स्कूल के शिक्षकों में यादवजी, शुक्लाजी, पांडेजी का मुझपर विशेष स्नेह रहा। मिडिल में श्री के.एन. पांडे तथा हाई स्कूल श्री विजयकुमार तिवारी (व्ही.के.टी.) जिन्होंने हमेशा मुझे छोटे भाई का स्नेह दिया। वैसे तो सभी शिक्षक स्नेहशील थे। स्नेह भी कैसा बानगी देखिये, स्कूल में किसी छात्र के निधन पर शोक सभा हो रही थी। सभा के बाद छुट्टी होना थी और हुई भी, लेकिन सभा के दौरान लाइन में खड़े एक साथी से कहा कल मैं मरूँ तो भी छुट्टी होगी ? यह बात पास ही खड़े सहायक प्रधानाध्यापक श्री गौर ने सुन ली। उन्होंने मुझे लाइन से अलग खड़ा कर पूरे स्कूल के सामने पाँच बेंत मारीं और भरी हुई आँखों, भरे गले से, मेरे हाथों को सहलाते हुए कहा ऐसा कभी मत कहना। सन् 1958 में मैंने शिक्षक के पद पर भोपाल में नियुक्ति पाकर हरदा छोड़ दिया, लेकिन जन्मभूमि का मोह कभी छूटता थोड़े ही है। कर्म करने के लिए कर्मभूमि भी तलाश करनी ही पड़ती ही है। मेरी स्नातकोत्तर तक की पढ़ाई भोपाल में हुई।

मिडिल स्कूल में जिस वर्ष प्रवेश लिया उसी वर्ष 15 अगस्त को देश आजाद हुआ। पूरा शहर सजाया गया। हमें प्रात: 6 बजे स्कूल बुलाया गया। हम नहाकर अच्छे कपड़े पहन बन संवरकर गये। स्कूल में हमें झंडे पकड़ाये गये और फिर शुरू हुई प्रभात फेरी, हमने खूब नारे लगाये, फेरी का आनंद लिया और एक घंटे बाद वापस स्कूल पहुँचे जहाँ झंडा वंदन हुआ, हमें कक्षाओं में भेजा गया और हर छात्र को पाँच पाँच लड्डू दिये गये और छुट्टी हुई। मैंने कुछ दोस्तों के साथ पास ही कचहरी और थाने पर अंग्रेजी झंडा उतारने और तिंरगा फहराने का मनोहारी दृश्य देखा जो हृदय को छू गया। साथ ही पुलिस परेड और झंडे को सलामी भी देखी। पूरा शहर उत्साह में डूबा था। शाम को घर के सामने ओटले पर बैठे हुए पिताजी (पं. गंगाविशन कौशिक) अपनी जेल यात्रा और पराधीनता के दौरान उनकी राजनीतिक गतिविधियों के संस्मरण अपने मित्रों तथा अन्य को सुना रहे थे। मैं भी बाल सुलभ उत्सुकतावश बैठ गया। उन्होंने बताया कि आज़ादी प्राप्त करने की ललक 1939 में पूरे देश में बड़ी तेजी से शुरू हो चुकी थी। जो 1942 में चरम पर पहुँच गई।

गाँधी बाबा जब हरदा आये उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। सारा शहर ही नहीं आसपास गाँवों से भी हजारों लोग पैदल, बैलगाड़ी आदि पर हरदा आये थे। जत्रापड़ाव पूरी तरह बैल गाड़ियों से भर गया था। इंच भर भी जमीन वहाँ नहीं बची थी। लोग गाँधी की एक झलक पाने के लिए लालायित थे। उन्हें वे महात्मा के नाम से नहीं 'गांधी बाबा' के नाम से जानते थे। गाँधीजी ने अपने स्वागत में उमड़े समूह को देख अभिभूत होकर कहा कि इस शहर का नाम हरदा नहीं 'हृदयनगर' होना चाहिए। यह नाम गाँधीजी की ही देन थी। संस्मरण जारी रखते हुए उन्होंने बताया कि सन् 42 में उनके सभी संगी साथी जेलों में ठूँस दिये गये, जिनमें महेशदत्त मिश्र, रामेश्वर अग्निभोज, चम्पालाल सोकल, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल (लच्छू स्टोर वाले), रामकृष्ण जलखरे, लक्ष्मीबाई जलखरे, सूरजमल सराफ आदि प्रमुख थे। उन्होंने कुछ क्षण सोचते हुए कहा कि अब मेरी बारी थी, साथी कोई नहीं। मैंने बाँस का एक पतला डंडा लिया, तिरंगा जेब में रखा और शाम को पहुँच गया घंटाघर चौक। जेब से झंडा निकाला डंडे में फहराया और झंडे को ही सभा अध्यक्ष बनाकर भाषण शुरू किया ही था कि भीड़ इकट्ठी होने लगी। उसी वक्त पुलिस आई, पकड़कर थाने ले गई। परिवार में विवाद चला, कोई माफी मांग कर आने को कह रहा था तो कोई माफी नहीं मांगने की हिदायत दे रहा था। इसी बीच पं. रामगोपाल हलवाई जो उनके नाना थे ने मांफी नहीं मांगने के स्पष्ट निर्देश दिये। परिणामस्वरूप सजा हुई और जबलपुर सेंट्रल जेल भेज दिये गये। कई महीनों उनकी सूरत देखने को नहीं मिली। इस प्रकार सन् 42 में जो आज़ादी प्राप्त करने के संघर्ष की भावना पूरे भारत में कूट कूटकर भरी थी, सन् 47 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक जारी रही। देश और समाज के प्रति त्याग, सेवा, सहानुभूति और संवेदना की भावना भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

हरदा शहर जहाँ एक ओर गाँधी जी के अहिंसक आंदोलन से अभिभूत था, वहीं युवा वर्ग को नेताजी सुभाषचंद्र बोस के क्रांतिकारी नारों में भी पूरी आस्था थी। नेताजी के नारों से प्रेरित होकर शहर का युवा वर्ग क्रांतिकारी कार्यों में भी लिप्त था। लेकिन कार्य ऐसे थे जिनसे केवल ब्रिटिश शासक परेशान होते थे न कि जनता। क्योंकि क्रांतिकारी युवावर्ग का आक्रोश ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ था। पिताजी ने बताया था कि धड़धड़े के पुल के पास उन्होंने रेल्वे के तार काटे इसके अतिरिक्त अन्य कार्यों में भी वे संलग्न रहे। उन्हीं दिनों पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र का नागपुर से साप्ताहिक अखबार (सम्भवत: प्रहरी) निकला करता था। जिसकी प्रतियां हरदा के शमशान घाट पर रात्रि के समय आती थी, जिन्हें रात के सन्नाटे में ही एकत्रित कर रातों रात लोगों के घरों में पहुँचा दिया जाता था। उसके हरदा से संवाददाता पिताजी ही थे। यह जानकारी उनके निधन के बाद मुख्यमंत्री श्री वोरा द्वारा भेजे गये शोक संदेश से हमें ज्ञात हुई, जिसमें उन्हें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के साथ ही पत्रकार के रूप में संबोधित किया गया था। उस समय का युवा वर्ग अहिंसक आंदोलन के साथ क्रांतिकारी

कार्यों में भी लिप्त था।

देश विभाजन के समय हरदा शहर में लोगों द्वारा सेवा और सहायता का उत्कृष्ट उदाहरण पेश किया गया। मुझे याद है विस्थापित सिंधियों से भरी ट्रेन जब हरदा स्टेशन पहुँची जिसमें हजारों की संख्या में बालक, वृद्ध, युवक, स्त्रियाँ ठूँस-ठूँस कर दयनीय अवस्था में भरे थे, प्राय: सभी भूखे प्यासे गंदे कपड़ों में थे। कईयों के कपड़ों पर खून के दाग थे। सारा शहर उन्हें देखने और सहायता के लिए उमड़ पड़ा था। कई घंटे ट्रेन रोकी गई। उन्हे भोजन, पानी दिया गया, नहाने की व्यवस्था की गई, कपड़े भी दिये गये, और ट्रेन के रवाना होने पर बहुत सारा भोजन और कपड़े भी साथ में रख दिया। सभी बड़े खुश थे आश्चर्य चकित भी स्वागत और सहायता देखकर। कई परिवार हरदा शहर में स्थापित होने के लिए रूक गये जिन्हें अन्नापुरा में टीन शेड बनाकर बाद में कॉलोनी बनाकर दी गई। इस ट्रेन का ड्राईवर उसका सहायक और गार्ड भी सिंधी ही थे और उनका परिवार भी उनके साथ था। यह ट्रेन करांची के पास किसी नवाबशाहगढ़ से आई थी।

शहर में संवेदनशीलता भी अटूट थी। विभाजन के बाद अनेक मुस्लिम परिवार अपना सब कुछ बेचकर पाकिस्तान जाने के लिए तैयार थे, लेकिन उस समय के कांग्रेस नेताओं और कार्यकर्ताओं ने कई मुस्लिम परिवारों को स्टेशन से लौटाकर लाये, पुनर्स्थापित किया, सुरक्षा की गांरटी दी। लोगों में गाँधीजी के प्रति निष्ठा देखते ही बनती थी। ऐसा नहीं था कि उनके विरोधी नहीं थे, लेकिन उनकी संख्या कम थी। सन् 48 में गाँधीजी की हत्या की खबर फैलते ही शहर को ऐसा लगता था कि साँप सूंघ गया हो। समूचा शहर शोक में डूब गया था। कई घरों में दो दिन तक चूल्हे नहीं जले। गाँधी जी की अंतिम क्रिया दिल्ली में हो रही थी लेकिन प्रतीक स्वरूप शहर में नदी के किनारे पेड़ी घाट पर अंतिम संस्कार किया गया। पूरे शहर में शव यात्रा निकाली गई। कई लोगों ने सिर मुंडवाकर बाल दिये जिसमें हिन्दू मुसलमान भी शामिल थे। इस प्रकार हरदा संवेदनशीलता के मामले में आसपास के शहरों में अग्रणी रहा है।

जहाँ तक हरदा शहर के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का सवाल है, मैं पहले कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर चुका हूँ। सन् 1947 में हरदा की आबादी कुछ 32 हजार थी। इस छोटी सी आबादी वाले शहर में काव्य गोष्ठी, अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि होते रहते थे, वहीं दो तीन साल में विराट कवि-सम्मेलन भी। मुझे याद है सन् १९५० में जब मैं कक्षा नवमीं में था हाईस्कूल में कवि सम्मेलन हुआ जिसके प्रमुख कवि थे, भवानी प्रसाद मिश्र और उनकी प्रमुख और चर्चित कविता थी जो उन्होंने सुनाई 'जी हाँ मैं गीत बेचता हूँ।' कुछ नाटक क्लब भी थे, जिनमें एक था 'डायमंड जाली जूनियर क्लब'। इसे हमारे एक साथी देबू ने

प्रारम्भ किया और हम इस क्लब के माध्यम से बारह बंगले के रेल्वे के मनोरंजन हाल में नाटक खेला करते थे। जिन्हें हमने हाई स्कूल के वार्षिकोत्सव में भी खेला। शहर में कुल एक सिनेमा हॉल था श्रीकृष्ण टॉकीज जिसे सुविधानुसार लोग बाबूलाल टॉकीज भी कहा करते थे क्योंकि उसके मालिक का नाम बाबूलाल था।

अब मैं हरदा शहर में मनाये जाने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के तीज त्यौहार की ओर आता हूँ। मोहर्रम सभी धर्मों जातियों के लोग पूर्ण श्रद्धा के साथ मनाते थे। मोहर्रम के ताजियों का निर्माण जत्रापड़ाव में होता और कत्ल की रात के पहले कपड़ा बाजार में सजने लगते थे। बाजार पूरी तरह हट जाता था। कपड़े की दुकानें स्वेच्छा से उठा ली जाती थी। बाजार में केवल एक दीवार रह जाती थी जिसके दोनों तरफ दुकानें लगा करती थी। मोहर्रम की हम छात्रों को काफी प्रतीक्षा रहती थी क्योंकि एक तो दस दिन की स्कूल से छुट्टी और रेवड़ियों का स्वाद चखने को मिलता था। जिसमें पं रामगोपाल हलवाई जी की मावे की रेवड़ी का क्या कहना ? मोहर्रम के ताजिये पूरे शहर में घूमते हुए अपने गन्तव्य की ओर जाते और सभी सम्प्रदायों के लोग उसमें शरीक होते, दुआ करते, सारी रात जागरण होता। होली, दीवाली, भुजरिया, डोलग्यारस आदि त्यौहार भी पूर्ण श्रद्धा और परम्परागत तरीकों से मनाये जाते थे। होली पर सभी का रंग गुलाल से सराबोर होना, घर-घर मिष्ठान वितरण का कार्यक्रम कई दिनों तक चलता था। दीवाली पर भी दस दिन की छुट्टी हुआ करती थी। शहर छोटा था, लेकिन आत्मा विशाल थी। सभी मिलजुल त्यौहार मनाते थे। समाज में जातीय कट्टरता थी लेकिन सहिष्णुता के आगे नगण्य, होली पर विभिन्न जातियों के लोग अपने अपने मंदिरों में इकट्ठे हो कर ढोल ढमाके के साथ घर घर जाते थे। इसी प्रकार भुजरियों पर सारा शहर शाम को पेढ़ीघाट पर एकत्रित होता, मेला सा लगता, भुजरिये विसर्जित की जातीं, बड़ों को और साथियों को भुजरिये लेने देने का सिलसिला शुरू होता। भुजरियों के जुलूस में सबसे आगे गोलापुरा की भुजरिये हुआ करती थी। इसी प्रकार डोल ग्यारस पर शहर भर के डोल, बड़े मंदिर के सामने एकत्रित होकर शहर भ्रमण करते हुए पेड़ी घाट के लिए रवाना होते थे, सबसे आगे गोलापुरा का डोल ही होता था।

सन् 1955 से 70 के बीच हाईस्कूल हरदा के हम कुछ पूर्व छात्र भोपाल में पत्रकारिता से जुड़े, कुछ पूर्णकालिक तो कुछ अंशकालिक। सर्व श्री मदनमोहन जोशी, विष्णु राजोरिया, मेरा छोटा भाई विष्णु कौशिक आदि। दिनकर शुक्ला भी हरदा तहसील से थे। हम सभी में विष्णु राजोरिया ऐसे थे जो कविता, कहानियाँ भी लिखते थे। लेख लिखने में मदन मोहन जोशी ने 'इन्फा' के कार्यकाल में महारत हासिल की थी और वे सेफिया कॉलेज में व्याख्याता भी रहे। इधर विष्णु राजोरिया हमीदिया कालेज के छात्र थे साथ ही जिला युवक कांग्रेस के महामंत्री भी। छटवें सातवें दशक में वे अध्यक्ष भी रहे।

कभी रिश्तेदारी में कभी माँ, पिताजी की बीमारी या अन्य सामाजिक कार्यक्रमों में अक्सर हरदा आना-जाना लगा रहता है। अखबारों में जब भी कभी हरदा की खबरें पढ़ता हूँ तो मन को बहुत अच्छा लगता है और आँखों के सामने पूरा शहर 'सिनेमा की रील' की तरह दिखने लगता है। आज से पचास साल पहले का शहर अब कितना विस्तृत हो गया कल्पना से परे है। अभी हाल में हरदा प्रवास के दौरान मैंने देखा कि कई गलियों और चौराहे पहचान में नहीं आ रहे थे। मुझे कमल जैन से कई स्थानों पर पूछना पड़ा कि यह कौन सी जगह है।

हरदा के पलासनेर निवासी श्री राधेश्याम यादव (अजातशत्रु) उल्हासनगर में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं। श्री माणिक वर्मा कवि सम्मेलनों में हरदा का ही प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं श्री मदनमोहन जोशी, कैंसर हॉस्पिटल के सर्वेसर्वा हैं। प्रो. प्रेमशंकर रघुवंशी कवि एवं सामाजिक साहित्यकार हैं तो विष्णु कौशिक दैनिक सांध्य प्रकाश के सलाहकार सम्पादक हैं। राजोरिया जी ने भोपाल में कई स्कूल कई कॉलेज और एक चैरिटेबल हॉस्पिटल स्थापित कर रखा है।

आजकल हरदा में तीन प्रायवेट कॉलेज और दर्जन भर स्कूल खुल गये हैं। इंग्लिश स्कूल सेंट मेरी की बड़ी चर्चा है। समस्या तो आजकल वाहनों की भीड़ के कारण ट्रेफिक की भी है। बायपास रोड़ की सख्त आवश्यकता है। स्टेशन रोड से खेड़ीपुरा तक के रोड को , वन-वे रोड घोषित कर, हरदौल बाबा, सत्यनारायण मंदिर, गढ़ीपुरा, मांग मोहल्ला होते हुए दूसरा वैकल्पिक रोड बनाना समय की आवश्यकता है। अपने जीवन की संध्या बेला मे मैं बस यही कामना करता हूँ कि हरदा सुख शांति और समृद्धि का केन्द्र बने ताकि आने वाली पीढ़ी हरदा को 'हृदय नगर' कहकर गौरवान्वित हो सके। बस ।

ए १८२ शाहपुरा, भोपाल

शिक्षकों का बहुत सम्मान था

डॉ. पी.डी. अग्रवाल

जन्म पत्रिका और हाई स्कूल की अंक सूची के अनुसार मेरा जन्म 16 दिसम्बर 1942 को हुआ था। श्री भगवानदासजी अग्रवाल हमारे दादाजी थे। राजस्थान से पहले वह बीड़ (खण्डवा के निकट का एक कस्बा) आये और बाद में हरदा आकर अनाज का व्यवसाय किया। हमारा परिवार 'बीड़ वाले' के नाम से जाना जाता था। दादाजी के तीन पुत्रों में सबसे बड़े श्री मदनलाल अग्रवाल का मैं सबसे बड़ा पुत्र हूँ। तीन छोटे भाई भी हैं। प्रायमरी शिक्षा, टॉउनहाल स्थित मराठी स्कूल में पूरी कर, तत्कालीन एक मात्र नगर पालिका प्रशासित मिडिल स्कूल में माध्यमिक कक्षाओं का अध्ययन किया। गवई साहब, श्री दुलीचंद शर्मा, श्री दशरथ दीक्षित, श्री एन.पी.चौबे, श्री कैलाश शर्मा, श्री रामाधार उपाध्याय, मुमताज अली, लल्लू मास्साब, हरी वर्मा, आदि हमारे शिक्षक थे। श्री जगन्नाथ प्रसाद सिरोही और श्री दशरथ दीक्षित अंग्रेजी पढ़ाते थे। प्रतिदिन सामूहिक ड्रिल होती थी। पाण्डेजी हमारे गेम्स टीचर थे। हर कक्षा को एक पीरियड गेम्स का तय था। हॉकी, फुटबाल, कबड्डी और व्हालीबाल तथा बेडमिंटन की पूरी खेल सामग्री स्कूल से मिलती थी। हमारे बैठने के लिये लकड़ी की डेस्क थी, जिनमें चीनी की छोटी दवात जड़ी हुई थी। स्कूल चपरासी प्रतिदिन इन सभी दवातों में स्याही भरता था।

शिक्षकों का बहुत अधिक सम्मान था। गली में खेलते हुये यदि दूर से कोई शिक्षक आते हुये दिख जाते तो खेलने वाले सारे बच्चे घरों में घुस जाते थे। मोहल्ले के लड़कों में बसंत कोठारी, बृजरतन मूंदड़ा, विष्णु राजोरिया, भगवत स्वरूप ब्यौहार, रमेश शर्मा, प्रमोद अग्रवाल आदि साथ रहते थे। गंगू हलवाई, सीताराम हलवाई, लक्ष्मी नारायण हलवाई की दुकान बहुत चलती थी। पूरा शहर यहाँ से मिठाई खरीदता था। हरदा नगर में लक्ष्मी नारायण

हलवाई की कचोरी खाने लाइन लगती थी। पहले आओ - पहले पाओ के नियमानुसार कचोरी मिलती थी। मैं स्वयं, बाबूजी और चाचाजी हम सभी करीब-करीब प्रतिदिन कचोरी खाते थे। कभी-कभी माँ के लिये भी घर ले जाता था।

उन दिनों सन् 50 से 60 के दौरान जो भी बाजार था, वह घंटाघर के आसपास ही था। श्रीकृष्णा टॉकीज के पास एक-दो चाय, पान, नमकीन की दुकाने थी। फरहत सराय में नाई, धोबी और मांसाहारी भोजन की दुकान थी। घंटाघर से नदी किनारे की ओर चार गलियां थी और बड़े मंदिर की ओर तीन गलियां। सराफा, किराना, कपड़ा और बरतन की दुकानें बहुतायत में थी। राधे और फुल्लु पान वाले की दुकानों पर लाजवाब सोहागपुरी बंगला पान की जमकर बिक्री होती थी। सराफा बाजार के सामने नीचे सड़क पर मनिहारी, चने, धानी, खिलौने, चाट-पकौड़ी आदि की दुकानें लगती थी। सब्जी बाजार के पास ही पान और फल बाजार भी था। सब्जियां बहुत सस्ती थी। आलू दो-तीन आने में एक किलो मिलते थे। हरी मिर्च और हरा धनिया मुफ्त में सब्जी के साथ झोले में दुकानदार डाल देता था। सब्जी बाजार से आठ-दस सीढ़ी नीचे उतर कर जत्रा पड़ाव का मैदान था। जहां टायर की चप्पलें आठ आने में मिल जाती थी। सूपड़े, झाड़ू-बुहारी, टोकनी वाले बसोड़ भाई, यहीं बसते और व्यापार करते थे।

मिडिल स्कूल से डरे-सहमें, आठवीं पास कर, हम हाई स्कूल पहुँचे। ऐसा लगा मानों किसी जेल से निकलकर खुले मैदान में आ गये हों। मुझे मिडिल स्कूल में ही बाबूजी ने सायकल दिला दी थी। उन दिनों हरदा में सायकल बहुत कम थी, दो दुकानें थी। जहाँ से दो आने घंटे में सायकल किराये पर मिल जाती थी। बड़े सम्पन्न परिवारों में से गिने-चुने परिवारों में ही सायकल थी। मिडिल स्कूल में केवल दो और हाई स्कूल में कुल सात-आठ लड़के सायकल से आते थे। बड़े मौज के दिन थे। खेलना, खाना पीना और पढ़ना। श्री कृष्णा और प्रताप टॉकीज में दो आना टिकिट में सिनेमा देखा जा सकता था। घर से इजाजत मिलती नहीं थी। रामराज्य, सीता स्वयंवर, सती अनुसइया आदि तो देख सकते थे लेकिन हंटरवाली, बैजू बावरा, सुलताना डाकू देखने के लिये चोरी छुपे जाते थे। आमतौर पर किसी दोस्त के घर पढ़ने जाने का बहाना बनाया जाना आम बात थी। इससे अधिक सरल मनोरजंन था तीन पत्ते या रमी खेलना। अक्सर दो चार दोस्त किसी के घर बैठकर ताश खेलते थे। आठ दस रूपये जीत जाना बड़ी साधारण बात होती थी। मुझे सभी 'लकी प्लेयर' मानते थे। मैं आमतौर पर हमेशा विजयी रहता था।

हाई स्कूल आने पर मित्रों की संख्या स्वत: बढ़ती चली गई। शंकर अग्रवाल, रमेश उपरित (किरकिरी), रमेश शर्मा, लक्ष्मी नारायण राठी, विष्णु राजोरिया, प्रमोद और अरूण अग्रवाल, बृजरतन (हरू) मूंदड़ा, आदि अभिन्न मित्र थे। हाई स्कूल के दिनों की बात है।

मुख्यमंत्री डॉ. कैलाशनाथ काटजू, 10 फरवरी 1958 को हरदा अस्पताल का उद्‌घाटन करने आये थे। मेनरोड से उनकी कार जब अस्पताल की ओर मुड़ रही थी, उसी वक्त विष्णु राजोरिया कुछ लड़कों को लेकर सामने जाकर नारेबाजी करवाने लगा। मुख्यमंत्री को घेरकर लड़के स्कूल कम्पाउण्ड में ले आये। बरामदे में एक कुर्सी पर डॉ. काटजू को बैठाकर राजोरिया ने स्कूल की माँगों को लेकर भाषण दिया। मुख्यमंत्री ने सभी मांगे मंजूर की और लौट गये। यह सब चन्द मिनिट में ही हो गया।

हिन्दु-मुस्लिम त्यौहार भाईचारे से मनाये जाते थे। हमारे अग्रवाल समाज के संस्थापक महाराज अग्रसेन की जयंती अग्रवाल धर्मशाला में आयोजित की जाती थी। हमारा गांधी चौक मोहल्ला मारवाड़ी मोहल्ला है। अग्रवाल माहेश्वरी, जैन, सरावगी आदि के अलावा मात्र दो ब्राह्मण घर थे। एक मुखरैयाजी का और दूसरा पंडित जगरामजी राजोरिया का। हमारे मोहल्ले में एक मोती सेठ थे। लोग उन्हें 'मोती काल्या' के नाम से सम्बोधित करते थे।

होली की तैयारी का अपना अलग आनंद था। टेसू की सवारी निकाली जाती थी। पन्द्रह-बीस दिन पहले से ही लकड़ी चुराने का कार्यक्रम रात के अंधेरे में किया जाता था। आमतौर पर किशोर उम्र के लड़के ही यह काम करते थे। हम लोग सातवीं-आठवीं में पढ़ते थे तब होली की लकड़ी चुराते समय, सब्जी मण्डी की एक गली में लकड़ी के बड़े पेड़ का ठूंठ उठाकर हम लोग चल रहे थे। किसी ने ललकारा - 'लड़कों ने ठूंठ छोड़ दौड़ लगा दी। विष्णु का हाथ दब गया। एक अंगुली लहू लुहान होकर लटक गई। महीनों की मलहम पट्‌टी के बाद भी कटी हुई उंगली सीधी नहीं हो सकी। आज भी उसके एक हाथ की पहली उंगली टेढ़ी है। हाई स्कूल पास कर राबर्टसन कॉलेज जबलपुर में बी.एससी. में प्रवेश मिल गया, पचपेढ़ी के हॉस्टल में रहने लगे। यहां बृजरतन मूंदड़ा, टी.डी. अग्रवाल, योगेश उपरित, खेरवा, पारे आदि साथ में थे।

मैं मेडिकल कॉलेज में प्रवेश को लालायित था। पिताजी की असामयिक मृत्यु के कारण राजोरिया भोपाल चला गया था। कहानी, लेख, कविता आदि वह स्कूल में ही लिखने लगा था। चेतना नामक मुद्रित पत्रिका भी उसने हरदा हाई स्कूल में प्रकाशित कर इतिहास रच दिया था। मेरा एडमिशन मेडिकल कॉलेज भोपाल में हो गया। मैं खुशी से उछल पड़ा। बाबूजी प्रसन्न किन्तु चिंतित थे। अनाज के होल सेल व्यवसाय में आते-जाते उतार चढ़ाव में उन दिनों घर की अर्थव्यवस्था चरमरा गई थी। किसी तरह भोपाल आकर प्रवेश लिया। और मुझे नाइट ड्यूटी में नवभारत में काम मिल गया। हमारी दोस्ती गहराती रही। दिन बीते, वक्त गुजर गया वह सुख-दुख की खट्‌टी-मीठी यादों का सावन भादो का मौसम, जिसमें हर हाल में मौज मस्ती थी।

एम.बी.बी.एस. डिग्री प्राप्ति के बाद शासकीय डिस्पेंसरी में मेरी पोस्टिंग भोपाल के निकट नजीराबाद गाँव में हो गई। दस वर्ष इसी डिस्पेंसरी में बीते। गरीबी, भुखमरी, मजबूरी, बेबसी, लाचारी से भरी दुख-दर्द की ऐसी-ऐसी दास्तान देखने को मिली कि आज भी याद आने पर सिहरन सी होती है। हरदा की मिट्टी की महक भरी थी श्वासों में या पिताजी के क्रांतिकारी कर्मठ देशभक्तिपूर्ण अंश का आशीर्वाद था, मैं लगातार पीड़ित मानवता की सेवा में लगा रहा। यह जीवन का अनमोल अनुपम अनुभव था। भारत की आत्मा से साक्षात्कार का यह अविस्मरणीय दशक रहा।

इटारसी के जनसेवा चिकित्सालय में 1980 में स्थानान्तरित होने पर मैं हरदा के अधिक निकट आ गया। महीने में एक बार जब भी मौका मिलता मैं हरदा पहुँच जाता था। साथी सहयोगी सब इधर-उधर, रोजी-रोटी कमाने में जुट गये थे। लेकिन पत्र व्यवहार और फोन से हम सभी एक सूत्र में बंधे रहे।

शासकीय सेवा से सेवा निवृत्त होने पर अग्रवाल समाज द्वारा स्थापित डिस्पेंसरी इटारसी में नि:शुल्क सेवा दे रहा हूँ। समाज का दो लाख बजट है। नि:शुल्क दवाएं भी दी जाती है। मैं समय-समय पर स्कूलों में बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण करने भी जाता हूँ। लायंस क्लब, रोटरी क्लब, सेवादल, नागरिक कल्याण समिति सहित अनेक स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा गाँवों में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य शिविर लगाये जाते हैं। इन सभी में, मैं अपनी नि:शुल्क सेवाएँ देकर अपने जीवन को सफल मानता हूँ। पीड़ित मानवता की सेवा से जो सुख मिलता है उसको शब्दों की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। मैं जिला चिकित्सा प्रकोष्ठ का अध्यक्ष, मानव अधिकार की ओर से 'मानव-मित्र', इंडियन मेडिकल एसोसिएशन का लाइफ मेम्बर तथा इटारसी की दर्जनों समाज सेवी संस्थाओं में पदाधिकारी, कार्यसमिति सदस्य और आजीवन सदस्य के रूप में अपनी सेवाएँ दे रहा हूँ। मैं पीड़ित मानवता की सेवा को ही अपना धर्म मानता हूँ। घनिष्ट मित्रों में विष्णु राजोरिया 1985 में दुबारा विधायक चुने गये। मंत्री बने और चार विभागों, स्थानीय शासन, आवास एवं पर्यावरण, जनशक्ति नियोजन, केपिटल प्रोजेक्ट के स्वतंत्र प्रभारी रहे। प्रदेश मंत्रिमंडल के किसी भी सदस्य के पास इतने विभाग नहीं थे। हरदा जिला बनाने के साथ राजोरिया ने शत-प्रतिशत विद्युतीकरण और अनेक ऐतिहासिक निर्माण और विकास कार्य किये। उन्होंने हरदा की माटी को गौरव गरिमा प्रदान कर अपना नाम अमर कर दिया। मुझे आत्म सन्तोष और गौरव है कि वह मेरा मित्र, पड़ौसी और 'क्लासमेट' रहा।

डॉक्टर लक्ष्मीनारायण राठी हरदा में चिकित्सा सेवा करते-करते इस असार संसार को छोड़ गये। प्रमोद अग्रवाल चीफ इंजीनियर के पद से रिटायर होकर और हरदा के

खिरकिया ब्लाक को तवा नहर योजना की सिंचाई नहर की सौगात दिलाने में सहयोग कर विगत वर्ष प्रभु के श्री चरणों में चले गये। शंकर स्टोर्स वाला पड़ौसी मित्र, सांवरिया सेठ का सुपुत्र शंकर बहुत पहले चल बसा। योगेश उपरित, राबर्टसन कॉलेज में ही लेक्चरर हो गया था। वह व्यापम में डॉयरेक्टर भी रहा। बृज रतन मूंदड़ा मल्टी नेशनल कम्पनी से सेवा निवृत्त हो पूना में बस गया है। सोहन सादानी, चक्रपाणीआचार्य केशवाचार्य भी साथ छोड़ गये। किस किस को याद करूं-किसे भूल जाऊँ ?

तिरूपति नगर, इटारसी म.प्र.

स्मृतियों में जीवित रहेगा हरदा

उषा राज शर्मा

मैं अपने आप को गौरवान्वित महसूस कर रही हूँ। अपने शहर की अभिव्यक्ति अपने विचारों में करने का अवसर मिला, इस तरह एक बार फिर बचपन को जीने का अवसर मिल गया है। हरदा मेरी जन्मस्थली है, जन्म के ठीक 10 वर्ष बाद मेरा परिचय हरदा शहर से हुआ जो जन्मस्थली के साथ शिक्षास्थली, संस्कार स्थली बना। जिन्दगी नन्हें कदमों से चलते चलते कब दौड़ने लगी, पता ही नही चला इस दौड़ के कई सहयोगी, हमसफर, हमराही बने बिछड़े प्रारंभिक शिक्षा ग्राम्य जीवन में पूर्ण कर हरदा में आगे की शिक्षा के लिए कन्या शाला में दाखिला हुआ। वहां गुरूजनों की कृपा एवं हितैषियों की भागीदारी रही, जिनकी वजह से हमारा जीवन प्रवाहमान रहा। उन्ही में से कुछ शिक्षकों के नाम आज भी याद आते हैं डॉ. ओ.पी. मल्होत्रा, डॉ. हरिकृष्ण दत्त, डॉ. ओ.पी. यादव, प्रो. पटेल इन्हीं के सहयोग से कॉलेज की पढ़ाई पूर्ण की। स्कूल कॉलेज में कभी होनहार विद्यार्थी नही थे, लेकिन यहां जो संस्कारों की शिक्षा मिली उससे जीवन की हर विकट से विकट परिस्थितियों में पास होते गये।

उन दिनों हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त कर जब मैंने आगे कि शिक्षा प्राप्त ना करने का मन बनाया तभी एक ऐसे शख्स का जिक्र करना जरूरी है जो मेरे प्रेरणास्त्रोत बने। उन्होंने मुझे समझाया कि तुम्हे आगे पढ़ना क्यों जरूरी है ? वह शख्स आज इस दुनिया में नही है लेकिन हमारी स्मृति में सदैव रहेंगे। वह भाई साहब के परम मित्र स्व. राजेश मालवीय थे। उन्होंने कहा कि तुम्हारे परिवार में इस समय तक कॉलेज की शिक्षा तक कोई पहुँचा ही नही है उन्होंने ही समझाया कि अगर तुम आगे अपनी पढ़ाई नहीं करोगी तो तुम्हारे परिवार में कोई भी स्नातक नहीं होगा तब मैंने आगे की पढ़ाई जारी रख परिवार की प्रथम स्नातक

होने का गौरव पाया। बाद में तो यह सिलसिला चल पड़ा, बाद की पीढ़ी विदेश तक पहुँच गयी।

हरदा हमारी स्मृति में उसी तरह रचा बसा है, जैसे शरीर में हृदय। हर शहर का अपना महत्व एवं सामाजिक राजनैतिक एवं भौगोलिक परिदृश्य होता है। उसी तरह हरदा भी अपनी कई विशेषताओं के साथ उन्नति के नये आयाम लिख रहा है। कुछ खोज रहा है, कुछ धुंधली तो कुछ ताजी यादों के साथ सदैव हमारी स्मृतियों में जीवित रहेगा। हम हरदा में रहें या न रहें लेकिन इससे हमारा गहरा लगाव सदैव रहा है। तब भी जब हरदा तहसील था या अब जब जिला बन गया तब भी सदा वह हमें अपने परिवार के उस सदस्य की तरह रहा जो कभी नायक, कभी खलनायक तो कभी बच्चों की तरह शांत कभी बुर्जुगों की तरह नसीहत देता, कभी दोस्त की तरह अपनापन लिए लगा। इसीलिए कहते हैं हरदा का नाम हरदा न होकर 'हृदय सा' होना था। जो हृदय सा लगे जिसकी शरण में जाते ही लगे माँ की गोद मे आ गये हों। आज हरदा से दूर रहकर भी हरदा हमारी स्मृति में समाया है कभी दुबारा जन्म मिले तो पुनः हरदा में जन्म लेने की तमन्ना रहेगी।

वहाँ की शांत गलियां, गलियों में 'ओटला संस्कृति' आज भी जीवित है, वहीं चौके चूल्हे से लेकर कठिन से कठिन ज्वलंत से ज्वलंत सभी समस्याओं का समाधान आसानी से बड़े बुजुर्ग कर देते हैं। कब किस की दुश्मनी खत्म हो जाए, किस ओटले पर बैठकर राजनीति की शिक्षा मिल जाए, चाय के साथ कब मोहल्ले की तकदीर बदल जाए पता ही नहीं चलता। यह सभी बड़े शहरों में कहां, हरदा लाली पाप का वह मीठा एहसास है जिसको खाने का मन सदैव करता है।

हरदा मे वह संस्कृति आज भी जीवित है जब किसी का दुख उसका नहीं, पूरे मोहल्ले का दुख एक की खुशी सबकी खुशी होती है। बेटी की शादी हो या बेटी का जन्म, त्यौहार सब मिलकर, एक साथ जात पात को भूल कर मनाते हैं। मुझे खुद अपनी शादी का वाकिया याद है अचानक शादी तय होने के 15 दिन के अन्दर शादी का इंतजाम करना कितना मुश्किल काम होता है। इस मुश्किल वक्त में नरेन्द्र भाई सा. ने कब कहां से क्या व्यवस्था की, हमे पता ही नही चला, बारात ठहराने की जगह गणेश जीनिंग फैक्ट्री थी, जिससे अपने आप ही शादी यादगार बन गयी। बराती स्वयं इतने प्रभावित थे क्योंकि प्रकृति के निकट हरे खेत, दूर तक कपास के ढेर, कईयों ने तो कपास देखा भी नहीं था। वे इतने अभिभूत हुए कि आज तक याद करते हैं। ऐसे शहर हरदा में पुनः जन्म लेना कौन नहीं चाहेगा ? ऐसा ही भोगोलिक परिदृश्य है इस शहर का, एक बाजू माँ नर्मदा है तो दूसरा बाजू काली माचक, हृदय में अजनाल की धारा बहती है। यहां की काली मिट्टी जो गेहूँ एवं कपास के लिए उसी

तरह प्रसिद्ध है, काली मिट्‌टी पर तवा नहर का पानी, उपजाऊ भूमि को व्यवसायिकता की ओर ले जा रहा है। धीरे धीरे इस शहर का स्वरूप बदला, गेहूँ कपास की जगह सोयाबीन एवं अन्य नगदी फसलों ने ले ली। यह शहर सदैव ही सम्पन्न रहा कृषि प्रधान होने से हरदा शहर की कृषि मंडी विशिष्ट स्थान रखती है। आज भी इस मंडी में लाखों रूपयों का व्यापार होता है।

हरदा नगर को श्रद्धेय माणिक वर्मा, नर्मदाप्रसादजी उपाध्याय, अजातशत्रु जी ने राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलवाई। पूर्व नगर पालिका अध्यक्ष वीरेन्द्र कुमार आनंद जिन्होंने हरदा के विकास की नींव रखी, उनके द्वारा बनाये गये मार्केट एवं पार्क विकास की कहानी कहते हैं। नर्मदा परियोजना उन्हीं की देन है, इसे और आगे बढ़ाया श्री सुरेन्द्र जैन ने, स्वच्छ हरदा, हरित हरदा बनाया। यह एक कर्मठ एवं दृढ़ इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति की देन है जिन्होंने हरदा को हरियाली के साथ वृहद रूप दिया। पार्क, नदी किनारे स्वच्छ घाट सड़कें मार्केट एवं अद्‌भुत 'शहीद गैलरी' का निर्माण कर अपना नाम इतिहास मे दर्ज कराया। ऐसा हरदा मुझे बार-बार याद आता है।

मालीपुरा उज्जैन

हरदा, हमारे अंदर

डॉ. नटवर हेड़ा

आज मैं हरदा से सिर्फ 80 कि.मी. दूर इटारसी में हूँ, हरदा की माटी की गंध मेरे अंतर में गहरे समाई हुई है। मेरे लिए हरदा को इस जन्म में भूल पाना तो संभव नहीं है। हम मानपुरा में रहते थे, इसलिए पहली से पांचवी तक मानपुरा स्कूल में ही पढ़े। यह स्कूल, अब लाल-स्कूल कहलाता है। फरहत सराय व चर्च के बीच का यह स्कूल सच्चा सेकुलर स्कूल था। हमारे मुख्य अध्यापक थापकजी थे, वे समर्पित भाव से स्कूल के लिए कार्य करते, मालवीयजी का अनुशासन आज तक याद है। मोहल्ले के मित्र सहपाठी रहे उनमें एकनाथजी अग्रवाल, भोलाराम जोशी, सुरेश पुरोहित एवं सुरेन्द्र बंडावाला प्रमुख है। हम एक साथ बैठकर अध्ययन करते, उस समय साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता था। पुस्तकों से लेकर शरीर सभी व्यवस्थित व साफ होना चाहिए, यह एक शर्त होती थी। ऊंच-नीच का भेद कभी नहीं रहा। मिडिल स्कूल केवल एक था, नगरपालिका स्कूल, प्रधानपाठक थे, मोहम्मद अली सर, कड़क मिजाज व नरम दिल। लल्लू सर, ने मुझ पर पुत्रवत स्नेहभाव बनाए रखा, उनकी पढ़ाई ग्रामर आज तक याद है। दादाजी, श्यामलाल जी उपाध्याय कवि थे, उनकी रचनायें भी सुनने को मिल जाती थी । हमारे अग्रज लोकेश अग्रवाल ने स्कूल की गतिविधियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, उन्होंने अपनी पहचान बनाई। आठवीं में कक्षा शिक्षक थे, जाकिर अली सर, कड़क अनुशासन, समय की पाबंदी, गांधी टोपी अनिवार्य, पेन से लिखना अनिवार्य, लिखावट पर विशेष ध्यान, एक छोटी सी प्रयोगशाला जहां विज्ञान के प्रयोग होते थे ।

मित्रों मे मैं नगीन जैन को याद किये बिना नहीं रह सकता, हांलाकि मेरे पिता उनके यहां मुनीम थे, पर यह बात हमारी दोस्ती में कभी बाधा नहीं बनीं। उनके घर मुझे भी पुत्रवत

स्नेह मिलता रहा, त्यौहारों पर साथ रहना, खाना, फोटो खिंचवाना, आज भी हम एक दूसरे के दिल में धड़कते हैं। प्रेम गुलाटी, इब्राहीम तेली, रमेश अग्रवाल की याद भी बार-बार आती है। श्री बालकृष्ण अग्निहोत्री के 'बाल-विकास मंदिर' शाखा ने भ्रमण व सेवाकार्य का मौका दिया। 1979 में एम.डी. करके लौटा तो मामाजी, डॉ. एल.एन.राठी चाहते थे कि मैं हरदा में ही प्रेक्टिस करूं, पर नियति को कुछ और ही मंजूर था। पिताजी की जबावदारियों का बोझ कम करना था, स्वाबलंबी बनना था। इसलिए हरदा छोड़ना पड़ा। मेरा पूरा परिवार हरदा में है, मैं हरदा का हूँ। हरदा के युवाओं ने कला, साहित्य, चिकित्सा, इंजीनियरिंग व कृषि, हर क्षेत्र में प्रतिमान गढ़े है। हरदा एक सुव्यवस्थित शहर है, तीज-त्यौहारों की छटा वापस लौटे, बाबा हरदौल की कृपा से हरदा अपनी विशिष्टतायें बनाये रखे। हम कहीं भी रहें, हरदा हमारे अंदर रहेगा ।

देशबंधु पुरा, इटारसी

मिट्टी की महक सा संदेश

विजय लक्ष्मी जैन

वो खे़ल वो साथी वो झूले,
वो दौड़ के कहना आ छूले।
हम आज तलक भी ना भूले
वो, ख्वा़ब सुहाना बचपन का,
आया है मुझे फिर याद वो ज़ालिम,
गुजरा जमाना बचपन का।

जन्मभूमि ने मुझे याद किया है, यह संदेश वर्षा की पहली फुहार की तरह शीतल और भीगी मिट्टी की सौंधी महक सा खुशबुदार लगा। इस एक पुकार ने स्मृतिकोष के बंद दरवाजे एक बारगी ऐसे खोल कर रख दिए कि कोई एक सिरा पकड़ पाना बहुत ही मुश्किल है। कहाँ से शुरू करूँ, क्या लिखूँ, क्या छोड़ूँ ? सच कहूँ तो पूरी एक किताब लिखा जाए अगर हरदा से जुड़ी हर स्मृति को कागज पर उतारने लगूँ। बात निकलेगी तो फिर दूर तलक जाएगी, बात हरदा की जो है, जन्म भूमि की जो है।

जन्मभूमि की बात जन्म से ही शुरू करती हूँ। 18 जनवरी 1960 के दिन पहली बार इस सरजमीं पर मुझे माँ की गोद का प्रथम स्पर्श मिला। ऐसी माँ जो सौभाग्य से ही किसी को मिलती है। एक महान सर्वगुण संपन्न माँ, जिसके दिए संस्कारों ने मुझे आंतरिक रूप से इतना दृढ़, कर्मठ, साहसी और आत्मविश्वासी बना दिया कि उनके जाने के बाद अंदर-बाहर के हर संघर्ष का सामना मैं सफलता पूर्वक कर सकी और आज भी किसी मुश्किल या दुविधा की घड़ी में उनकी शिक्षा और संस्कारों की रोशनी ही मेरा मार्गदर्शन कर रही है। विनयवती नाम

था उनका, उनके भाई प्यार से उन्हें पतासी जीजी कहते थे। कम पढ़ी-लिखी होकर भी वह विलक्षण विदूषी थी। जितनी कुशलता से वे कुटुम्ब और समाज की कठिन से कठिन समस्याओं का निदान कर देती थी, उतनी ही प्रवीणता से वे गम्भीर धर्म शास्त्रों की व्याख्या भी कर लिया करती थी। इसलिए कुटुम्ब और समाज में उनकी एक विशिष्ट पहचान थी। कमजोर आर्थिक परिस्थिति के बावजूद हम सातों भाई-बहन इतना पढ़-लिख कर अच्छे पदों के योग्य बन सके, यह हमारी माँ के कुशल मेनेजमेंट का ही कमाल है। अपनी तंगहाली के बावजूद पास आए हर जरूरतमंद की यथासंभव सहायता करने का उनका जज़्बा प्रणम्य है। यदि उन्हें स्वयं आगे बढ़ने का अवसर मिला होता तो बहुत आगे जा सकने की योग्यता उनमें थी, किन्तु उस समय के सामाजिक परिवेश, कठिन आर्थिक परिस्थितियों में आठ संतानों के उत्तरदायित्व और अंतत: असमय मृत्यु ने उन्हें ऐसा अवसर नहीं दिया। मेरा जीवन मेरी माँ की प्रतिच्छाया है। अत: प्रथम प्रणाम उन्हें समर्पित है। ईश्वर ऐसी माँ सबको दे ताकि देश की हर संतान आंतरिक रूप से इतनी मजबूत हो सके कि चहूँ ओर की पतनशील धारा भी उसे डिगा न सके।

मेरे पिता श्री अमोलक चन्द जैन, खानदेश, मराठवाड़ा से दत्तक आए थे। मेरे दादाजी श्री मोहनलाल जी बहुत ही मनमौजी स्वभाव के थे। उन्होंने पहले कुछ वर्ष तो मेरे पिताजी को अच्छे से रखा किन्तु बाद में अपने गलत दोस्तों के प्रभाव में सौतेला व्यवहार करने लगे। वृद्धावस्था में उनकी मानसिक स्थिति भी खराब हो गई थी। इस स्थिति का फायदा उठाकर दादाजी की अधिकांश संपत्ति छलबल से उनके स्वार्थी मित्रों ने हथिया ली और मेरे माता-पिता को बेघर कर दिया। यह मेरी बहादुर माँ थी जिसने दादाजी की मृत्यु के उपरान्त समाज के पंचों की उपस्थिति और सहयोग से हमारे पुश्तैनी घर का ताला खुद अपने हाथों से तोड़कर उस पर कब्जा किया वरना हमारे सर पर छत भी न होती। तब हमारा क्या होता, इस बात की कल्पना मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसे हालात में अपनी सभी संतानो को पढ़ा लिखाकर सुयोग्य बनाने में मेरे पिता को कितनी मशक्कत करनी पड़ी होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। फिर भी उन्होंने कभी भी पैसा कमाने का कोई शॉर्टकट नहीं अपनाया और अपने ईमानदार आचरण की मिसाल बन गए। हमें भी उन्होंने यही संस्कार दिए। अपनी उम्र के इक्यानवें सोपान पर अब वे इन्दौर में हैं, बड़े भैया के पास। शुक्र है उनका हाथ अभी हमारे सिर पर है। छ: बेटों, एक बेटी (मैं), आठ पोतों, छ: पोतियों, तीन पड़पोतियों, दो पड़नातियों और एक पड़नातिन से भरे-पूरे परिवार के लिए वे विशाल वटवृक्ष के समान हैं, जिसकी शीतल छांव तले हम सभी जीवन की आपदाओं से सुरक्षित हैं। आप सभी के लिए इस आलेख के साथ वे अपना आर्शीवाद भेज रहे हैं।

मेरे बड़े भाई श्री विजय कुमार कासलीवाल, एस.डी.ओ., पी.डब्ल्यू.डी. के पद से

सेवानिवृत्ति के पश्चात सपरिवार इन्दौर में ही बस गए हैं, शेयर व्यवसायी हैं। हम सभी के लिए पितृतुल्य हैं। इन्दौर में ही मेरा सबसे छोटा भाई हेमन्त जैन भी अपने परिवार सहित निवासरत है और इन्दौर विकास प्राधिकरण में सब इन्जीनियर के पद पर कार्यरत है। दो भाई दिल्ली में हैं, दूसरे श्री अभय कुमार जैन, डायरेक्टर, 'मिनिस्ट्री ऑफ पावर' के पद से सेवानिवृत्त हो चुके हैं। समाज सेवा के क्षेत्र में सक्रिय हैं, तीसरे श्री अनिल कुमार जैन, सेंट्रल सॉइल एंड मटेरियल रिसर्च लेबोरेटरी में कार्यरत हैं, चौथे अनन्त कासलीवाल, डाटाबेस एडमिनिस्ट्रेटर के पद पर सी.बी.एस.आर.आर.बी., प्रोजेक्ट ऑफिस, मुम्बई में कार्यरत हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, हरदा-हंडिया में भी मैनजर के पद पर पदस्थ रह चुके हैं अत: अनुमान है कि हरदावासी इनसे परिचित होंगे, पांचवा भाई जयन्त कुमार जैन, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, अणुशक्ति नगर, मुम्बई में साइन्टिफिक ऑफीसर, प्रथम श्रेणी के पद पर पदस्थ है, मैं स्वयं डिप्टी कलेक्टर के पद पर देवास में पदस्थ हूँ।

जन्म से नौकरी लगने तक (एक वर्ष का छोड़ कर) मैं अनवरत हरदा में ही रही। रेल्वे-स्टेशन से खंडवा की ओर जाने वाले शहर के मुख्य मार्ग यानी महात्मा गाँधी मार्ग पर जवाहरगंज मोहल्ले में चांडक चौराहे पर हमारा पुश्तैनी घर आज भी है। हमारे एक और के पड़ोसी हैं बाबूजी श्री बद्रीप्रसादजी अग्रवाल, दूसरी ओर है माहेश्वरी धर्मशाला। इस क्षेत्र का केन्द्रस्थल है चांडक चौराहा। जिसके एक कोने पर चांडक जी का घर, जिनके नाम पर यह चौराहा चांडक चौराहा कहलाता है। दूसरे कोने पर चतरू हलवाई, तीसरे कोने पर मुल्ला जी की दुकान और एक हेंडपंप और चौथे कोने पर आरी वाले बाबा।

महात्मा गांधी मार्ग को हरदा की जीवन रेखा भी कह सकते हैं। इंदौर-हरदा मार्ग इससे चांडक चौराहे पर हाथ मिलाता है और आगे जाकर अजनाल नदी में विसर्जित हो जाता है। हरदावासियों की जीवनयात्रा रेल्वेस्टेशन से मुक्तिधाम तक और तवा कॉलोनी से अजनाल नदी के किनारे स्थित जल आपूर्ति पंपस्टेशन तक इन्हीं दो मार्गों के इर्द-गिर्द घूमती रहती थी।

इंदौर-हरदा मार्ग पर स्थित काशीबाई कन्या पाठशाला में मेरी प्राथमिक शिक्षा हुई। उस समय लड़कियों के लिए यही एकमात्र स्कूल था। तब प्राइवेट स्कूलों का चलन नहीं था। सन् 1963 में नाम लिखवाने के लिए पिताजी जब पहली बार मुझे लेकर इस स्कूल में गए तो मुझे कहा गया कि मैं दायां हाथ सिर के ऊपर से ले जाकर अपना बायां कान पकडूँ। मेरा हाथ कान तक नहीं पहुँच पाया। मुझे दाखिला देने से मना कर दिया गया। मैं बहुत बाद में जान पाई कि यह तो बस मेरे जैसे बालमन को समझाने का एक प्रचलित नुस्खा था, वस्तुत: मेरी उम्र उस समय कम थी। मैंने घर लौट कर सिर के ऊपर से हाथ ले जाकर कान पकड़ने की

प्रेक्टिस शुरू कर दी, पूरी गंभीरता से। पुन: जब पिताजी मुझे लेकर स्कूल गए, मुझसे पुन: कान पकड़वाया गया और इस बार मैं इस इम्तहान में पास हो गई। है न मजेदार...........! और पता है स्कूल की फीस (फी) कितनी थी, पांच पैसे। पहली से पांचवी तक। विश्वास नहीं होता है न। रेवा बहन जी, मिट्ठू बहन जी के कठोर अनुशासन में मेरी शिक्षा-दीक्षा हुई; जिनकी पहुँच घर में माँ के चौके तक थी, जहां ननंद-भाभी का रिश्ता खूब निभता था।

मेरी माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा इसी मार्ग पर स्थित शासकीय कन्या स्कूल में हुई। अब शायद फीस थी बीस से पैंतीस पैसे। इस स्कूल में हम जितना पढ़ते थे उतना ही खेलते भी थे अपने इस आलेख में मैं जिन्हें खासतौर से याद करना चाहूँगी, मेरी वे टीचर्स हैं-श्रीमती सुमन मिश्रा, श्रीमती विनीता सक्सेना, श्रीमती परुलकर और श्रीमती टिकलकर। मिश्रा मैडम ने मुझे नागरिक शास्त्र पढ़ाया। वे अपनी जरा जीर्ण देह के कारण प्राय: छात्राओं की फिकरेबाजी का निशाना बनती थीं, पर हम दोनों के हृदय के तार कुछ ऐसे जुड़े थे कि जिस दिन मैं क्लास में न होऊँ, उस दिन वे पढ़ाती नहीं थीं और जिस दिन वे स्कूल न आएं मेरा पढ़ाई में मन नहीं लगता था। शारीरिक रूप से अत्यधिक दुर्बल होते हुए भी कर्तव्य के प्रति उनका समर्पण मुझे अभिभूत करता था। यह उनका प्यार ही था जो नागरिक शास्त्र जैसा नीरस विषय भी मुझे किसी सरस उपन्यास सा रुचिकर लगता था। उनसे जुड़ी एक घटना का उल्लेख यहाँ करना चाहूँगी-

मैं ग्यारहवीं में थी। छ: माही परीक्षा में नागरिक शास्त्र में मेरे सबसे अच्छे अंक होने के बावजूद भी मैडम सुमन मिश्रा के मुँह से मेरी सहपाठिन मीना गोयल की तारीफ़ सुनकर मुझे बहुत ठेस लगी। मीना मेरी बहुत अच्छी सहेली थी किन्तु पढ़ाई के मामले में हम प्रतिस्पर्धी थे। वार्षिक परीक्षा में नागरिक शास्त्र में विशेष योग्यता पाकर भी यह फांस मन से निकली न थी। उनका आशीर्वाद लेने के बाद मैंने अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखी तो वे जोर से हँस पड़ीं, बोलीं-विजयलक्ष्मी! मुझे भय था कि यदि मैं उस दिन तुम्हारी प्रशंसा कर देती तो तुम घमंडी और लापरवाह हो सकती थी। तुमसे आगे निकलने की क्षमता पूरी क्लास में सिर्फ़ मीना में ही थी पर मैं तो तुम्हें आगे देखना चाहती थी, सबसे आगे; इसलिये मैंने उस दिन तुम्हारी प्रशंसा न करके तुम्हारी निकटतम प्रतिद्वंदी की प्रशंसा की ताकि तुममें प्रतिस्पर्धा का भाव और प्रथम आने की इच्छा पैदा कर सको और तुमने वह कर दिखाया, वेलडन। यह कहते-सुनते हम दोनों की ही आँखों में खुशी के आँसू थे, ऐसा था उनका प्यार।

एक और टीचर अचानक ही मेरी स्मृति में उभर आई हैं, मैडम लीला मिश्रा, इंग्लिश और हिन्दी पर समान अधिकार रखने वाली बिंदास महिला। इनसे जुड़ी यह घटना मेरे विद्यार्थी जीवन की एकमात्र कटु स्मृति है, जिसे मैं चाहकर भी भूल नहीं पाती। एक ऐसी

घटना जिसने मेरे जीवन की धारा को यू टर्न दे दिया। वस्तुत: मैं डॉक्टर बनना चाहती थी, इसलिये नवीं में मैंने बायोलॉजी साइंस के साथ अंग्रेजी भी ली थी, जो मैडम मिश्रा पढ़ाती थीं। नवीं में एक सप्ताह क्लास लेने के बाद उन्होंने घोषणा की कि कल मैं एक टेस्ट लूंगी। जो लड़की अच्छे नंबर नहीं ला पाएगी, उसे अंग्रेजी छोड़ना होगी। मुझे टेस्ट में अच्छे अंक नहीं मिले थे। मैडम ने मुझे अंग्रेजी छोड़ने के लिए कहा। मैंने प्रिंसीपल मैडम को पूरी बात बताई। उनके कहने से मिश्रा मैडम ने मुझे सीधे-सीधे तो अपने विषय से बाहर नहीं किया लेकिन वे मुझसे स्थायी रूप से नाराज हो गईं। उनका व्यवहार मेरे प्रति कटुता पूर्ण हो गया। रिजल्ट बिगाड़ने की धमकी भी मिली। मैं मन ही मन बहुत डर गई। मेरे लिए रिजल्ट बिगड़ने का अर्थ था, हमेशा के लिए पढ़ाई छुड़ाकर घर बिठा लिया जाना। यह धमकी माँ की ओर से थी। मैंने अंग्रेजी विषय और साथ ही साइंस भी छोड़ने का निर्णय ले लिया क्योंकि मेरी तब की समझ के अनुसार बिना अंग्रेजी के साइंस पढ़ने का कोई मतलब नहीं था। मैं दुखी थी पर मेरी माँ इस निर्णय से खुश थी क्योंकि वे जानती थीं कि हायर सेकेन्डरी के आगे की पढ़ाई के लिए मुझे बाहर नहीं भेजा जाएगा। अत: अधूरी पढ़ाई के लिए मेंढक, काकरोच, केंचुए जैसे नन्हें-मुन्ने जीवों की हत्या (प्रेक्टीकल में डिसेक्शन के लिए) करना सर्वथा धर्मविरुद्ध होता, जिसे जैन धर्म में संस्कारित उनका मन कैसे स्वीकार कर सकता था। इस तरह मेरा डॉक्टर बनने का सपना टूट गया।

इस घटना का जिक्र मुझे शायद इस आलेख में नहीं करना चाहिए था पर इस आशय से कर रही हूँ कि टीचर्स इस बात को समझें कि उनका व्यवहार विद्यार्थी के कोमल मन पर कैसा प्रभाव डालता है। यहां यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि दसवीं में इन्हीं मैडम मिश्रा ने मुझे हिन्दी साहित्य पढ़ाया। तब हम दोनों ने एक दूसरे को अच्छी तरह जाना समझा। वे कमाल की टीचर थीं और कहना न होगा कि अब मैं उनकी प्रिय स्टूडेन्ट थी पर जो होना था वह तो हो ही चुका था। उसे लौटाया नहीं जा सकता था, पर कोई अफसोस नहीं। आज मैं जहाँ भी हूँ, खुश हूँ। उनके प्रति बिना कोई शिकायत रखे, इस घटना का बस इतना ही असर लेती हूँ कि उनके निमित्त से मेरे जीवन की धारा बदलनी थी सो बदल गई। और हाँ! मैंने अंग्रेजी तो सीखनी ही थी सो सीखी और मैडम मिश्रा के बिना सीखी।

स्कूल जीवन की एक और घटना का जिक्र किये बिना नहीं रह पाऊंगी। कक्षा आठवीं में बम्बावाले मेडम संस्कृत पढ़ाती थीं। संस्कृत की विभक्तियां रटवाना उनका प्रिय शौक था पर एक छात्र की दृष्टि में यह काम कितना कठिन है, यह तो बस वही जानता है जिसने संस्कृत की विभक्तियां रटी हों। देव की विभक्ति उस दिन सबको याद करके आना था। मैडम ने आते ही कहा-जो अच्छे से याद करके आया है वह हाथ उठा दे। मुझे लगा, यदि मैंने हाथ उठा दिया तो मैडम मुझसे पूछेंगी नहीं। मैंने हाथ नहीं उठाया। यह लालच मुझे बहुत महंगा

पड़ा। हुआ यूं कि मैडम ने मेरी लाईन से ही पूछना शुरु किया। पहली लड़की को खड़ा किया, बोलीं-देव की तृतिया बोलो। वह नहीं बोल पाई। दूसरी लड़की भी नहीं बोल पाई। तीसरी लड़की थी संध्या उपाध्याय और चौथी मैं। संध्या भी जब देव की तृतिया नहीं बोल पाई तो मेरा नम्बर आया। मैं तो बिल्कुल कूद कर बोली- देवेन देवाभ्याम देवैः। एक तमाचा पड़ा मेरे गाल पर। ओह.........ये क्या ? मैं कुछ समझ नहीं पाई। तभी मैडम से सुना-याद था तो फिर हाथ क्यों नहीं उठाया? (मतलब शायद मैंने उनका समय बरबाद करने का अपराध किया था।) मैडम की इस प्रतिक्रिया से मैं भौंचक्की रह गई। मैडम संध्या से बोलीं-जो विजयलक्ष्मी ने बोला है, उसे दोहराओ। वह दोहरा नहीं पाई। मैडम का हाथ फिर उठा पर संध्या बड़ी चंट निकली। वह झुक गई और वह चांटा फिर मुझ पर आ पड़ा। सही सबक याद करने का यह अद्भुत ईनाम था। यह इनाम पाकर उस वक्त तो मैं शर्म से गड़ ही गई थी किन्तु अब जब भी यह घटना याद आती है तो बरबस ही हंसी आ जाती है।

मेरी आदर्श थीं-मैडम टिकलकर। सुंदर, मीठी, स्वानुशासित, समय की पाबंद और अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित। जिनसे भय नहीं लगता था, अपितु जिनकी आज्ञा का पालन करके खुशी मिलती थी। जिनकी मधुरता ने ही मेरे लिए संस्कृत को इतना सरल बना दिया कि मैं संस्कृत में भी विशेष योग्यता हासिल कर सकी। संस्कृत को पढ़ना-समझना मात्र परीक्षा पास करना भर नहीं है बल्कि यह वह उंगली है, जिसके सहारे हम हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा प्रकट किये गये असीम ज्ञान के भंडार तक पहुंच सकते हैं। इसका अर्थ है अंतर में अध्यात्म की ज्योति जल जाना। स्कूल का वातावरण पढ़ाई के लिहाज से अच्छा था। टीचर्स अपने कर्तव्य के प्रति और अपने विद्यार्थियों के प्रति इतनी केयरिंग थीं कि कभी अच्छे नंबर लाने के लिए ट्यूशन की ज़रुरत नहीं पड़ी। सुना ज़रूर था किन्तु ट्यूशन ज्वॉइन करने के लिए मुझ पर कभी किसी टीचर का दबाव नहीं रहा। मैं खासतौर से शुक्रगुज़ार हूँ मैडम सुमन मिश्रा एवं मैडम विनीता सक्सेना की, जो लायब्रेरी से मुझे अपने विषय की किताबें निकालकर अपनी क्लास के स्तर से बेहतर पढ़ने के लिये हमेशा उपलब्ध करवाती रहीं। मैडम सुशीला जैन-हमारे स्कूल की प्राचार्या। बेहद शालीन और मितभाषी-यथा नाम तथा गुण। मेरी परम आदरणीया, ग्यारहवीं में उन्होंने भी मुझे संस्कृत पढ़ाकर समृद्ध किया। यह मेरी टीचर्स की प्रेरणा का परिणाम था जो मैं हायर सेकेंडरी में स्कूल टॉप कर सकी। कह सकती हूँ कि आज जो कुछ भी हूँ, उसमें मेरी टीचर्स द्वारा प्रदत्त ज्ञान और आशीर्वाद की बहुत बड़ी भूमिका है।

सन् 1975 में अच्छे अंको से हॉयर सेकेन्डरी पास करने के बावजूद परिवार मुझे कॉलेज भेजने को तैयार न था। सबसे बड़ी बाधा थी कॉलेज का को-एड् होना। सहशिक्षा का विरोध उस जमाने का सामान्य सोच था, कुछ आधुनिक परिवारों के अलावा। पर मैं कॉलेज जाने की जिद पकड़ बैठी। ये वे दिन थे जब मेरी ज्ञान की पिपासा चरम पर थी। इसलिए पढ़ना नहीं तो जीना नहीं की हद तक जिद ठनी हुई थी। मैडम सरला सोकल ने स्वयं घर

आकर मेरे परिजनों को समझाने का प्रयास किया। घर के सभी खास मामलों में निर्णायक भूमिका बड़े भैया की होती थी और उनका निर्णय था कि मुझे कॉलेज में प्रवेश नहीं दिलाया जाएगा। उन्हें कुछ समझा पाना टेढ़ी खीर थी। अतः मैडम सोकल को सफलता नहीं मिली। माँ की हार्दिक इच्छा थी कि मैं आगे पढ़ाई करूँ। वे बहुत साहसी भी थीं, लेकिन भैया को नाराज करने का साहस उनमें भी नहीं था। मैं स्वयं इस विषय पर भैया से सीधे-सीधे बात करूँ इसका तो प्रश्न ही नहीं था। तभी अचानक एक दिन कॉलेज के प्राचार्य श्री दत्त हमारे घर पधारे और परिजनों को समझाया कि आखिर इतनी बड़ी-बड़ी कॉलेज बिल्डिंग्स का अर्थ ही क्या है, यदि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण बच्चे ही उनमें पढ़ने न आएं। यह उनका बड़प्पन ही था जो उन्होंने माँ को आश्वासन दिया कि वे कॉलेज में मुझे अपनी बेटी की ही तरह अपने संरक्षण में रखेंगे। इस समझाइश का असर हुआ। अंततः मुझे कॉलेज जाने की अनुमति मिल गई। मेरी पांच दिन की भूख हड़ताल समाप्त हुई। कॉलेज में प्रवेश के साथ ही बचपन की बहुत सारी सखियां छूट गई क्योंकि वे इतनी भाग्यशाली नहीं रहीं कि कोई सोकल मैडम या कोई दत्त सर उनके परिवारों को समझाने की जहमत उठाते।

हरदा-इन्दौर मार्ग पर ही स्थित शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय का माहौल कॉलेजों के सुने-सुनाए माहौल जैसा न था। आदरणीय दत्त सर सच में ही सारी लड़कियों को अपने संरक्षण में रखते थे। छात्राओं के लिए एक कॉमन रूम था। हम इस कॉमनरूम से निकलकर विषयानुसार व्याख्याताओं के पीछे-पीछे क्लास रूम में जाते थे और क्लास खत्म होते ही वापस आकर कॉमन रूम में ठंस जाते थे। छात्राओं को ग्राउंड पर घूमने-बैठने की अनुमति नहीं थी। फिर भी कॉलेज जाना अच्छा लगता था, क्योंकि वहां बचपन की सखियां मिल जातीं थीं और हम सब मिलकर उस घटिया से कॉमन रूम को लॉफिंग चेम्बर बनाए रखते थे।

ये आपातकाल के दिन थे। अतः कॉलेजों में चुनाव भी प्रतिबंधित थे। फलतः लड़कों की हुड़दंगबाजी की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। ऐसे अविश्वसनीय अनुशासन के वातावरण में दो साल सुरक्षित रूप से कॉलेज में पढ़ाई की। कैप्टन प्रभुशंकर शुक्ल ने हिन्दी साहित्य पढ़ाया। यह मेरा सबसे प्रिय विषय था। कैप्टन साहब कभी-कभी जनरल नॉलेज की क्लास भी ले लिया करते थे और कभी-कभी तो केवल गपशप (ऑन्ली फॉर चेंज)। कॉलेज की लायब्रेरी समृद्ध थी। शुक्ला सर की प्रेरणा से मैंने यहां देश-विदेश के मूर्धन्य साहित्यकारों को पढ़ा-गुना, जिनमें मुख्य हैं-धर्मवीर भारती, जैनेन्द्र जैन, निराला, अज्ञेय, गोर्की, लियो टॉलस्टाय, दोस्तोवस्की। श्री पटेल सर ने राजनीतिशास्त्र पढ़ाया। उनके अध्यापन से ज्यादा उनके चुटकुले प्रभावी होते थे, पर मजाल है जो उनके चेहरे पर हंसी की एक रेखा भी दिख जाए। इस बारे में हम लोग शर्त लगाया करते थे। अर्थशास्त्र पढ़ाया श्री गोपाल सर

ने बट सॉरी टु से देट ही वाज वेरी बोरिंग।

एक जो छोटा सा कतरा छांव थी सो खो गई,
अब धूप है, सेहरा है, नंगे पांव हैं।

अभी मैंने बी.ए. द्वितीय वर्ष की परीक्षा दी ही थी कि 3 जुलाई 1977 के दिन माँ ने अचानक ही इस दुनिया का अलविदा कह दिया। इसी के साथ मेरा कॉलेज छूट गया और मेरी जिन्दगी का सबसे कठिन अध्याय शुरु हो गया। इस वक्त घर को सम्हालना ज़्यादा ज़रूरी था। इसलिए मैंने कॉलेज छोड़ दिया और आगे की पढ़ाई स्वाध्यायी छात्रा के रूप में की। बी.ए. करने के बाद अर्थशास्त्र में एम.ए. किया। इस तरह काशीबाई कन्या पाठशाला से प्रारंभ हुआ शिक्षा का सफर समाप्त हुआ।

आपातकाल की याद आते ही याद आया वह खौफनाक मंजर जबरिया नसबंदी का दौर, हर शहर हर गांव में चला था और अतिक्रमण हटाने के नाम पर मकानों के छज्जे और ओटले बेरहमी से तोड़कर शहर के शहर विद्रुप बना दिए गए। सुबह-शाम ठंडी हवा का आनन्द ले सकते थे, जिनमें खड़े होकर बहू बेटियाँ घरेलू काम के बीच में भी बाहरी दुनिया की एक झलक पाकर खुश हो लिया करती थीं। आती जाती बारातों और जुलूसों का लुत्फ उठा लिया करती थी। वे ओटले जिन पर प्रतिदिन शाम को बड़े बुजुर्गों की चौपालें सजती थीं। घर के सामने से गुजरते मित्र परिचित दुआ सलाम करते हुए दो घड़ी जिन पर बैठ जाया करते थे। थका हुआ राहगीर जिन पर बैठ कर तनिक विश्राम कर लिया करता था, गर्मी के दिनों में जिन पर बिस्तर बिछा बेखौफ सोया जा सकता था, जिन पर फेरी वालों को बिठा कर घर की महिलाएं छोटे-छोटे सौदे निपटा लिया करती थीं। जिन पर आम जामुन के टोकने उतरा करते थे और हाथों-हाथ बिक जाया करते थे। छोटे व्यापारी जिन पर व्यवसाय करके दो पैसे कमा लिया करते थे और जो बच्चों के नदी-पहाड़ के खेल का अभिन्न हिस्सा थे, तोड़ दिए गए बेरहमी से। विरोध करने वालों को और जिनसे विरोध संभावित था ऐसे सभी लोगों को जेलों में ठूंस दिया गया था। इन घटनाओं की खबरें ही दिल दहलाने वाली थीं तो जिन्हें यह सब वास्तव में सहना पड़ा था, उनकी हालत का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। लेकिन इस बार देश ने आततायी को सौ साल नहीं दिए। श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में मात्र चार साल में ही हो गई समग्र क्रान्ति।

अफ़सोस! आपातकाल से तो देश मुक्त हो गया पर क्रान्ति समग्र न हो सकी। अब इस देश को शीघ्र ही एक और क्रान्ति की आवश्यकता है, भ्रष्टाचार के विरुद्ध और अनुशासन हीनता के विरुद्ध। पर ऐसे समाज में जहाँ ये दोनो ही तत्व सामाजिक शिष्टाचार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हों, क्या कभी ऐसा होगा ? है कोई आशा की किरण ? कौन बनेगा इसका

अग्रदूत?

खौफ का एक दौर और आया था, चंपतिया के रूप में; जब मैं बहुत छोटी थी। लोगों की रातों की नींद हराम हो गई थी। रोज अखबारों में खबर छपी होती थी कि आज चंपतिया यहाँ आया, वहाँ आया। उसने इसे मार डाला, उसे मार डाला। कोई कहता वह आधा जानवर है, आधा आदमी; उसका सिर शेर का है और धड़ आदमी का। उसे आज तक देखा किसी ने नहीं था, पर उसके आने की आशंका से सब ऐसे भयभीत रहते थे जैसे वह बगल में ही खड़ा हो। भर गर्मी में भी लोग बाहर सोने से डरते थे। हम बच्चों का तो बुरा हाल था, बिना किसी को साथ लिए घर के एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने तक से डरने लगे थे। पर बहुत दिनों तक भी जब हरदा में चंपतिया के मारे कोई न मरा, न ही वह किसी को दिखाई दिया तो धीरे-धीरे लोग खुद ही समझ गए कि यह तो बस अफवाह है।

हरदा एक छोटा कस्बाई शहर, अपने स्तर के अन्य कस्बाई छोटे शहरों की तरह आधारभूत सुविधाओं से विहीन। बिजली की उपलब्धता का वो हाल था कि ज़्यादातर पढ़ाई लालटेन की रोशनी में ही करना पड़ती थी। बिजली की ही तरह जल आपूर्ति का भी बुरा हाल था। घरों के अंदर पानी बहुत कम पहुँच पाता था। ज्यादातर तो बाहर के नल से ही पानी भरना पड़ता था। ऊँचाई वाली जगहों में तो सड़क पर गड्ढे खोदकर, नल के नीचे बर्तन लगाकर ही पानी पाया जा सकता था। जब वह भी न मिले तो आसपास के कुएं तक दौड़ लगाने के अलावा कोई चारा न था। बरसात के दिनों में जो पानी नलों में आता था, उसे पानी कहना भी उचित नहीं है। सड़कों का भी बुरा हाल था। इसलिए बहुत जतन करने पर भी सड़क से धूल के गुबार बेधड़क घर में घुसे चले आते थे। बहुत साल तक तो तांगे ही चलते थे। फिर धीरे-धीरे उनका स्थान साइकिल रिक्शा ने ले लिया। मेरे घर से एक सवारी के रेल्वेस्टेशन तक जाने का किराया होता था दो रूपये। सन् 1984 में जब मैंने हरदा छोड़ा तब तक एक दो आटो रिक्शा भी दिखने लगे थे।

मनोरंजन के लिए दो शानदार सिनेमाघर थे-प्रताप टॉकीज और नारायण टॉकीज। एक फिल्म के दौरान कम से कम तीन इन्टरवल होते थे। फिर भी पूरी फिल्म दिखने की कोई गारंटी नही थी। कहना मुश्किल था कि परदे की क्वालिटी खराब थी या फिल्म की। और सीटें! वाह! वाह! जब भी फिल्म देखने जाते थे, ढेर सारे खटमल मुफ्त में साथ चले आते थे। हालांकि साल दो साल में ही कोई फिल्म देखने की इजाजत घर से मिलती थी। शहर भर में हर शादी, हर आयोजन में लाउड स्पीकर पर ऊँची आवाज में बजते फिल्मी गाने टाइम बे टाइम शहर भर का मुफ्त में मनोरंजन किया करते थे।

हरदा तब तहसील था अब जिला बन गया है। उम्मीद करती हूँ सूरते हाल कुछ तो बदले ही होंगे। चाहती हूँ कि यह शहर सभी जिला स्तरीय सुविधाओं से संपन्न तो हो ही, साथ ही उद्योग व्यवसाय का भी केन्द्र बने। और काश! राजनीति के पटल पर भी कोई ऐसा तारा हरदा के आकाश में चमके जो धूमकेतु की तरह क्षणभंगुर न हो बल्कि शुक्रतारे की तरह सर्वदा चमके। जो हरदा-इन्दौर के बीच रेल लाइन ला सके या कम से कम हरदा-इन्दौर के बीच की सड़क को इस दशा में तो रख सके कि उसे बेझिझक सड़क तो कहा जा सके।

हरदा कस्बाई शहर होकर भी साहित्यिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक रूप से समृद्ध था। मिडिल स्कूल ग्राउंड अनेकानेक आयोजनों का गर्वीला साक्षी रहा है। देर रात तक चलने वाले कवि सम्मेलनों और मुशायरों का आनन्द बहुत बडी संख्या में श्रोतागण लेते थे। महिला-पुरूष, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, बिना किसी भेदभाव के एक ही जाजम पर बैठकर वाह-वाह की बुलंद आवाजों से कवियों और शायरों की हौंसला अफज़ाई किया करते थे। कविता और शायरी की समझ आने के बाद मैं भी श्रोताओं की भीड़ में शामिल हो गई थी। बालकवि बैरागी, नीरज, हुल्लड़ मुरादाबादी, काका हाथरसी आदि को सुनने का सौभाग्य इसी ग्राउंड पर शहरवासियों को प्राप्त होता था।

भाई माणिक वर्मा और अजातशत्रु इस शहर के दो चमकते सितारे हैं जिन पर हम सभी को गर्व है। भाई माणिक वर्मा का व्यंग्य हर खास और आम आदमी को गुदगुदाता था किन्तु जब मैंने अजातशत्रु जी को पहली बार महावीर जयन्ती पर सुना तो उनकी बौद्धिकता का स्तर देखकर मैं अवाक रह गई थी और उनके उस आध्यात्मिक भाषण से भगवान महावीर के व्यक्तित्व के कई अनउद्घाटित पहलू अचानक ही प्रकाशित हो उठे थे।

शहर की प्राय सभी राजनैतिक सभाएं या तो इस ग्राउंड पर होती थीं या घंटाघर पर। कामरेड लच्छू कप्तान, श्री वीरेन्द्र आनन्द, श्री जी.पी. पाण्डे, श्री नन्हेंलाल पटेल, श्री महेश दत्त मिश्र हरदा की राजनीति के सूत्रधार थे। श्री चंपालाल सोकल, श्री माणकचंद पाटनी, श्री हीरालाल जी अजमेरा और उनके साथ के कई स्वतंत्रता संग्राम सेनानी पर्याप्त सक्रिय थे। राजनैतिक गतिविधियों में उनका खास मुकाम था। श्री एकनाथ सेठ अपने विद्यार्थी जीवन से आज तक कांग्रेस के एक स्थायी स्तंभ हैं। इससे ज्यादा मैं तब की राजनीति के बारे जानती नहीं हूँ क्योंकि राजनीति कभी भी मेरी रुचि का विषय नहीं रही है।

नेहरू स्टेडियम बनने तक मिडिल स्कूल ग्राउंड शहर का क्रीडांगन भी रहा। हॉकी, फुटबाल, कबड्डी, खोखो, क्रिकेट, दौड़ आदि शालेय प्रतिस्पर्धाओं में किसी की जीत तो किसी की हार का जीवंत साक्षी है यह। इस मैदान पर घटित मेरे जीवन की दो खास घटनाएं मेरे स्मृति कोष की अनमोल निधि हैं।

जिनमें से एक मज़ेदार घटना घटी जब मैं कक्षा नौवीं में थी, गेम्स का पीरीयड था। हम 10-15 लड़कियों का एक समूह प्रतिदिन इस पीरीयड में कभी सितोलिया तो कभी लंगड़ी, कभी खो-खो तो कभी गिल्ली-डंडा खेलता था। उस दिन हम गिल्ली-डंडा खेल रहे थे। डंडा मेरे हाथ में था। मैं टूल पर टूल मार रही थी और बदकिस्मती से उस दिन मेरा हर टूल लाज़वाब लग रहा था। मेरी टीम हर टुल पर खुशी से उछल रही थी कि तभी मिडिल स्कूल का एक चपरासी मेरे पास आया, बोला-आपको प्रिंसीपल मैडम बुला रहीं हैं यानी परुलकर मैडम। वे मुझे नौवीं में भूगोल पढ़ातीं थी। मैडम की गुडबुक में मेरा नाम था। मैं चपरासी और अपनी सखियों की पूरी मंडली के साथ मैडम के कमरे में पहुंची तो देखा, एक लड़की उनके पास बैठी है और उसके माथे से खून बह रहा है। एक मैडम उसकी मरहम-पट्टी कर रहीं थीं। मैं चेहरे से उसे जानती थी। वह आठवीं की छात्रा थी और सिंचाई विभाग के किसी अधिकारी की बेटी थी शायद। वह रो रही थी, मुझे मैडम से अच्छी खासी डांट पड़ी। उसने शिकायत की थी कि विजयलक्ष्मी के टूल से उड़ी गिल्ली ने आकर उसका सिर फोड़ दिया है। सच, अनजाने ही दोनों भौहों के बीच उसका शिवनेत्र खोल दिया था मेरे एक टुल ने। मैडम मुझे डांट रहीं थीं, उनकी आँखों में गुस्सा था। मैंने मेडम से और उस लड़की से क्षमा मांगी। उस लड़की को मैडम ने समझा बुझाकर घर भेज दिया। उसके जाते ही मुझसे बोलीं-अरे विजयलक्ष्मी, तुम गिल्ली के इतने अच्छे टुल भी मारती हो, यह मैं नहीं जानती थी। यह सुनते ही हम सबकी जान में जान आई। मैडम के साथ-साथ हम सबकी हंसी फूट पड़ी पर उस दिन से मेरा गिल्ली डंडा हमेशा के लिए छूट गया। अविस्मरणीय घटना, जो बड़ा गहरा सबक दे गई। कहीं उस दिन वह गिल्ली उस लड़की की आंख में लग गई होती तो..?

इसी मैदान पर की गई, एन.सी.सी. डे की परेड मेरे व्यक्तित्व के विकास में मील का पत्थर साबित हुई। जैसे जामवंत ने हनुमान को उनकी छुपी हुई शक्तियों का बोध कराया था, उसी तरह आदरणीया केप्टन सरला सोकल ने मेरी क्षमता को जगाया। मिडिल स्कूल ग्राउंड पर हुए समारोह में मेरे नेतृत्व में मेरे ट्रुप ने जब प्रथम स्थान हासिल कर कप जीता तो मेरी माँ की आँखों से आंसुओं कि धार बह रही थी और मेरे ट्रुप की लड़कियां मुझे कंधों पर उठाकर नाच पड़ी थीं। यह पहला अवसर था जब एन.सी.सी. दलों की किसी प्रतियोगिता में गर्ल्स केडेट्स ने बाजी मारी थी। पर कड़ी मेहनत करनी पड़ी थी मुझे इसके लिये.. ' परेड पीछे मुड़' अपने ट्रुप को मेरे इस निर्देश का ट्रुप के कदमों के साथ तालमेल नहीं बैठ पा रहा था। ट्रुप को कमांड देने में मुझसे कहीं एक मात्रा की चूक हर बार हो रही थी, जो किसी की पकड़ में नहीं आ रही थी। मैडम बेहद नाराज थीं और विकल्प में अन्य लड़कियों को भी आजमा चुकीं थी पर बात बनी नहीं। मेरे लिए यह एक चुनौती थी। 25 नवम्बर 1975, एन.सी.सी. डे की सुबह से पहले की ठंडी रात में घर की छत पर स्वयं को एक ट्रुप मानकर खुद परेड करते हुए पचासों बार 'परेड पीछे मुड़' 'परेड पीछे मुड़' दोहराया तब कहीं अपनी

गलती पकड़ पाई और फिर कभी जीवन में मुझे पीछे मुड़कर देखना नहीं पड़ा। आत्मविश्वास आ गया कि अब मैं कर लूंगी और मैंने कर लिया। कप जीत लेना उतना कठिन नहीं था जितना मैडम सोकल का दिल जीत लेना। मैं अतिशय भाग्यशाली रही जो मुझे उनका दोहरा आशीर्वाद मिला।

मैं उत्सुक हूँ यह जानने के लिए कि क्या हरदा में बैलगाड़ियां अभी भी चलती हैं? हरदा हमेशा से आसपास के ग्रामीण क्षेत्र के लिए व्यापार का केन्द्र रहा है। यह उन दिनों का दृश्य है जबकि लोग ओटलों पर या सड़क के किनारे खटिया डालकर बेखौफ सो जाया करते थे। सुबह लगभग तीन बजे से गांवों से चलकर आने वाली बैलगाड़ियों के चक्कों की खड़खड़, बैलों की पदचाप, गले में पहने घुंघरुओं और घंटियों रुनझुन-टुनटुन के मिले जुले स्वर बाहर सोने वालों को भोर की मीठी नींद से जगा दिया करते थे। बुजुर्ग लोग थोड़ी देर की अलटा-पलटी के बाद, अपने नित्य कर्मों में लग जाया करते थे और जवान बच्चे बिस्तर सहित घर के कमरों में जाकर पुन: सो जाया करते थे। इस बीच सड़क पर बैलगाड़ियों की लंबी कतार लग जाया करती थी जो सुबह सात-आठ बजे तक अनवरत चलती थी। इनकी मंजिल होती थी अड्डा यानी पुरानी गल्ला मंडी, नर्मदा जीनिंग एंड प्रेसिंग फेक्ट्री, छोटी एवं बड़ी दालमील जहां सौदे होकर गाड़ियाँ खाली होती थीं। मेरे पिता महेन्द्र दालमील वालों की फर्म दुलीचंद-हजारीमल में नौकरी करते थे। अत: उनका इन सभी स्थानों पर सतत् आना जाना लगा रहता था और उनके साथ-साथ हमारा भी। ये सभी स्थान हमारे बचपन के प्लेग्राउंड्स थे।

इन बैलगाड़ियों के मतलब का एक और बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था-मानपुरा में बालक शाला के पास हाजी बाबा की लोहा फेक्ट्री, जहां लोहे की बड़ी-बड़ी पेटियां और अन्य सामान बनता था। यहां बैलगाडियों के चक्कों पर लोहे के पाट चढ़ाने का काम भी होता था। ढेर सारे कंडों के गोल-गोल अलाव जलाए जाते थे। इन अलावों के अच्छी तरह चेत जाने पर लोहे के पाट इनमें डालकर सुर्ख लाल होने तक गर्म किए जाते, तुरंत ही निकाल कर लकड़ी के चक्कों पर चढ़ाए जाते और तत्काल ही ठंडा पानी डालकर ठंडे कर दिए जाते, जिससे वे चक्कों पर अच्छी तरह जम जाया करते थे। अलावों की राख हमारे घरों में बर्तन मांजने के काम आती थी जो पहले तो मुफ्त मिल जाया करती थी, बाद में बिकने लगी थी। अपने भाईयों के साथ मैं भी कई बार इस प्रक्रिया की चक्षुदर्शी हुआ करती थी, जो हमारे लिए किसी तमाशे जैसी ही मजेदार थी।

काशीबाई कन्या पाठशाला में मिलीं मुझे ढेर सारी बाल-सखियां, मेरी सहपाठिनें-झरिन खंभाता, मीना अग्रवाल, प्रमीला धन्नानी, मंजु अग्रवाल, रंजना गोखले, विष्णुकांता

मंत्री, संतोष अग्रवाल, सुरेखा मंझलीकर, वंदना शर्मा, निर्मला अग्रवाल, अंजलि तिवारी, रेखा केकरे, संध्या उपाध्याय, रजनी ये वो कुछ नाम हैं, जिनके साथ मैं पहली से ग्यारहवीं तक पढ़ी। इनमें से कुछ कॉलेज तक भी साथ रहीं पर सखियां कब जीवन भर साथ रह पाती हैं। हम सब साथ-साथ पढ़े बड़े हुए पर वक्त के तकाज़े पर धीरे-धीरे हमारे रास्ते जुदा होते गए। बाकी रह गई केवल खट्टी-मीठी यादें। कॉलेज छोड़ने के बाद किसी से संपर्क नहीं रह सका। अभी कुछ वर्षों से मंजू अग्रवाल और प्रमिला धन्नानी से दोस्ती फिर जीवंत हो गई है। मंजु इंदौर में और प्रमीला छिंदवाड़ा में अपने-अपने परिवार के साथ सुखी हैं।

शुक्रवारा मोहल्ले में नदी किनारे प्रमिला का घर आज भी अच्छी तरह से याद है। उसके घर में कुल्फी की फैक्ट्री थी। जाहिर है, इस कारण किशोरावस्था में प्रमीला का घर हमारे खास आकर्षण का केन्द्र था। किसी न किसी बहाने, हम सखियां गर्मी के दिनों में हमेशा उसके घर जाने को सदा तत्पर रहते थे। पास ही में मेरे मामा श्री माणकचंद बड़जात्या (आनन्द होटल वाले) का घर था। मेरे सगे नाना तो छत्तीसगढ़ में रहते थे पर इस मामा के घर में मुझे ननिहाल का पूरा दुलार मिला। प्रमिला की गली की सड़क, अजनाल नदी के घाट पर जाकर समाप्त होती थी, जहाँ गणेश, दुर्गा की मूर्तियों की, भुजरिया के जवारों की और गणगौर बाई की बिदाई होती थी और धोबी घाट भी लगता था। सामान्यत: पतली धार के रूप में खामोशी से बहने वाली यह अजनाल वर्षा के दिनों में कभी-कभी विकराल रूप धारण कर लेती थी तो कस्बे के निचले इलाकों में पानी भर जाता था। प्रमिला और माणक मामा के घर के सामने भी बाढ़ का भरपूर पानी होता था। इसीलिए इस क्षेत्र के घरों के ओटले बहुत ऊँचे थे। ऐसा ही एक ऊँचा ओटला था हरदा के दिगम्बर जैन मंदिर का, जिसकी तीखी किनार ने एक दिन मेरी माँ का कलेजा चीर कर रख दिया, एक ऐसा घाव दे दिया जो उनके जीवन पर्यन्त भर न सका, जिसकी पीड़ा उनकी आंखों से हजारों बार अश्रुधारा के रूप में हमारे सामने झर-झर झरती रही इस ऊँचे ओटले की करतूत बयान करते हुए।

यह मेरे जन्म से पूर्व की घटना है। वह पर्यूषण पर्व का कोई दिन था, जब बड़े तो मंदिर में अंदर भगवान की पूजा-अर्चना में व्यस्त थे और बच्चे बाहर खेलने में। इन बच्चों में मेरा एक भाई भी था, नाम था-कमल। तब वह सात साल का था, खेलते-खेलते जाने कैसे गिरा कि मंदिर के इस ऊँचे ओटले की तीखी किनार से उसकी कनपटी की नस कट गई और वह हमेशा के लिए फिट्स का मरीज बन गया। इस मर्ज के कारण वह कहीं भी चक्कर खाकर गिर जाता था और जख्मी हो जाता था। इसलिए चौथी के बाद उसकी पढ़ाई अवरुद्ध हो गई। उस जमाने में प्रचलित ऐसा कोई इलाज न था जो आजमाया न गया हो पर मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। बढ़ती उम्र के साथ-साथ उसकी दशा बिगड़ते-बिगड़ते इतनी बिगड़ी कि एक दिन हमने माँ को भगवान के सामने बिलखते हुए सुना हे भगवान! अपने बेटे

की पीड़ा अब देखी नहीं जाती, सही नहीं जाती। उसे इस यातना से मुक्त करो भगवन! उसे अपनी शरण में ले लो। हाय! मैं कितनी अभागी माँ हूँ, जो अपनी ही संतान की मृत्यु की प्रार्थना कर रही हूँ.. मुझे क्षमा करना भगवान!

प्रार्थना कबूल हुई। अपने जीवन के अठारहवें बसन्त में मेरा वह भाई जो सातों भाईयों में सबसे सुंदर था, सबसे ऊँचा और तगड़ा था, जो बीमार होने के बावजूद मुझे अपने कधे पर बिठा कर घुमाता था, जो सबका हमदर्द था, यथाशक्ति सबका मददगार था, अंततः समस्त यातनाओं से मुक्त हो गया। भगवान ने उसे अपनी शरण में ले लिया। उसकी मृत्यू और अठारह साल लंबी सेवा की थकान ने माँ को तोड़कर रख दिया। माँ रोज मंदिर जाती थीं और मंदिर के ऊँचे ओटले की तीखी किनार से जुड़ी स्मृति माँ के कलेजे के घाव को रोज़ एक नश्तर और लगा देती थी।

मेरी अभिन्न सखियां-उषा और शोभा वाजपेई। उषा नवीं से ग्यारहवी तक मेरे साथ पढ़ी थी। वो और उससे छोटी शोभा दोनो ही मेरी घनिष्ठ सखियां हैं। उषा जिला कार्यालय बैतूल में यू.डी.सी. के पद पर पदस्थ होकर वहीं निवासरत है। उसकी होनहार बेटी ऋचा भोपाल में एम.बी.बी.एस. तृतीय वर्ष में अध्ययन रत है। रेल्वे स्टेशन और नये बस स्टेण्ड के बीच पुराना सा बरगद का पेड़, यह पता है इन सखियों के घर का। यह घर मेरे लिए दूसरे घर सरीखा था। मेरे घर के सामने नाज़िर भैया की सायकल की दुकान थी। मैं आए दिन उनकी दुकान से लेडीज़ सायकल उठाकर इस घर पहुँच जाया करती थी। जहाँ मेरा स्वागत होता था कभी लवंगलता से, कभी पेड़ों से तो कभी आलू बड़ों से और आत्मीयता से तो हर बार। स्टेशन पर उनके पिता श्री परमात्मादीन वाजपेई की होटल थी, जो खूब चलती थी। अच्छा खासा सुखी परिवार था पर एक दिन वे सायकल से कहीं गए तो जीवित वापस नहीं लौटे। परिवार की आधार शिला अचानक टूट गई। उनके साथ ही उस घर के सारे सुख भी चले गए और दुख और कष्ट उस परिवार के हमसफ़र बन गए। बड़ी बहनों की तो एक-एक कर शादी हो गई पर सबसे छोटी शोभा ने अपने सुख से ऊपर उठ कर घर को जिस तरह सम्हाला और आज तक सम्हाल रही है, वह किसी तपस्या से कम नहीं है।

ऐसा ही एक और घर, मेरे घर के सामने था, श्री माणकचंद पाटनी का। उनसे और उनकी पत्नी से मुझे वैसा ही प्यार मिलता था, जैसा उनकी बेटियों को। दोनो प्यार से मुझे मानबाई कहते थे और मैं उन्हें काकाजी-काकीजी कहती थी। काकीजी मेरी माँ की घनिष्ठ सखी थी। उनकी सबसे छोटी बेटी इंदु स्कूल की पढ़ाई इंदौर में करने के बाद हरदा लौटी थी, जब मेरा कॉलेज में प्रवेश हुआ। रोज साथ-साथ कॉलेज आते जाते हम भी अपनी माँओं की तरह जल्दी ही घनिष्ठ हो गए। कॉलेज के दौर में हम दोनो जुगल जोड़ी के रूप में जाने

जाते थे। न जाने किस की नजर लग गई हमारी इस जोड़ी को। वह मुझे ही क्यों... सारी दुनिया को छोड़कर अनन्त में विलीन हो गई...। उसके संग साथ की ढेरों यादें आज भी स्मृति का अभिन्न और जीवंत हिस्सा हैं।

हाथ छूटें भी तो रिश्ते नहीं छूटा करते,
वक्त की साख से लम्हें नहीं टूटा करते।

कॉलेज की पढ़ाई खत्म होने के बाद इंदु और मैं अभी इस उहापोह में ही थे कि आगे क्या करें कि स्वतः एक नया मार्ग प्रशस्त हुआ। श्री उत्तम बंसल (करताना वाले)के सुझाव पर हम दोनो ने पी.एस.सी. का फार्म भर दिया। इंदु के पास सब कुछ था सिवा संकल्प की दृढ़ता के और मेरी तो एक मात्र पूंजी ही थी मेरी दृढ़ इच्छाशक्ति। सो वह तो बस फार्म भर कर चुप बैठ गई पर मैं चल पड़ी उस मार्ग पर जो नियति ने मेरे लिए निर्धारित कर रखा था। भाई उत्तम बंसल और उनकी पत्नी गीता भाभी, जिनकी प्रेरणा और मार्ग दर्शन से मैं सन् 1982 में म.प्र.लोकसेवा आयोग की प्रतियोगी परीक्षा दे सकी; जिसकी बदौलत आज मैं एक प्रतिष्ठापूर्ण, सम्मानजनक जीवन जी रही हूँ। पी.एस.सी. की तैयारी के दौरान उनके माता-पिता भी सतत् मेरा उत्साह वर्धन करते रहे। मेरी सफलता में यह योगदान भी कम महत्व का नहीं है। यह सन् 1971 का भारत-पाकिस्तान का युद्ध था, जिसने रेडियो की न्यूज सुनने और समाचार पत्र पढ़ने की रुचि जगाई, जो आगे जाकर मेरी आदत बन गई। यह आदत प्रतियोगी परीक्षा पास करने में बहुत काम आई। जनरल नॉलेज पर मुझे बहुत मेहनत नहीं करना पड़ी।

इंदु की संगत से मेरी एक और अच्छी सहेली बनी, श्री अनवर ज़ैदी की बेटी हुमेरा। मैं उसे जानती तो थी स्कूल के जमाने से ही पर उससे दोस्ती बाद में हुई। स्कूल के दिनों में वह मुझे हमेशा इतनी फ्रेश लगती थी जैसे अभी-अभी नहा कर आई हो। उसकी दोस्ती में उर्दू और शायरी से भी मेरा थोड़ा बहुत परिचय हो गया। हमारी दोस्ती आज भी कायम है। वह अपने परिवार सहित कोटा में रहती है पर भला हो इस मोबाइल (फोन) युग का जिसके माध्यम से हम आज भी आपस में जुड़े हुए हैं। साल दो साल में मिलना भी हो ही जाता है।

पड़ोस वाले बाबूजी, श्री बद्रीप्रसाद जी अग्रवाल, बड़ी माँ को कैसे भूल सकती हूँ? उनकी बेटी विजयलता मेरी हमउम्र है। बड़ी माँ और मेरी माँ जब भी साथ बैठतीं, हमने उन्हें गंभीर धार्मिक तत्व चर्चा करते ही सुना। दोनों एक दूसरे का बहुत सम्मान करती थीं। मेरी माँ की मृत्यु के बाद बड़ी माँ ही थी जो प्यार से गले लगाती थी। उनके हाथ के आम और निम्बू के अचार की याद आते ही आज भी मुँह में पानी आ जाता है। बाबूजी, मेरी हर सफलता पर गदगद होकर भरपूर आशीर्वाद बरसाने वाली शख्सियत हैं। मेरे पिताजी पर उन्होंने सदा बड़े भाई सा स्नेह रखा जो आज भी यथावत है। उनके छोटे बेटे यानी गोपाल भैया की पत्नी आभा

भाभी मेरी अच्छी सहेली हैं।

मोहल्ले में कहने को सब अलग-अलग घरों में रहते थे किंतु हमारी और हमारे सामने वाले घरों की चाल एक साझा परिवार थी। सब एक-दूसरे के दुख:-सुख के साथी। किशोरावस्था तक सारे लड़के-लड़कियां किसी भी घर में साथ-साथ ही खेलते थे। कभी इस घर में धमाचौकड़ी तो कभी उस घर में। जिस घर में हम होते उस घर में तो भूचाल मचा होता और बाकी माएँ यह तलाश कर रही होतीं कि हम हैं कहाँ। हमारे साथ-साथ खेले खेल, लुकाछिपी, छियाछाई, कंचे, गिल्ली-डंडा, पतंग, गणगौर पूजा, संध्याबाई की पूजा, होली, दीवाली, रक्षाबंधन कभी न भूलने वाले लम्हें हैं। साथ-साथ बाबू जी की बैलगाड़ी या मोटर गाड़ी में बैठकर उनकी कपास की जीन में जाना और कपास के ढेरों पर घंटों लुकाछिपी, छियाछाई खेलना, कच्ची इमलियाँ खाना और ढेर सारा कपास सिर के बालों और कपड़ों पर चिपकाए घर लौटना, यह हमारा किशोरावस्था का लगभग हर रोज़ का क्रम था।

इसी तरह ज्योति प्रेस वाले बसन्त भैया के खेत में प्राय: बैलगाड़ी से जाकर पिकनिक होती थी। कभी गरमा गरम भुना होला-उम्बी तो कभी कच्ची कैरियां और पक्के आम, जाम, जामुन, बेर और कबीट भुलाए न भूलेंगे। हमारी माँएं भी सब आपस में सहेलियां थीं। पापड़, बड़ी, सेवइयां बनाना हो या गर्मी के मौसम में साल भर का अनाज साफ करके भरना हो, आसपास के दस पाँच घरों की महिलाएँ इकट्ठी होकर बैठतीं, एक दूसरे के दुख:-सुख की बातें करतीं, गृहस्थी की कड़वी मीठी स्मृतियों को दोहराते, गाँव भर की चटपटी चर्चाओं में और नमक-मिर्च लगाते, अनुपस्थित सखियों की निंदा का रस पान करते ये भारी काम कब हल्के हो जाते पता ही नहीं चलता था। ऐसे ही माहौल में हम बेटियों ने उनके सानिध्य में कब गृहस्थी के ये सारे काम सीख लिये हमारी माँऐं भी शायद जान न पाईं हों! ऐसी अनूठी प्रशिक्षण शालाऐं अब कहाँ ? बड़ी-माँओं, काकियों की चटखारेदार चर्चाओं का ऐसा रसाकर्षण होता कि हम बालाऐं अपनी पढ़ाई क्या और खेल क्या, सब छोड़-छाड़ कर खींची चली जाती थीं उनकी महफिल में। पड़ जातीं थीं बड़ी-पापड़ के झमेले में और हो जाती थीं बड़ी..... बड़ियां तोड़ते-सुखाते।

अब पता नहीं क्या स्थिति है लेकिन मेरे हरदा रहते तक हरदा के त्यौहार बेहद उल्लास भरे होते थे। स्कूल पढ़ने वालों को दुर्गाष्टमी की प्रतीक्षा बड़ी बेसब्री से रहती थी क्योंकि इस दिन से भाईदूज तक लगातार चौबीस दिनों की छुट्टी जो रहती थी। दशहरे पर सब रावण दहन के लिए अजनाल नदी के पंपस्टेशन पर जाते थे और लंका लूट कर लाते थे। इस लूट की प्रतीक सोने-चांदी की पत्तियां (खरीदी हुई) और भुजरिया पर जवारे लेकर सब एक दूसरे के घर बड़ों का अशीर्वाद लेने जाते थे। बख्शीश में मिलती थी चवन्नी-अठन्नी जो उस वक्त के

बच्चों के लिए बड़ा ईनाम होती थी, जिससे काफी मजे किए जा सकते थे, जैसे गटागट की गोली या रामबाण हरडे खाना। लड़कियों का जोर बेर इमली, कबीट पर ज्यादा होता था।

टेसू आया टेस से,
पैसे निकालो जेब से,
मेरा टेसू यहीं अड़ा,
खाने को मंगता दही बड़ा।

ये पंक्तियां गाते-गाते जब किशोर बच्चों की टोलियां द्वार पर खड़ी होकर पैसा मांगने लगें तो समझो दीवाली करीब है। सारा शहर सफाई-पुताई के बाद चमक उठता था। हम जैनों के लिए दीवाली दोहरे आनन्द का त्यौहार होता है। हम जितने उल्लास से लक्ष्मी पूजन करते हैं उतने ही उल्लास से भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव भी मनाते हैं। फिर चलता था घर-घर जाकर शुभकामना देने का दौर। इस बहाने सभी परिवारों का प्रत्येक सदस्य गाँव भर के अपने सगे-संबधियों, मित्रों-परिचितों के घर के पकवान चख लेता था। गणगौर पर आस-पड़ोस की लडकियां सजधज कर जुलूस के रूप में अजनाल नदी के घाट पर गणगौर खेलने जाती थीं। जन्माष्टमी, गणेशोत्सव और नवरात्रि पर्व में स्थान-स्थान पर स्थापित मूर्तियों और झांकियों के दर्शन करने सभी उम्र और वर्ग के लोग अपने परिवार या मित्र मंडली के साथ एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले डोलते रहते थे। महिलाएं भी इस रिवाज का पूरा आनन्द लेती थीं। इन पर्वों के समापन पर निकलने वाले चल समारोहों में मूर्तियों और झाँकियों की अद्‌भुत छटा और अखाड़ों के करतब देखने मार्ग के सभी घरों की छतें, छज्जे और ओटले ठसाठस भर जाते थे और चल समारोह गुजर जाने के बाद ही खाली होते थे।

डोलग्यारस पर अग्रवाल मंदिर से निकली भगवान की पालकी हमारे पड़ोसी बाबूजी के घर के सामने अवश्य रुकती थी और कम से कम आधा-पौन घंटे तक भगवान शंकर का रूप धरे नारायण टॉकीज वाले मामा का जो मुग्ध कर देने वाला नृत्य होता था, वह हर बच्चे-बूढ़े को झूमने पर विवश कर देता था। क्या आप विश्वास करेंगे कि हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्णा हरे कृष्णा कृष्णा कृष्णा हरे हरे की अनूठी धुन में नगाड़े की ताल पर थिरकते दर्शकों के साथ स्वयं बाबूजी हाथों में डांडिया लेकर शंकर बने मामा के साथ नृत्य में जुगलबंदी करने लगते थे। मामा तो साक्षात शंकर का अवतार ही लगते थे।

होली पर रातों में जगह-जगह फाग मंडलियां जमती थीं। खूब भांग छनती थी और खूब गाना-बजाना भी होता था। बड़े-बड़े बर्तनों में रंग घोल कर घरों के सामने रख दिया जाता था। लोग अपने मित्रों या जातिगत टोलियों में निकलते थे और खूब रंग खेला जाता था। पीतल की पिचकारियों से भी। एक दूसरे को उठाकर रंगों के बर्तनों में पटकने की होड़ लगती

थी। बच्चे बूढ़े सभी इस त्यौहार का आनन्द लेते थे पर साल दर साल इस पर्व का माहौल बदल रहा था। धीरे-धीरे उल्लास का स्थान उन्माद ले रहा था। उन्मादी लोग गाली-गलौच पर उतर आते थे और कई बार तो एक दूसरे के कपड़े तक फाड़ देते थे। ऐसे में झगड़े की नौबत आ जाती थी।

इसी क्रम में मोहर्रम के ताजियों की अपनी छटा थी। बचपन में हम इन्हें डोल जैसा ही समझते थे, इसलिए उनके आगे छाती कूट-कूट कर रोना बड़ा विचित्र और रहस्यपूर्ण लगता था। समझ आने पर बात समझ आ गई। उनकी कलात्मकता एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करती थी और ऊँचाई कई बार आपसी झगड़े का कारण बन जाया करती थी। रोज़े के दिनों में रोज़ादारों को सेहरी के लिए जगाने वाले बंदे भोर में शहर भर में घूम-घूम कर आवाज लगाते थे, जागो रोजेदारों! सेहरी का वक्त हो गया है। और देखते-देखते ईद का दिन आ जाता था। नागपंचमी पर नाग को दूध पिलाने वालों, ग्रहण और सक्रांति पर खिचड़ी का दान मांगने वालों की ऐसी ही आवाजें परम्परागत होते हुए भी कौतुहल जगाती थीं।

इन्हीं त्यौहारों के रंग में जैनों के महावीर जयन्ति और अनन्त चतुर्दशी के जुलूसों का अपना अलग ही रंग होता था। सबसे अनुपम होती थी क्षमावाणी। पर्यूषण पर्व के समापन पर आश्विन महीने की प्रतिपदा के दिन पूरा समाज संध्या के समय मंदिर में इकट्ठा होता था। इस प्राचीन मंदिर में मूलनायक भगवान शांतिनाथ की अतिशयकारी प्रतिमा विराजमान है। किसी भक्त को सपने में निर्देश हुआ कि मैं नदी में हूँ, मुझे निकालो। पर कहाँ, स्थान का निश्चय कैसे हो ? पुन: सपने में संकेत मिला नेमावर के तट पर टोकनी में फूल भरकर बहा दो। जहाँ टोकनी रुकेगी, वहीं मैं हूँ। हरदा और खातेगांव की समाज ने चर्चा कर सपने के निर्देश का पालन किया। जहाँ फूलों की टोकनी रुकी, वहाँ खुदाई करने पर तीन मूर्तियां निकलीं। उन्हें बैलगाड़ियों पर विराजमान किया गया तो वे स्वत: ही अपने-अपने गंतव्य की ओर ऐसे चल पड़ीं जैसे सब कुछ पूर्व निर्धारित हो। जहाँ-जहाँ ये गाड़ियां जाकर रुकीं, वहाँ-वहाँ मंदिर बन गए, नेमावर में श्री आदीनाथ जिनालय, खातेगांव में श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनालय और हरदा में श्री शांतिनाथ जिनालय। इस तरह तीन तीर्थों की स्थापना हुई। कालांतर में हरदा के श्री शांतिनाथ जिनालय में तीर्थंकर श्री आदिनाथ, श्री पार्श्वनाथ, श्री चन्द्रप्रभु एवं भगवान बाहुबली की मनोरम मूर्तियों की स्थापना भी हुई और भव्य मंदिर ने आकार लिया। क्षमावाणी पर्व पर इसी मंदिर में भगवान के समक्ष पूरे विधि विधान से सामूहिक सामायिक कर अपने द्वारा कृत, कारित और अनुमोदित पापों के लिए क्षमा याचना की जाती थी। फिर जुलूस के रूप में घर-घर जाकर एक-दूसरे से अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगी जाती थी। कई अजैन भी क्षमा याचना की इस परिपाटी में शामिल हो गए थे और अपने घर के सामने आए जुलूस का भरपूर स्वागत करते थे। मैं उम्मीद करती हूँ कि यह सुंदर परम्परा आज भी कायम

होगी। क्षमाभाव की आवश्यकता आज पहले से कहीं ज्यादा है।

हरदा का घंटाघर यानी शहर का धड़कता हुआ दिल। पूरा शहर इस घंटाघर की परिक्रमा करता प्रतीत होता था। बड़ा कलात्मक और ऐतिहासिक। इतना ऊँचा घंटाघर अब तक तो मैंने अन्य किसी शहर में नहीं देखा। उस पर चारों दिशाओं में लगी घड़ियां जैसे हर पल सचेत करती हों कि जीवन छोटा है, समय व्यर्थ बरबाद मत करो। इसके चबूतरे पर कड़ी धूप, सर्दी, बरसात में दिनरात खड़े गांधीबाबा भी शायद यही तो कह रहे हैं। पर उनकी सुनता कौन है ? इस घंटाघर के चबूतरे पर वर्षों से खड़े बाबूलाल का जिक्र किए बिना लगता है कुछ छूट रहा है। वह शख्स भी घंटाघर की ही तरह ऐतिहासिक लगता था। शायद इस किताब के सभी आलेखों में हरदा की इस बुलंद जोड़ी ने स्थान अवश्य ही पाया होगा ? वह क्यों पागल हुआ ? उसकी गालियों की बौछारें किसके लिये थीं ? गालियों के साथ वह और न जाने क्या क्या बड़बड़ाता रहता था ? और वह भी घंटाघर के चबूतरे पर, ठीक गाँधीजी की प्रतिमा के पास, एक पैर पर खड़े रहकर ही क्यों? ये सारे प्रश्न आज भी मेरी जिज्ञासा का विषय हैं ! बताना, अगर आपको पता हो।

उस गुजरे जमाने को याद करते हुए ठेलों पर फेरी लगाने वाले गोलमटोल गोपाला भैया फलवाले, शैतान कुल्फी वाले और चना जोर गरम वाले मामा, टिर्रू तांगे वाले को कैसे भूला जा सकता है ? महिलाओं के बाजार जाने का चलन आज की तरह आम नहीं था। उन्हें गोटाकिनारी खरीदना हो या झाड़ू या चूड़ियाँ पहननी हों.., फेरी वाले इन चाचा-मामाओं की घर पहुंच सेवा से उनका काम बखूबी चल जाता था। यहां तक कि नाई और कान का मैल साफ कराने की सेवा भी घर बैठे ही मिल जाया करती थी। चतरू हलवाई के पेड़े और बाबू काका के पान तो हममें से कोई आज भी हरदा जाए तो साथ लाना नहीं भूलता। दोनों का स्वाद तब भी लाजवाब था, आज भी लाजवाब है। घर की धोबन-बरौनियों को माँ, काकी, भुआ या भाभी कहने की स्वस्थ परंपरा थी। संबंधों की इसी डोर के सहारे घर के नौकर पचासों साल एक ही घर में टिके रहते थे। हमारे घर की धोबन सुखिया भुआ, एक परित्यक्ता महिला थी। माँ उसे अक्सर ही खाना खिला दिया करती थी। खाते-खाते उसका पेट भरता जाता था और कलेजे के दुखड़े बाहर आते जाते थे। मेरी माँ की मृत्यु के बाद वह जब भी मुझे उदास देखती, झट तेल की शीशी उठा मेरे सिर की चंपी करने लगती थी और बातों ही बातों में सिखा जाती थी कि कष्टों से हंसकर कैसे गुजरा जाता है।

हरदा की सेहत को सम्हाले रखने का धर्म लंबे समय तक जिन्होंने निभाया वे डॉक्टर्स भी अविस्मरणीय हैं। डॉ. बंसल, डॉ. रामप्रसाद, डॉ.धर्मवीर, डॉ. झंवर और डॉ. लक्ष्मीनारायण ने इस क्षेत्र में अमूल्य सेवाएं दीं। उस जमाने में हर व्यवसायी के अपने ग्राहक

से आत्मीयता और विश्वास के संबंध होते थे। ये चिकित्सक भी इसका अपवाद नहीं थे। तांगे पर बैठकर ये प्राय: अपने मरीजों को देखने उनके घर जाया करते थे। यह सन् 1967 था जब माँ को पहला हार्ट अटेक पड़ा था। उनकी जीवन रक्षा के लिए डॉ. बंसल द्वारा दिए गए मारफिया के डबल इंजेक्शन के कारण माँ का पूरा शरीर नीला पड़ गया था, यहां तक कि होंठ और आंखें भी। वे लगभग एक सप्ताह तक पूरी तरह बेहोश पड़ी रही थीं। सब लोगों ने उनके जीवन की आशा ही छोड़ दी थी। किसी तरह उनकी जान बच गई यह एक चमत्कार ही था पर उस वक्त एक अच्छे अस्पताल और एक हृदय रोग विशेषज्ञ की कमी कितनी खली थी, यह शब्दों में बयान कर पाना असंभव है। यह कमी उनकी मृत्यु तक बनी रही और अंतत: तीसरा अटेक जानलेवा साबित हुआ।

माँ के देहावसान के बाद मेरे लिए जीवन का अर्थ ही बदल गया। परिवर्तन के इस दौर में हरदा पहले मन से छूटा और नौकरी लगने के बाद तन से भी छूट गया। यदि नौकरी न भी लगती तब भी एक न एक दिन तो हरदा छूटना ही था। कौन बेटी बाबुल के आंगन को सदा के लिए पकड़ कर रख सकी है भला ? जब तक पिताजी हरदा में रहे आना जाना लगा रहा.. पर अंतत: जब एक दिन वे भी हरदा छोड़ने को विवश हो गए तो हरदा जाने का कोई बहाना भी न रहा। माँ के बिना वह घर अजनबी हुआ और पिता के बिना वे गलियां पराई हो गईं। इतना लिखकर भी लग रहा है जैसे बहुत लिखना बाकी है। अपने इतिहास के कड़वे मीठे स्वाद से गुजरना आसान नहीं है। यह सब लिखते हुए जाने कितनी बार रोई हूँ और कितनी बार बरबस मुस्कुरा पड़ी हूँ पर भावनाओं का प्रवाह है कि थमने का नाम ही नहीं ले रहा। फिर भी कहीं न कहीं तो इसे विराम देना ही होगा।

अपनी यादों का पिटारा बंद करने से पहले मैं श्री ज्ञानेश चौबे, श्री धर्मेंद्र पारे और उनकी टीम को धन्यवाद देना चाहती हूँ कि उन्होंने अपनी जन्मभूमि के प्रति, अपनों के प्रति हृदय के उद्‌गार प्रकट करने और एक किताब के रूप में उसे चिरस्थायी बनाने का अवसर दिया। यह धर्मेंद्र भाई का आत्मीय आग्रह ही था जो मैं कुछ लिख सकी। उन्होंने न केवल मुझे लिखने के लिए उकसाया बल्कि बहुत धैर्य से मेरा यह आलेख पूरा होने की प्रतीक्षा भी की। पाठकों को इस लेख की लम्बाई अखर सकती है। उन्हें यह मेरी अपने मुँह मियां मिट्ठू बनने की चेष्टा भी लग सकती है लेकिन धर्मेंद्र भाई ने पूरी छूट दी मुझे खुलकर लिखने की। और इस छूट का उपयोग करते हुए मैंने आत्म प्रशंसा लगने वाली बहुत सी घटनाओं का जानबूझ कर उल्लेख इसलिए किया ताकि अपने शहर की बेटियों तक यह बात पहुँचा सकूं कि संकल्प में दृढ़ता हो तो कोई बाधा हमें आसमान छूने से रोक नहीं सकती। हाँलाकि पिछले छब्बीस वर्षों में माहौल में बहुत बदलाव आया है, अब लड़कियों पर न पहले जैसे सामाजिक बंधन हैं न ही लड़के-लड़कियों के बीच वैसा भेदभाव। फिर भी मुश्किलें कम नहीं हैं। सफलता की

सबसे बड़ी ज़रूरत है स्वयं अपनी क्षमताओं का बोध और आत्म विश्वास। और एक बात, मिली हुई आज़ादी के सद्उपयोग का विवेक भी होना बहुत जरूरी है। तभी संकल्प को सचाई में बदला जा सकता है। परिवार के सहयोग और साधन के अभाव में मैं आई.ए.एस. की प्रतियोगी परीक्षा नहीं दे पाई। अत: मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे शहर की कोई बेटी मेरे इस सपने को साकार करे। कोई बेटी खुद का व्यवसाय करे और इन्दिरा नूई से आगे जाए, कोई कल्पना चॉवला की अधूरी उड़ान को भी पूरा करने का हौसला दिखाए। अपनी जन्मभूमि में छुपी प्रतिभाओं के प्रति आश्वस्त हूँ कि यह दिन जल्दी ही आएगा। कभी अवसर मिला तो जन्मभूमि को अपनी सेवाएं देने में मुझे खुशी होगी। अभी तो बस इतना ही कहती हूँ, ए माँ तुझे सलाम!

डिप्टी कलेक्टर, जिला कलेक्ट्रेट परिसर, रतलाम

हरदा में, अपनो के बीच -बीस बरस

डॉ. रघुनन्दन प्रसाद सीठा

किसी नगर के भौतिक स्वरूप के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है और लिखा भी जा सकता है क्योंकि भौतिक स्वरूप प्रत्यक्ष होता है दिखाई देता है जिसका वर्णन करना संभव है, लेकिन नगर के आंतरिक स्वरूप के बारे में कौन बताये ? कैसे बतलाये? उसकी आत्मा को परिभाषित कैसे करें? यह तो नगर में रहकर नगरवासियों से मिलकर उनसे बातचीत कर नगर के इतिहास व वर्तमान लोक व्यवहार को देख समझकर वहां की संस्कृति रीति एवं परंपराओं को करीब से अनुभव कर तथा वहां के लोगों का चिंतन और उनकी जीवन दृष्टि को देख परख कर तथा उसमें सहभागिता कर जाना जा सकता है। यदि अन्य नगरों से कुछ भिन्न वहां हमें दिखाई दें वहां की नवीनता हमें प्रभावित करें तभी हम कह सकते हैं कि कितना अनुपम है यह नगर कितने अच्छे है यहाँ के लोग। इस कसौटी पर मैं कह सकता हूं कि मन के भीतर व बाहर अभिभूत कर देने वाला एक ही नगर मेरी समझ में आता है और वह हरदा है। हरदा याने हृदय में बसा। हरदा का नाम मस्तिष्क में आते ही मन अनिर्वचनीय आनंद में डूब जाता है। हरदा में बस जाने का मन होता है। आज मैं हरदा के बाहर हूं तो क्या ? मन तो हरदा में है। हरदा के लोगों के मन की शुचिता व उदारता मुझे अन्य किसी शहर के लोगों में दिखाई नहीं देती है।

किसी प्राणी के बाह्य स्वरूप के भीतर जो आत्म तत्व होता है वहीं वंदनीय है । अंतर और बाह्य दोनों मिलकर ही व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। वस्तुत: व्यक्ति की भांति नगर का भी व्यक्तित्व होता है। व्यक्ति की तरह नगर में भी विशेषताएं होती है । नगर के व्यक्तित्व निर्माण में वहां के लोगों का चिंतन और और वहां के लोगों की जीवन शैली का बड़ा योगदान रहता है । हरदा का अपना व्यक्तित्व है। हरदा में रहते हुए मैं अनेक व्यक्तियों से प्रभावित था। चर्चा

में उनकी बातों से मुझे बल मिलता था। मेरे पहले प्राचार्य जे. पी. पांडे जो हरदौल बाबा के चबूतरे के सामने रहते थे वे मुझसे कहा करते थे कि सीठाजी आप अच्छी जगह आये हैं यहां के लोग अच्छे हैं। आप को यहां घर जैसा आत्मीय वातावरण मिलेगा। नन्हेलाल पटेल (रन्हाई) विधायक हरदा जो मानवीय मूल्यों के पक्षधर थे, और आज उन जैसा जनप्रतिनिधि मिलना दुर्लभ है वे मुझसे कहते थे कि आप निर्भय होकर पढ़ाइये आप हरदा से बाहर नहीं जायेंगे। यहां की मिट्टी में अपनापन है आप हमारे परिवार के सदस्य जैसे हैं। कवि, वक्तृत्व कला के धनी श्री श्याम साकल्ले जो कभी मेरे छोटे भाई के विद्यार्थी थे छोटे होते हुए भी जिनकी संवेदनशीलता, दूरदर्शिता, और मानवीय दृष्टिकोण का मैं कायल हूं, उन्होंने मुझसे एक बार कहा था हरदा यह हृदय नगरी है यहां परस्पर प्रेम और सौहार्द्र बांटा जाता है। मैंने प्रति प्रश्न में उनसे पूछा कि जो सहृदय नहीं है आत्म केन्द्रित हैं अथवा शुष्क हृदय हैं ऐसे लोगों को क्या आप हरदा से बाहर कर देंगे तब उनका उत्तर था कि हम हरदावासी पहले ही भेंट में अनजान लोगों को अपना बना लेते हैं। शुष्क को रससिक्त कर अपने ही रंग में रंग लेते है। यहां कुछ दिन ठहरा हुआ व्यक्ति भी हरदा को कभी नहीं भूल पाता ऐसी आत्मीयता अन्यत्र कहां मिलेगी ?

मैंने अपने जीवन के महत्वपूर्ण बीस वर्ष हरदा में व्यतीत किये जुलाई 1966 में हरदा पहुंचा और जुलाई 1986 में हरदा से बिदा ली। दस वर्ष की शेष सेवा होशंगाबाद में पूरी कर सितम्बर 1996 में प्राचार्य पद से मैं सेवानिवृत हुआ। हरदा आने के पूर्व मैं बैरसिया, दिल्लौद, के शासकीय माध्यमिक विद्यालय में ग्यारह वर्ष तक शिक्षक था ।

होशंगाबाद में मेरी वृद्ध मां रहती थी मार्च 1986 में उन्होंने मुझसे कहा बेटा रघुनन्दन अब तुम दोनों होशंगाबाद बदली करा लो मुझे तुम्हारे सहारे की जरूरत है मां के हृदय से निकले मौखिक आदेश को मैंने गंभीरता से लिया। तब श्री विष्णु राजोरिया ने मेरी मदद की और हम दोनों पति पत्नी के ट्रांसफर आदेश हरदा से होशंगाबाद जुलाई 1986 में जारी हो गये। मेरी पत्नी उर्मिला सीठा हरदा कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में शिक्षिका थी। होशंगाबाद आने के पूर्व ट्रांसफर की प्रत्याशा में हरदा के स्नेही इष्टमित्र और सजातीय बंधुओं तथा पड़ोसियों के द्वारा हमारा स्वागत अभिनंदन होता रहा। घर-घर निमंत्रण होते रहे और हमारे कार्य व्यवहार की प्रशंसा होती रही। मेरे तीनों बेटे हरदा में ही पले बढ़े उन्हें भी हरदा छोड़ते वक्त मन में विषाद था। बच्चे तो हरदा को ही अपना घर मानते थे। अन्तत: मुझे हरदा छोड़ना पड़ा होशंगाबाद आने के लिए मैं विवश था। मेरे अभिन्न मित्र वल्लभदास लोहाना शिक्षक, मेरे साथ होशंगाबाद आये और तीन दिन यहां रूककर हमें व्यवस्थित कर हरदा लौटे। मैं होशंगाबाद आया तो अब यहीं रहना है। अब लौटकर हरदा जाना तो असंभव है। हरदा मेरी श्वांस -श्वांस में बसा है। यहां पांच वर्ष तक मां की सेवा का पुण्य लाभ हमें मिला। तेजी से समय बीतता

गया वर्षों से निरंतर मेरा संपर्क होशंगाबाद से था अत: मुझे यहां स्थापित होने में संघर्ष नहीं करना पड़ा जून 1991 में मां भागवती बाई का निधन हो गया। मां ने मुझे धार्मिक संस्कार दिये। एक आर्ष जीवन पद्धति विरासत में दी। उसी के अनुरूप हम यहां शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मां से उऋण हुआ जा सकता है क्या ?

सीधी भर्ती से व्याख्याता पद पर चयनित होकर मैं हरदा आया। भोपाल में संचालक कार्यालय के एक परिचित अधिकारी ने मुझसे पूछा था "आप मूलत: होशंगाबाद के निवासी हो और कहां पोस्टिंग चाहते हो पिपरिया अथवा हरदा दोनों जगह पद रिक्त है।" मैंने ईश्वर की प्रेरणा से तत्काल कह दिया हरदा और एक सप्ताह बाद आदेश मेरे हाथ में था। मैं खुशी से उछल पडा सचमुच मुझे मेरी मनपसंद जगह मिल गई। मैं उस क्षण को धन्य कहता हूं जब मैंने विकल्प में हरदा को पसंद किया। यद्यपि हरदा के बारे में मुझे इतना ही ज्ञात था कि हरदा में कपास होती है, हरदा के बहुत से लोगों ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया था और यह कि मेरे समाज के बहुत से परिवार हरदा में रहते हैं।

उन दिनों मैं प्रतिदिन डायरी लिखता था। इंटरव्यू के बाद एक दिन शायद 2 जुलाई 1966 में मैंने अपनी डायरी में लिखा हे भगवान मुझे व्याख्याता बनाकर शास. उ. मा. विद्यालय हरदा भेजना (वह डायरी आज भी सुरक्षित है) मैं कहीं और नहीं जाना चाहता। प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुनी मन ही मन मैंने परमात्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और मैं हरदा जाने की तैयारी में जुट गया ।

मैं अपने बहनोई रमेश पाराशर के साथ 24 जुलाई को हरदा पहुंचा और दूसरे दिन स्कूल ज्वाइन कर लिया। रमेश जी ने अपने स्टेट बैंक के सहयोगी परममित्र श्री सत्यनारायण पस्टारिया गोलापुरा हरदा के घर पर मुझे ठहराया। पता नहीं उन दोनों में क्या बातचीत हुई रमेशजी दूसरे दिन लौट गये और मैं पस्टारिया जी के घर का सदस्य बन गया। मुझे नहीं लगा कि मैंने अपना घर छोड़ा है समय पर भोजन करता और स्कूल पहुंचता। शाम को वैसा ही आत्मीय आतिथ्य भोजन के उपरांत कुछ आस पास के लोगों से मिलता और फिर विश्राम करता। इस तरह एक महीना बीत गया 15 दिन और बीत गये न पस्टारिया परिवार की ओर से कोई अप्रिय स्थिति बनी और न ही मुझे कुछ सूझा इस बारे में विचार ही नहीं आया कि मुझे कोई मकान देखना चाहिए। किराये का मकान लूं तब पत्नी और बच्चे को यहाँ बुलाऊं। तब बड़ा बेटा अरूण दस माह का था इसी बीच मेरे बड़े भाई ने मुझे सूचित किया कि वे अगले सप्ताह उर्मिला को लेकर आ रहे हैं। तब तक कोई मकान देख लो। पत्र पढ़कर मेरी हलचल बढ़ी मैंने रामभाऊ शास्त्री जी से मकान दिलाने की बात कही। उन्होंने श्री मोजीराम विश्नोई गणेश चौक स्थित मकान मेरे लिए 30/- रूपये मासिक पर तय किया। चार-पांच दिन बाद

मेरी पत्नी हरदा आ गई । व्यवस्थायें बनी और दिनचर्या सामान्य होती गई। सत्यनारायण पस्टारिया श्रीमती पस्टारिया एवं परिवार के लोगों ने जो स्नेह आदर आतिथ्य मुझे दिया उससे मैं अभिभूत था। इस अपने पन को मैं अपने जीवन में कभी नहीं भूल सकता। बिन बुलाए मेहमान की इतने दिनों तक आवभगत सेवा आतिथ्य यह हरदा में ही संभव था हरदा की आत्मीयता का मेरा यह पहला अनुभव। मैं पस्टारिया परिवार के प्रति कृतज्ञतापूर्वक नतमस्तक हूं। हृदय की उदारता का यह अप्रतिम प्रसंग। आज निकट के रिश्तेदार यहां तक कि भाई अथवा काका के यहां दो चार दिन ठहरना कष्टदायक और उनके लिए असुविधाजनक हो सकता है वहीं दूसरी ओर हरदा में किसी अनजाने व्यक्ति को पैंतालीस दिन ठहराना और परिवार के मान्य सदस्य की तरह आदर देना यह आश्चर्य नहीं तो क्या है ? इस आत्मीय व्यवहार से अनजाने में मानवीय उदात्तता के गुणों का बीजारोपण मुझमें हुआ।

बहुत वर्ष पहले सन् 1963 में (मेरी शादी के एक वर्ष पहले) मेरी सास अपनी सहेली रूकमणी बाई लोहाना के घर अपनी बेटी उर्मिला को लेकर दिल्ली से लौटते समय हरदा में रूकी उन्होंने हंडिया में नर्मदा स्नान करते समय मां रेवा से प्रार्थना की थी कि उनकी बेटी का विवाह नर्मदांचल में हो। उनकी प्रार्थना नर्मदा ने सुनी और अगले वर्ष 1964 हमारा विवाह हो गया और दो वर्ष बाद वो मेरे साथ हरदा स्थाई रूप से आ गई जहां उनकी मां ने प्रार्थना की थी। हरदा के नाम पर हम दोनों रोमांचित थे। मानो हरदा के साथ हमारा जन्म जन्मांतर का संबंध है। हरदा मेरी जन्म भूमि न सही परंतु कर्मभूमि के लिए इससे अच्छा स्थान और क्या हो सकता है ? हरदा आना और यहां के सौहार्द्रपूर्ण, पारिवारिक वातावरण में रहना इसे मैं ईश्वर की कृपा मानता रहा ।

हरदा पहुँचा तब मैं 30 वर्ष का था। युवा ऊर्जावान और संकल्पित नई चुनौतियों का सामना करने को तत्पर, कुछ नया करने और सीखने की चाह, हरदा में मुझे अच्छे साथी मिले, अनुकूल वातावरण मिला, स्कूल में उतने ही अच्छे विद्यार्थी, नगर के अच्छे व्यापारी, न्यायप्रिय अधिकारी, और संवेदनशील चरित्रवान नेताओं से मेरा परिचय हुआ और जब मैंने हरदा छोड़ा तब मैं 50 वर्ष का था प्रौढ़, परिपक्व, अपने काम और उपलब्धियों से संतुष्ट, विभिन्न क्षेत्रों के खास अनुभव की पूंजी लेकर मैं होशंगाबाद आया था। हरदा के अनुभवों ने विषम परिस्थितियों में भी मुझे कहीं पराजित नहीं होने दिया। यहां होशंगाबाद में मुझे जिस जिस क्षेत्र में यश मिला उसका श्रेय मैं हरदा को देता हूं। होशंगाबाद में कम समय में स्थापित होने में हरदा का अनुभव मेरे बहुत काम आया।

आज भी हरदा के आत्मीयजनों से मेरा निरंतर जीवंत संपर्क बना हुआ है । सुख दुख के अवसरों पर मैं हरदा जाता हूं। कुछ परिवार तथा अनेक आत्मीय मेरे सुख दुख में यहां

शामिल होते हैं पहले तो पत्राचार ही संपर्क का और बातचीत का माध्यम था अब टेलिफोन व मोबाइल संपर्क के सशक्त माध्यम बन गये हैं। विजय कुमार तिवारी शिक्षक कर्मचारी नेता के दिवंगत होने पर रामभाऊ शास्त्री जी के निधन पर मैं हरदा गया हूं, वल्लभदास लोहाना के बेटे की शादी में मैं सहपरिवार सम्मिलित हुआ हूं। हरदा के निवासी बम्बई में अपने बेटे के साथ रह रहे जानकीप्रसादजी शर्मा पिछले साल जब हरदा आये तब उन्होंने मुझसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। दो दिन बाद मैं सपत्नीक उनसे मिलने पहुंचा। उनसे मिलते ही उनकी आंखों में आंसू आ गये मेरी आंखें भी नम हुई। हरदा के संबंधों को लेकर काफी चर्चा हुई बम्बई में रेलवे में नौकरी करते हुए शर्माजी ने हरदा के लोगों की बहुत सहायता की। हम दोनों पुरानी स्मृतियों में खो गये। पिछले हफ्ते की ही बात है कि रात 11 बजे मेरे दरवाजे पर दस्तक हुई मैंने देखा सामने मांगीलाल सारन खड़े थे हरदा में जिनके मकान हम 8 वर्षों तक किराये से रहे थे वे अपने कुछ साथियों के साथ नगर में एक विवाह में सम्मिलित होने आये थे। रात के 12.00 बजे थे अत: उन्होंने हरदा लौटने की अपेक्षा मेरे घर विश्राम करना ही उचित समझा। उनका मुझ पर इतना अधिक विश्वास था तभी तो वो मेरे यहां बिना औपचारिकता के रूके। आज भी मांगीलाल सारन के परिवार के कोई भी सदस्य जब यहां से होकर जाते हैं तब हमसे मिले बगैर नहीं जाते हैं। उनके घर रहते हुए मैंने हरदा के आस पास के अनेक गांव देखें और उनके रिस्तेदारों के यहां भोजन भी किया। नीमगांव, कड़ोला, झाड़पा, मसनगांव, अबगांव आदि अनेक गांव करीब से मैंने देखे। विश्नोई परिवार की शादी में सम्मिलित हुआ उनकी संस्कृति और आत्मीय व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हुआ। विश्नोई समाज में दाल, बाटी, चूरमा, खाने और भोजन में अधिक मात्रा में घी खाने का रिवाज है। अगर आप उनके यहां रात्रि विश्राम करते हैं तो आपको सोने के पहले दूध पीना पड़ेगा, सफेद कपड़े पहनना और सात्विक दिनचर्या विश्नोई समाज की विशेषता है। वे जम्भेश्वर भगवान को मानते हैं और तंबाकू सिगरेट आदि नशे से दूर रहते हैं। हरदा के आस पास के गांवों में विश्नोईयों का बड़ा समाज कृषि पर निर्भर है।

पिछले वर्ष लायंस क्लब होशंगाबाद ने शिक्षक दिवस के अवसर पर स्थानीय पांच शिक्षकों को उनके असाधारण योगदान के लिए सम्मानित करने का निश्चय किया था। इन पांच शिक्षकों में मेरा नाम भी सम्मिलित है। मुझे आमंत्रण मिला जीवन के इस मोड़ पर समाज ने मेरी सेवाओं को मान्यता दी इस विचार से में प्रसन्न था। संतकृपा होटल के हॉल में लायंस मेम्बर और अतिथियों से हॉल भरा था। उद्‌घोषणा के बाद जब मेरा नाम सम्मान के लिए पुकारा गया तो मेरा नाम सुनते ही मंच पर बैठे सभा के अध्यक्ष लायंस सुरेश गोयल खड़े हुये और उन्होंने तेजी से मेरी ओर बढ़कर मेरे चरण स्पर्श किये और भावुक होकर कहा कि मैं हरदा से सुरेश गोयल आपका विद्यार्थी हूं आज आपको सम्मानित होते देखकर और

आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हुआ। आपने जो मुझे शिक्षा संस्कार दिये उसी के फलस्वरूप मैं आज इस स्थिति में हूं मैं आपका ऋणी हूं। पूरी सभा में सन्नाटा छा गया और एक साथ सबने तालियां बजाकर अभिवादन किया था आज शिक्षक दिवस पर गुरू शिष्य का मिलना कितना प्रेरक, आत्मीय और अनुकरणीय था। कार्यक्रम के बाद भी चर्चा में हरदा के लोगों का परस्पर प्रेम सहयोग और प्रगाढ़ आत्मीयता के भूले बिसरे प्रसंगों ने मुझे भावुक कर दिया।

मेरे समय में सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के अनेक कार्यक्रम हरदा में आयोजित होते रहे हैं। खिरवड़कर वकील साहब के बाड़े में महर्षि अरविंद के साहित्य का पुस्तकालय मैंने देखा है। इनके घर साप्ताहिक सभा होती थी उसमें रामभाऊ शास्त्री जी अरविंद के दर्शन कर अपना व्याख्यान देते थे नगर के अनेक बुद्धिजीवी इसमें शामिल होते थे। श्रीमद् भागवत गीता ज्ञान पर व्याख्यान होते थे उन्होंने अपने खर्च से गीता भवन भी बनवाया था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के अनेक कार्यक्रम नगर मे होते थे। नगर के बाल युवा एवं वृद्ध सभी उन कार्यक्रमों में सम्मिलित होते थे। जिसमें राष्ट्र भक्ति एवं सामाजिक सेवा का संदेश दिया जाता था। मेरे तीनों बेटे संघ की शाखाओं में जाते थे। गणेशोत्सव तो हरदा के उत्सवों का प्राण है। हर गली मोहल्ले में एक से बढ़कर एक गणेश प्रतिमाऐं स्थापित होती थी और सुविधानुसार दो दिन-चार दिन, अथवा दस दिनों के बाद गणेश विसर्जन किया जाता था पूरा शहर मानो गणेशमय हो जाता। दाना बाबा के गणेश, और गणेश चौक में स्थापित गणेश जी की झाँकी देखते ही बनती थी। बच्चों को इस अवधि में सीखने को बहुत मिलता। मैं हरदा में गणेश चौक में ज्यादा रहा । मेरे बेटे भी 10 दिनों तक घर पर गणेश जी की प्रतिमा बैठाते। खिलौने, पतंग के ताव,लकड़ी का बुरादा और रंगों से झांकी सजाते थे। रात्रि 8.00 बजे और सुबह 8.00 बजे हम सब मिलकर गणेश जी की पूजा आरती करते थे। इंदौर और पूना जैसा उत्साह गणेश उत्सव के दिनों में हरदा में देखने को मिलता था। आज मेरे बेटे जहाँ भी है गणेश चतुर्थी के दिन गणेश जी की प्रतिमा की स्थापना करते है और उसी विधान से आरती करते हैं और हरदा के बीतों हुए दिनों का स्मरण करते हैं। कर्तव्यबोध आज्ञापालन और पारिवारिक संस्कार जो हरदा में बच्चों को मिले हैं वे आज भी उसका निर्वहन कर रहे हैं और इसी कारण परिवार व समाज में सम्मान पा रहे हैं। आज हम दोनों अपने बेटों की उपलब्धियों से प्रसन्न व संतुष्ट हैं ।

हरदा में दशहरे के पहले गुजराती समाज द्वारा आयोजित गरबा एवं डांडिया नृत्य देखने पटेल कालोनी आरा मशीन ग्राउण्ड पर नौ दिन तक हम नियमित रूप से जाते थे उन दिनों टी.वी. नहीं थे। गुजराती समाज के युवक युवतियां रंग बिरंगी पोशाकों में सजकर आते और देवी मां की ज्योत के सामने मस्तक झुकाकर देर रात तक गरबा गीत गाते नाचते। दर्शनार्थी देर रात तक इसका आनंद उठाते घर जाने को मन नहीं करता सुमधुर लय के साथ

मीठे गुजराती हिन्दी के बोल और ढोलक की थाप से डांडिया के स्वर सारे वातावरण को उत्तेजित कर देते थे बूढ़े भी उस समूह में मिलकर नाचते और गाते। मेरे मित्र वल्लभदास लोहाना उनकी पत्नी निर्मला लोहाना और बेटी इला और रश्मि सब मिलकर नाचते तो हम उनके हर स्टेप पर ताली बजाते थे नवरात्रि के उस अद्भुत आनंद को शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। इसी तरह हरदा में बाबा रामेदव का रतजगा और विश्नोई समाज का जम्बा जम्बा के भजन अपनी विशिष्टता के साथ श्रोताओं का मन मोह लेते एक जीवंत शहर की तरह हरदा में आये दिन कार्यक्रम होते रहते, वहां समय काटना कठिन नहीं था अनेक सांस्कृतिक आयोजनों के निमंत्रण मुझे मिलते और मैं लगभग सभी कार्यक्रमों में उपस्थित रहता। इन सांस्कृतिक आयोजनों से समाज संगठित होता है और आत्मीयता को बल मिलता है। अग्रवाल महेश्वरी और मारवाड़ी समाज के तीज त्यौहार नार्मदीय ब्राम्हण समाज का गनगौर उत्सव।

हरदा की एक विशेषता है, होली का त्यौहार, सामाजिक मेल मिलाप का प्रतीक है। होली के दिन अपने अपने समाज के लोग इकट्ठे होकर रंग गुलाल खेलते थे सड़के रंग से भीग जाती खूब गीले होकर हम घर पहुंचते। तब पानी की कमी के बहाने सूखी होली खेलने का षडयंत्र नहीं था खूब गीले रंगों की होली खेली जाती। मेरे स्कूल महात्मा गांधी और सांइस स्कूल के सभी स्टाफ मेंबर समूह में इकट्ठे होकर एक साथ थोड़ी थोड़ी देर के लिए सबके घर जाते रंग खेलते और जहां पहुंचते उनके घर मीठा नमकीन जो उपलब्ध होता वह खाते और होली की शुभकामना देकर आगे बढ़ जाते। बीस वर्षों तक यह क्रम मैंने देखा है। उन दिनों मेरे घर बेसन की बर्फी और सेव ए. जी. टिकलकर के घर गुलाबजामुन मठरी और आर. एन. सक्सेना के घर गूंजे पपड़ी मिलना लगभग तय था। हमारी टोली में शिक्षक एम. ए. खान भी होते जिनके घर सम्मान के साथ शरबत और भांग मिलती। सामाजिक समरसता का ऐसा रंगीन त्यौहार और आयोजन का नायाब तरीका अब देखने को कहां मिलेगा फाग और शेरो शायरी से होली के इस रंगारंग कार्यक्रम का समापन होता। एक दूसरे से नाराजी या शिकवा शिकायत होली की आग में मानो भस्म हो जाती। नये संकल्पों के साथ जीने की इच्छा से सब सहमत होते । इस वर्ष हरदा की मिली जुली संस्कृति में भुआणा उत्सव का नाम और जुड़ गया है यह तीन दिवसीय वार्षिक उत्सव डॉ. धर्मेन्द्र पारे, और प्रोफेसर प्रेमशंकर रघुवंशी आदि के प्रयासों से तैयार हुआ है। प्रतिवर्ष शासन स्तर पर इसका आयोजन किया जायेगा इस भुआणा उत्सव से हरदा की ख्याति में चार चांद लग गये हैं ।

अध्यापन का मेरा विषय हिन्दी था । प्राय:विद्यार्थी इस विषय पर ध्यान नहीं देते हैं हिन्दी मातृभाषा जो है हिन्दी में ट्यूशन भी नहीं मिलती किंतु मैंने पूरी तैयारी से संदर्भ पुस्तकों से नोट्स बनाकर अपने भाव विचारों को एकाग्र कर हिन्दी पढ़ाई। मेरे पढ़ाई से सभी विद्यार्थी खुश होते। विद्यार्थियों की संतुष्टि से मेरा आत्मविश्वास बढ़ता गया हरदा में मेरे स्कूल से लगा

दूसरा स्कूल भी था मेरे यहां आर्ट्स विषय की पढ़ाई होती और दूसरे में विज्ञान और गणित विषय की दोनों विद्यालयों में हिन्दी के अलग अलग व्याख्याता थे। मैं अपने चौथे कालखंड में ग्यारहवीं में हिन्दी पढ़ा रहा था रस, अलंकार, उदाहरण के साथ समझा रहा था पड़ोस के विद्यालय के उसी कालखंड में श्री कटारे हिंदी पढ़ा रहे थे वे बोर्ड पर लिखते रहे तब तक उनकी क्लास के विद्यार्थी खिड़की से कूदकर मेरी क्लास में आकर बैठ गये इससे श्री कटारे की क्लास खाली हो गई और मेरी कक्षा में बैठने को जगह नहीं बची। श्री कटारे ने इस घटना की प्राचार्य से शिकायत की थी नतीजा– प्राचार्य ने कहा आप अच्छा पढ़ायेंगे तो छात्र आपकी क्लास से कूदकर दूसरी क्लास में क्यों जायेंगे ?

त्यौहारों पर विशेषकर दीपावली के दूसरे दिन और रक्षाबंधन के दूसरे दिन इष्टमित्र और रिश्तेदारों के यहां सौजन्य भेंट के लिए जाना हरदा की एक परंपरा है। इसमें अपने पन का बोध होता है। एक दूसरे को भुजरिया देने का भी रिवाज है। मुझे विश्वास है कि इन दिनों हरदा में यह परम्पराएं जारी होंगी। यह बात अलग है कि समय बहुत तेजी से बदल रहा है। जिस गली मोहल्ले से मैं निकलकर जाता जाने पहचाने लोग परस्पर अभिवादन करते थे। ऐसा लगता है कि मानो हम सब एक ही परिवार के सदस्य हैं। एक दूसरे को दिल से चाहने वाले हैं।

विद्यालय में उन दिनों बहुत अच्छी पढ़ाई होती थी प्राचार्य बहुत अनुशासित थे। और वे चाहते थे कि स्कूल की प्रार्थना से स्कूल की छुट्टी तक विद्यार्थी अनुशासन में रहे। छात्रों का परीक्षा परिणाम शत प्रतिशत रहता था। उन दिनों स्कूल की प्रार्थना देखने लायक होती थी। सीधी लाइन में एकदम शांत खडे विद्यार्थी पहले प्राचार्य का सम्बोधन और एक विद्यार्थी द्वारा समाचार वाचन और इसके बाद सरस्वती वंदना और राष्ट्रगान आज भी आंखों के सामने चित्र जैसा घूमता है। श्री विजय कुमार तिवारी (व्ही.के.टी), नारायण प्रसाद तिवारी (एन.पी.टी.), जी.एस. जोशी इन लोगों के नाम आज भी विद्यार्थी के जुबान पर है । इन आदर्श शिक्षकों ने दो पीढ़ी को पढ़ाया। मैने स्वयं इन आदरणीय शिक्षक प्राचार्यों से बहुत कुछ सीखा है मैं शिक्षक के रूप में इतना सम्मानित हुआ इसके लिए मैं एन. पी. टी., व्ही. के. टी., और जी. एस. जोशी का ऋणी हूं ।

मैं हिंदी में लिखता था गद्य में मेरी रूचि थी युवा अवस्था में एक दो गीत मैंने लिखे होंगे। मेरी याददाश्त कमजोर रही इसलिए मैंने गद्य लेखन में अधिक अभ्यास किया। आलोचना और निबंध लेखन मेरी प्रिय विधा रही हैं। हरदा के साहित्यिक कार्यक्रमों में मैं सम्मिलित होता रहा। किसी समय हरदा में तानाजी नाम के कवि गीतकार थे सफेद कुर्ता पैजामा पहनते थे मैंने उन्हें काव्य पाठ करते सुना है। भावुक किस्म के कल्पना शील कवि लंबे लंबे अपने

लिखे गीत स्वर लय के साथ गाते थे। और श्रोता मंत्रमुग्ध होकर सुनते थे तब शिवशंकर वशिष्ठ और माणिक वर्मा हिन्दी कविता में पदार्पण कर रहे थे। उन्हें ताना जी की साहित्यिक पृष्ठभूमि विरासत में मिली उन्होंने निजी तौर पर काव्य साधना आरंभ की और अच्छा लिखकर सम्मानित हुये। माणिक वर्मा गीत व गजल की अन्यतम उंचाई पर पहुंचे और हरदा का नाम रोशन किया। आज भी उनका बड़ा सम्मान है। हरदा में कवि सम्मेलन होते जिनमें प्रदेश और देश के प्रसिद्ध कवि सम्मिलित होते नगर में भी अनेक साहित्य प्रेमी थे जिनमें देना बैंक के मैनेजर गडवी साहब, लक्ष्मी प्रसाद बाजपेयी जिनके साथ मिलकर मैंने दिग्दर्शन नामक साहित्यिक संस्था गठित की थी। यह संस्था समय समय पर काव्य गोष्ठी और कवि साहित्यकारों की जयंती आयोजित करती थी धीरे धीरे इस संस्था से अनेक लोग जुड़ते गये जिनमें जिनमें डॉ. हरिकृष्ण दत्त, प्रभुशंकर शुक्ल, श्याम साकल्ले, धर्मवीर त्रिपाठी, अजातशत्रु, प्राध्यापक अंग्रेजी जो (मुंबई में रहते हुए भी हर पंद्रह दिन में हरदा आते थे) माणिक वर्मा, जब भी नई कविता लिखते तो घर से लौटते समय मुझे जरूर सुनाते। यू.एस.त्रिवेदी के घर उनकी बैठक थी। एक बार कवि और श्रोताओं से 'रूप' शीर्षक पर गीत लिखने को कहा गया। अनेक कवियों और श्रोताओं ने रूप को केन्द्र में रखकर अच्छे गीत लिखे। और निश्चित तिथि को सबने अपने अपने गीत सुनाये। मैंने भी रूप शीर्षक पर चार अंतराओं का गीत लिख डाला जिसकी दो पंक्ति इस प्रकार बनी।

देखे रूप जगत के सारे मेरा मन भरमाया,
किसका वंदन करूं हृदय से, अब तक समझ न पाया !

मुझे याद है कि इस गीत को सभी ने एक स्वर से सर्वश्रेष्ठ कहा था। इस गीत के बाद मैंने कोई गीत नहीं लिखा। चार पंक्तियां और हरदा में लिखी जो मुझे याद है –

कहीं किसी की जीत, कहीं पर हार है,
कहीं पल रहा विरह, कहीं पर प्यार है !
जीवन क्या है, धूप छांह की भाषा है,
जितने मानव, उतनी ही परिभाषा है !

इस तरह साहित्यिक वातावरण में मेरा विकास हुआ, यद्यपि मेरी रूचि प्रारंभ से ही गद्य में बनी रही। और यही कारण था कि मैंने माखनलाल चतुर्वेदी के गद्य पर पीएच.डी. करने का संकल्प लिया था। महात्मा गांधी उ.मा. विद्यालय और शासकीय कन्या उ.मा.वि. हरदा में रहते हुए मैंने हस्तलिखित पत्रिकाओं वीणा और प्रतिभा का संपादन किया जिन्हें प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। मेरे निर्देशन में तैयार नाटक 'लहू का रंग एक है' को बाल महोत्सव प्रदेश स्तर की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन दिनों हरदा के विद्यार्थियों

की कीर्ति और उपलब्धियों की गूंज पूरे प्रदेश में थी ।

जनवरी 1983 का एक प्रसंग कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय में वाद विवाद प्रतियोगिता के बाद क्विज प्रतियोगिता आरंभ हुई। इस कार्यक्रम के अध्यक्ष थे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, कांग्रेस के लोकप्रिय नेता तथा चिंतक, श्री चंपालाल सोकल, सभा मंडप में विद्यार्थियों एवं अतिथियों की संख्या ज्यादा थी, क्विज प्रतियोगिता के फायनल राउंड में कुछ कठिन प्रश्न थे जब दोनों दल उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके तो दर्शन दीर्घा में से उत्तर देने को कहा गया मेरा मंझला बेटा अनुराग जो उसी कॉलेज में बी.एससी. द्वितीय वर्ष का छात्र था उसने एक के बाद एक तीनों प्रश्नों के सटीक उत्तर दिये तो सभा में जोरदार तालियां बजी उसके पूछे गये दो प्रश्न मुझे याद है –

1) 'स्टॉर वार' किसे कहते है ?

2) 'कम्प्यूटर' क्या है (तब म.प्र. में लोगों ने कम्प्यूटर का नाम भी नहीं सुना था)?

अनुराग से संतोषजनक उत्तर सुनकर अध्यक्ष चंपालाल सोकल ने अनुराग को अपने पास बुलाया और घोषणा की कि आज के कार्यक्रम के अध्यक्ष अनुराग सीठा है इन्हीं के हाथों से आज के पुरस्कार बांटे जायेंगे क्योंकि अनुराग ने अपने सामान्य ज्ञान से तीनों प्रश्नों के सही उत्तर देकर हम सबका मन जीत लिया है। सोकल जी ने आशा व्यक्त की, कि अनुराग बड़ा होकर योग्य बनेगा उनका आशीर्वाद सच हुआ आज अनुराग डॉ. अनुराग सीठा है, जिन्होंने कम्प्यूटर साइंस में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। चंपालाल सोकल जी की दूरदृष्टि सहृदयता विनम्रता और आत्मीय सोच हरदा के लोगों की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती थी। हरदा की मिट्टी में एक चुम्बकीय आकर्षण है जो छोटे बड़े का भेद बुलाकर स्नेह के बंधन में बांधती है। सामाजिक समरसता विनम्रता और छोटों को सम्मान देना इसका इससे बड़ा उदाहरण और कहां देखने को मिलेगा। हरदा के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की प्रथम पंक्ति में प्रोफेसर महेश दत्त मिश्र का नाम आता है। हरदा के राजनीतिक इतिहास में उनका नाम अमर है। वे महात्मा गांधी के निजी सचिव भी रहे थे। उन्होंने 90 वर्ष की अवस्था तक पूरे देश में दौरा कर गांधीजी के सत्य अहिंसा और ग्राम विकास जैसे आदर्शों की अलख जगाई थी प्रोफेसर मिश्र ने हरदा और पूरे प्रदेश में देश भक्तों की एक पीढ़ी तैयार की।

यूं तो सभी प्राणियों को अपनी जन्मभूमि के प्रति असीम प्रेम होता है। ऊँट को रेगिस्तान अच्छा लगता है तो रेंडियर को बर्फीला प्रदेश, काश्मीर में रहने वाला आंतक के साये में भी काश्मीर छोड़ना नहीं चाहता और केरल के समुद्री किनारे का नाविक रोजाना जान

को जोखिम में डालकर समुद्र में मछली मारने जाता है मनुष्य का अपनी जन्म भूमि के प्रति प्रेम कम नहीं हो सकता है लेकिन अपनी कर्मभूमि की उपलब्धियों को कर्म क्षेत्र में मिले स्नेह और उपलब्धियों को वह जीवन पर्यन्त वह कैसे भूल सकता है। मेरी जन्म भूमि होशंगाबाद है जन्म यहाँ हुआ है लेकिन शिक्षा पहली क्लास की भी यहाँ नहीं हुई है पिताजी के साथ जहां उनका ट्रांसफर हुआ वहीं पढ़ता रहा। मेरे जीवन का एक बड़ा हिस्सा 20 वर्ष हरदा में व्यतीत हुआ। मैं भाग्यशाली हूँ कि मैंने शिक्षकीय जीवन की अनेक उपलब्धियां हरदा में प्राप्त की। जब-जब होशंगाबाद में मुझे कुछ मिलता है तब तब उसके लिए मैं हरदा को श्रेय देता हूं। मैंने हरदा में एक-एक दिन का सदुपयोग किया है मेरे सामने कई चुनौतियां भी थी कई बार निराशा के अंधकार ने मेरी राह रोकी लेकिन न जाने कौन सी अदृश्य शक्ति ने मुझे संघर्ष के लिए प्रेरित किया और सफलता के किनारे पर लाकर मुझे छोड़ा ।

मेरी क्लास में अनेक विद्यार्थी पढ़ते थे सबके नाम तो याद नहीं रख सकता हूँ। कुछ विद्यार्थी मिलते रहते हैं जो मेरे शिक्षण से प्रभावित थे कुछ विद्यार्थियों ने अपने जीवन में असाधारण प्रगति की संयोग से उनसे मिलना भी होता रहा है। विद्यार्थी की प्रगति से शिक्षक को गर्व होता है। एक सुयोग्य और प्रतिभावान छात्रा सुफला सूरी एम.डी. नागपुर में स्वयं का नर्सिंगहोम चलाती है, डॉ. भावना झारिया बी.ई. इलेक्ट्रॉनिक्स, पीएच.डी., प्रोफेसर शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज जबलपुर में है, डॉ. लता अग्रवाल एम.ए. पीएच.डी. हिंदी क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय भोपाल में लेक्चरर है। अनेक छात्र-छात्रायें बड़े बड़े पदों पर हैं जिनकी जानकारी मुझे किसी सूत्र से मिल जाती है। महात्मा गांधी विद्यालय के अनेक छात्र आगे बढ़े जिनमें मनोहरलाल राठौर टिमरनी से तीन बार विधायक रहे। निर्मल कुमार उपाध्याय, म.प्र.लोक सेवा आयोग इंदौर में अवरसचिव हैं। प्रकाशचंद्र जांगरे अपर कलेक्टर हैं, लखन सिंह मौर्य, अरविंद अग्रवाल, संतोष पारे, हेमराज विश्नोई, चन्द्र कुमार सर्राफ, जमना प्रसाद जैसानी जैसे हजारों विद्यार्थियों को मैंने पढ़ाया और जिनके नाम मैं कभी नहीं भूल पाता अनेक छात्र मुंबई, दिल्ली जैसे महानगरों में अपनी जीविका चला रहे हैं। मेरे अच्छे विद्यार्थीयों में रामकृष्ण पटेल कांग्रेस नेता हरदा, राजेन्द्र कुमार जैन सीमेंट के व्यापारी, चंद्रभूषण दुबे, मधुसूदन चौबे, ज्ञानेश चौबे, संतोष जपे, आदि अनेक छात्र मेरा स्मरण करते हैं। मैं इतना ही जानता हूं और कह सकता हूं कि मैंने ईमानदारी से उन्हें पढ़ाया और उन्हें जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

इनमें से अधिकांश छात्र छात्राएं आज प्रौढ़ हैं और बूढ़े होने के पायदान पर हैं छोटी बड़ी नौकरी कर रहे हैं, या खेती कर रहे हैं अथवा अपना व्यवसाय कर रहे हैं कभी कोई मिलता है तो मुझसे कहता है सर आपने हिंदी बहुत अच्छी पढ़ाई हम आपको कभी नहीं भूल सकते और फिर हरदा की आत्मीयता के किस्से। मैंने हरदा में पहला बैच 1966-67 में

पढ़ाया तब छात्र की औसत उम्र 16 वर्ष मान लें तो आज 2010 वे विद्यार्थी अठ्ठावन साठ वर्ष के होंगे। कम फीस में अनुशासनबद्ध वातावरण में सब विषयों की अच्छी पढाई होने के कारण बहुत योग्य और संस्कारवान छात्र तैयार होना उस युग की उपलब्धि कही जा सकती हैं। ए.जी. टिकलकर फिजिक्स पढ़ाते, विश्नोई सर केमेस्ट्री, सुश्री सरला सोकल अर्थशास्त्र, आर.एन. सक्सेना भूगोल, के.पी.निवासकर इतिहास, तेलंग सर नागरिक शास्त्र, रामभाऊ शास्त्री जी संस्कृत, और यू.एस. त्रिवेदी अंग्रेजी पढ़ाते थे। त्रिवेदी जी को राजनीति का अच्छा ज्ञान था वे भाषण भी अच्छा देते थे। स्टाफ में नूतन पुरातन ज्ञान विज्ञान की बातें होती या राजनैतिक हलचल की चर्चा होती। एक बौद्धिक वातावरण में हम जीते थे। ज्यादातर स्टाफ और प्राचार्य साइकिल पर स्कूल आते थे। बहुत बाद में चलकर एक दो लोगों ने स्कूटर खरीदे। हरदा में मेरे पास साइकिल थी जो मुझे शादी में मिली थी। सोलह वर्ष मैंने साइकिल चलाई। होशंगाबाद आने के बाद मैंने पहले पुराना स्कूटर खरीदा, फिर नया एक्टीवा खरीदा और आज कार मेरे पास है। मैं अपने शिक्षकीय जीवन से संतुष्ट हूँ। हरदा में मिली जुली संस्कृति के दर्शन होते है। मैंने देखा है गूजर, जाट, विश्नोई समाज, नार्मदीय ब्राह्मण सभी श्रेणी के ब्राह्मण, अग्रवाल, माहेश्वरी, जैन, गुजराती, महाराष्ट्रियन, और मुस्लिम समाज सभी लोगों से मिलकर सामाजिक समरसता का जो स्वरूप उभर कर दिखता है उसका कोई सानी नहीं है सब अपने अपने तीज त्यौहार अपने समूह में मिलकर आयोजित करते है और दूसरे समाज को भी अपने उत्सव में आमंत्रित करते हैं। हरदा की सांस्कृतिक चेतना देखने योग्य है। विभिन्न सामाजिक आयोजनों में हिन्दू मुसलमान मिलकर एकता का परिचय देते हैं। हरदा में मालवा, निमाड़, गुजरात, और महाराष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान समग्र रूप में देखने को मिलती हैं। हरदा भारत का हृदय प्रदेश है जिन दिनों में हरदा में था तब आबादी 40-50 हजार रही होगी। दो चार दिन के अंतराल से लोग एक दूसरे के सामने आते जाते और बातचीत कर लेते सबको लगता जैसे जैसे ये सब लोग मेरे अपने हैं। श्री विष्णु राजोरिया पूर्व मंत्री, मूलत: हरदा के निवासी के ठोस प्रयासों से हरदा को जिले का दर्जा मिला। अब हरदा में जिला प्रशासन है और आबादी में विस्तार हुआ है। नगर की अधोसंरचना में परिवर्तन हो रहा है लेकिन हरदा की आत्मा तो वही है।

सत्तर के दशक में अबरार मामू का भाषण सुनने योग्य होता था। भारी आवाज और उर्दू की मीठी जुबान में जब वे भाषण करते तो लोग यह अनुमान करते कि ये एक बड़ा विद्वान हमारे बीच में है वे। राणा प्रताप वार्ड में रहते थे गीता रामायण और कुरान के संदर्भों से वे अपनी बात को प्रमाणित करते थे। टॉउन हाल के पीछे रहने वाले श्री मुमताज अली (जिनके बेटे वर्तमान में इम्तियाज अली हाईकोर्ट जबलपुर में एडव्होकेट हैं) जो शांतिनिकेतन पढ़े थे। हमारे विद्यालय में 15 अगस्त, गांधी जयंती और तिलक जयंती पर उनके सारगर्भित

भाषण मंत्र मुग्ध कर देने वाले थे। विद्यार्थी और शिक्षक बड़े ध्यान से उनकी बाते सुनते थे। हरदा के बुद्धिजीवी उन दिनों विद्यार्थियों को उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित करते थे। यदि उच्चत्तम मानवीय मूल्यों से युक्त करना शिक्षक का दायित्व है तो मैंने हरदा में रहकर अपने कर्तव्यों का निर्वाह किया है बदले में हरदा के विद्यार्थियों ने मुझे बहुत मान सम्मान दिया। उन दिनों हरदा में तीन सरकारी हायर सेकेण्डरी के अलावा और कोई प्रायवेट स्कूल नहीं था। कोचिंग क्लासेस नहीं थी। गुरू शिष्य के परस्पर संबंध आदर्श थे। दोनों अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित। उन दिनों शिक्षकों का सम्मान अधिक था छात्र शिक्षकों से डरते थे।

हरदा में प्राय: छोटे बड़े व्यवसाय करने वाले सभी लोग शिक्षित हों या अशिक्षित हों अपनी स्नेहपूर्ण बातचीत से लोगों का मन जीत लेते हैं फल बेचने वाला हो, या सब्जी बेचने वाला, बर्तन मांजने वाली बाई हो या स्कूल का चपरासी, सबकी वाणी में मिठास है और एक अपनापन। हरदा में पढ़ाये मेरे बहुत से विद्यार्थी होशंगाबाद में है जब वे मुझसे मिलते हैं तो मुझे अच्छा लगता है। हरदा का अनुशासन उनकी दिनचर्या में झलकता है। एक छात्र से मेरी परसों भेंट हुई जो पिछले 20 वर्षों से यहां रहते हैं उन्होंने यहां मकान बना लिया है। उसने अपने विचार कुछ इस तरह व्यक्त किये। उसने कहा सर जो बात हरदा में है वह यहाँ कहाँ हरदा के लोग जो मन में होता है वह बोलते हैं और यहां के लोग ...... मैंने सोचा मन की शुचिता ही तो सर्वोपरि है। सच्ची वाणी से ही लोगों का दिल जीता जा सकता है आत्मीयता का दायरा बढ़ाया जा सकता है। हरदा इस मामले में अग्रणी है। होशंगाबाद में मेरे एक विद्यार्थी नामदेव किसी शासकीय दफ्तर में एकाउंटेंट हैं। उन्होंने अपनी बेटी के विवाह का निमंत्रण मुझे दिया और बड़ी विनम्रता से स्नेह भोज में आने का आग्रह किया। मैं शादी में पहुंचा। तब उन्होने हरदा के अनेक विद्यार्थियों से मेरा परिचय कराया जो उनके यहां शादी में आये थे ये नामदेव के समवयस्क थे उन सबने मेरे चरण छूकर मेरी कुशलता पूछी और सबने कहा कि आप जब हरदा में थे तब का जमाना अब लौटकर नहीं आ सकता एक परिवार जैसा वातावरण। एडव्होकेट श्री वेदप्रकाश मिश्र, श्री कमलचंद जैन, तथा डॉ. आनंद झवर को मैं कभी नहीं भूल सकता इन्हें आज भी हरदा में प्रतिष्ठा प्राप्त है। उन तीनों के बेटे मेरे तीनों बेटे क्रमश: अरूण, अनुराग, व आशीष के मित्र हैं प्यार, और आत्मीयता की परंपरा आज भी जारी है। डॉ. रवीन्द्र भागवत ने सन् 70 व 80 के दशक में मेरे बच्चों का खूब इलाज किया है। तब उनकी फीस 2/- रूपये हुआ करती थी। डॉ. रवीन्द्र भागवत रांगोली बनाने में बहुत निपुण हैं। वे कैमरे के चित्र जैसी सजीव रांगोली बनाते हैं।

भोपाल हबीबगंज नाके से मैं बस में होशंगाबाद के लिए बैठा, मेरे बाजू की सीट पर जो सज्जन बैठे थे उन्होंने अपनी याददाश्त पर जोर डालते हुए मुझसे पूछा आप सीठा जी हैं, मैंने कहा हाँ। तब उन्होंने कहा कि आपने मुझे हरदा में पढ़ाया है आप मेरे गुरू हैं आज आपसे

मुझे मिलकर बहुत खुशी हुई है और उन्होंने मुझे बिना बताये अपनी टिकिट के साथ मेरी टिकिट के पैसे भी कंडक्टर को दिये। मैंने जब उसे टोका तो उसने उत्तर दिया कुछ गुरू ऋण उतारने दीजिये आपके आशीर्वाद से मैं समर्थ हूँ। छात्र रघुवंशी की होशंगाबाद में मेडिकल की दुकान है।

हरदा के लोगों का स्नेह दुलार आतिथ्य एकाएक समाप्त नहीं हो सकता है। मेरा मानना है कि यहां के लोगों की आत्मीयता एक ऐसी अमरबेल है जिसे वर्तमान पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को विरासत में सौंपेगी। हरदा के लोगों की वाणी की मिठास आगे भी अनजाने लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती रहेगी। हरदा के वातावरण में जो ताजगी है। स्नेह की सौंधी गंध है उसे वर्षों तक भुलाया नहीं जा सकता है।

डॉ. हरिकृष्ण दत्त उन दिनों हरदा डिग्री कॉलेज में प्रिंसपल हुआ करते थे। हिन्दी में एम.ए. थे और मैं भी हिंदी पढ़ाता था इसलिए हम दोनों में मित्रता स्थापित हुई। उनकी बहन लल्लू उपाध्याय की पत्नी थी, दत्त साहब के दो भान्जे नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, और निर्मल कुमार उपाध्याय मेरे विद्यार्थी थे जो आज बड़े प्रशासनिक पदों पर है। मेरे बेटों को लल्लू उपाध्याय जी ने न. पा. मिडिल स्कूल में पढ़ाया था। दत्त साहब के सहज सरल स्वभाव ने मुझे आकर्षित किया। हम एक दूसरे से मिलते रहे उनकी मित्र मंडली में मेरी मित्रता बढ़ीं दो चार दिन के अंतराल से दत्त साहब और मैं मिला करते। अनुकूल परिस्थितियों में मैंने पहले पीएच.डी. का रजिस्ट्रेशन कराया और तीन वर्ष के परिश्रम के बाद मेरा सपना पूरा हुआ मुझे पीएच.डी. की उपाधि मिली। दत्त साहब की पीएच.डी. मेरे बाद हुई उन दिनों हरदा में शैक्षिक वातावरण उन्नत था इसके बाद तो पीएच.डी. का क्रम कई वर्षों तक चलता रहा कॉलेज के लगभग सभी व्याख्याताओं ने और हायर सेकेण्डरी स्कूल के श्री बी. एस. पंचारिया तथा आर. सी. मिश्रा ने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। हरदा का नाम प्रदेश में जाना जाने लगा।

भले ही गर्मी में सूख जाने वाली अजनाल नदी के किनारे हरदा बसा है, लेकिन हरदा के लोगों का हृदय पात्र प्रेम आत्मीयता और अपनत्व की अभिभूत कर देने वाली विशेषताओं से हर मौसम में लबालब रहता है। यहां के स्त्री पुरूष अतिथियों और अनजानों को निमंत्रण देखे दिखाई देते हैं। जीवन का संगीत सुनाते यहां के पेड़ पौधे और खेत आगन्तुकों को प्यार की बोली से संबोधित करते हैं। नगर के बीच में स्थित बड़ा मंदिर धर्म की ध्वजा थामे है और नदी के उस पार स्थित गुप्तेश्वर मंदिर शिवत्व (सत्य शिव व सुन्दर) का संदेश देता है एक क्षेत्र विशेष होते हुए भी हरदा मानो भारत की समग्रता का दर्पण है उसकी अपनी पहचान है उसका अपना एक सूत्रीय उद्घोष है।

''अकेला हूं मगर आबाद कर देता हूं वीराने''

बहुत पहले महर्षि व्यास ने कहा था, ''मैं बड़े भेद की बात तुम्हें बताता हूं..........मनुष्य से बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है ।

मनुज कि जिसमें तेज सूर्य का रूप चांद था,
तारों की छवि सिमट समाई
मनुज कि जिसमें वेग वायु का धैर्य धारा का
सागर की सी है गहराई

वस्तुत: संसार के केन्द्र में मनुष्य ही है, धर्म आध्यात्म, त्याग, तपस्या, प्रेम करूणा, परोपकार आदि सांस्कृतिक उपलब्धियां और आदर्शों के पीछे मनुष्य का चिंतन ही प्रमुख है । मनुष्य न हो तो इन उदात्त गुणों का प्रयोजन कुछ भी मायने नहीं रखता। फिर एक प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठता है, आखिर ईश्वर ने मनुष्य को इस संसार में क्यों भेजा है ? मेरी समझ में इस प्रश्न का एक उत्तर यह भी हो सकता है कि ईश्वरीय प्रेम को जगत में बांटने हेतु हमारा जन्म हुआ है, अथवा आत्मीयता और सहृदयता से लोगों का मन जीतने के लिए हमें संसार में भेजा गया है महावीर स्वामी कहते हैं कि प्रेम ही पूजा है प्रेम ही परमात्मा है, अपनी इस इच्छा को पूरी करने के लिए परमात्मा ने मानो हरदा नगर का चयन किया है और यह दायित्व हरदा को दिया है, इसलिए हरदा के लोग भाग्यवान है जो ईश्वर की इच्छा के अनुरूप सहृदयता, आत्मीयता, और सौहार्द्र बांटते हैं। पहली ही भेंट में लोगों का दिल जीत लेते हैं ।

जैसे बादलों के बीच बिजली की चमक रूक रूककर मन को उद्वेलित करती है उसी तरह हरदा की स्मृतियां तथा हरदा के लोगों की सहृदयता बार-बार हरदा आने का मौन निमंत्रण मुझे देती है और मैं प्रतिउत्तर में कहता हूं, जब तक मेरा जीवन है मुझमें शक्ति है मैं हरदा आता रहूंगा, मुझे बुलाओगे न अपनों के बीच?

सम्प्रति- 27-101, जुमेराती काली मंदिर के पीछे
होशंगाबाद म.प्र. मो. - 09425041958

मैं हरदा से हमेशा जुड़ा रहा

अनिल शुक्ल

मुझे हरदा में लगातार और लंबी अवधि तक रहने का सौभाग्य नहीं मिला क्योंकि मेरे पिता श्री शिव दर्शन शुक्ल अपने रोजगार के कारण हरदा छोड़ने को विवश हुए। वे मध्य प्रदेश शासन में खाद्य निरीक्षक थे और सेवानिवृत्ति पश्चात् अभी हमारे साथ भोपाल में निवास कर रहे हैं। अवकाश के दौरान और समय समय पर हरदा आने जाने के संदर्भ को अलग कर देखें तो मैं तीन चरण में हरदा रहा। शैशव काल में प्राथमिक शिक्षा के प्रथम दो तीन वर्ष तत्पश्चात् विभिन्न स्थानों से होते हुए वर्ष १९७३-७४ के दौरान वापिस आकर हरदा से उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूर्ण की तथा १९८० में भारतीय स्टेट बैंक की सेवा में आने के बाद वर्ष १९८१ में, ठीक जनवरी से दिसम्बर तक हरदा में एक वर्ष का सेवाकाल पूर्ण किया। कार्यालयीन कार्य से बीच बीच में कई बार हरदा आने का अवसर मिला। पारिवारिक कार्य से भी हरदा आना जाना होता रहता है यह बताते हुए प्रसन्नता है कि मानसिक रूप से हरदा से पूर्णत: पृथक कभी नहीं हुआ। प्राथमिक शिक्षा के समय निवास किराए के मकान में था जो कि भारतीय स्टेट बैंक की वर्तमान कृषि शाखा के समीप गली में दूसरा या तीसरा मकान था। आज जब कभी वहाँ से गुजरना होता है तो अतीत मानों सजीव हो उठता है। आपको साधुवाद जो आपने मुझे अतीत खंगालने का अवसर प्रदान किया। उस समय के व्यक्तियों का संदर्भ तो दे पाना संभव नहीं होगा क्योंकि आयु बहुत कम थी।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के समय पिताजी के साथ स्वयं के मकान में कुल हरदा में निवास किया। मेरे क्लास टीचर आदरणीय श्री टिकलकर जी थे जो मुझे गणित पढ़ाते थे, प्राचार्य थे श्री वी.के.तिवारी। उस वर्ष स्कूल की क्रिकेट टीम का सदस्य भी रहा। स्कूल का

माहौल अत्यंत आत्मीयता भरा और पूर्ण संरक्षा प्रदान करने वाला था। एक साथी श्री अजय विश्नोई हरदा पॉलीटेक्निक कॉलेज में ही प्रोफेसर नियुक्त हुए थे उनके साथ कुछ शुरूआती मुलाकातें ही संभव हो पाई फिर कार्यालयीन व्यस्तता में उलझते चले गए। मानस पटल में मेरा बचपन तथा हरदा में बीते क्षण सदैव ताजा रहते है। वहाँ का सांस्कृतिक माहौल और कस्बाई अपनत्व महानगरीय संस्कृति में ढूंढे नहीं मिलता। वस्तुत: अतीत की याद वर्तमान में उस तत्व के अभाव का ही प्रमाण है। यों तो हर व्यक्ति अपने अपने अनुभवों को लेकर ऐसी अनुभूति से अवश्य गुजरता होगा, पर अपनी अनुभूति अपने लिए सर्वाधिक महत्व की होती है क्योंकि व्यक्ति उसी में जीता है, उसी से प्रेरणा पाता है। हरदा की छोटी सी भौगोलिक सीमा, अमूमन प्रत्येक व्यक्ति का आपस में परिचित होना, बिना ज्यादा समय गंवाए जरा सी सूचना पर कहीं भी एकत्र हो सकना, एक दूसरे की मदद का जज्बा ये कुछ ऐसी बातें हैं जिनका अभाव ही देश और परदेश का फर्क रेखांकित करता है और हरदा को जेहन में हमेशा बनाए रखने का एक ठोस कारण है।

आज यदि मैं हरदा से बाहर रहकर दक्षता पूर्वक अपना कार्य संपन्न कर पा रहा हूँ तो वे संस्कार और समझ मुझे वहाँ के परिवेश और गुरूजनों तथा अपने बुजुर्गों से ही मिली। मुझे कहने में कोई संकोच नहीं कि आज इंसान तरक्की की चाह में महानगरीय मरीचिका में खो चुका है। उसे मालूम ही नहीं कि वह क्या हासिल करने का प्रयास कर रहा है। उसकी तथाकथित तरक्की किन मूल्यों को अदा करने पर मिल रही है। वह तब समझ में आता है जब किसी ग्रामीण परिवेश से आए व्यक्ति की भावी संतान प्रश्न करती है पापा गेंहूँ का झाड़ कैसा होता है ? यह प्रश्न ग्रामीण के संदर्भ में ज्यादा पीड़ादायक इस संदर्भ में है कि उसके पास तो उन्हें यह सब बतलाने के साधन और उपाय थे किन्तु उसने तरक्की को तबज्जो दी। अज्ञेय जी की पंक्तियाँ जहाँ प्रासंगिक बन पड़ी हैं, वे सांप से संवाद करते हुए कहते हैं

साँप ?
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ, उत्तर दोगे ?
तब कैसे सीखा डसना, विष कहाँ पाया ?

यह सच है व्यक्ति जीवन के मूल से कट कर जीवन सार्थक नहीं बना सकता सफ ल भले ही हो जाए। आज सफलता के शिखर पर तो अनेक दिखेंगे किन्तु बिरले ही होंगे जिनके मन में सार्थक जीवन की तमन्ना आकार लेती हो। अपनी माटी, अपनी पहचान, अपनी मौलिकता प्राकृतिक जीवन का सामीप्य, संवेदनाओं का मूल्य समझने वाले लोगो का

साथ मेरी लघुता के बाद भी सामाजिक स्वीकार्यता ये कुछ बड़े कारण हैं जिनके लिए शब्द बौने साबित हो जाते हैं। वजह है कि मैं हमेशा हरदा से जुड़ा रहा, जुड़ा हूँ और जुड़ा रहना चाहूँगा।

हरदा के समीप ग्राम खिड़कीवाला में पैतृक खेती बाड़ी है जिसे परिवारजन संभाल रहे हैं यदि शरीर सक्षम रहा तो जीवन के सांध्यकाल के लिए वहाँ संभावनाए तलाशूंगा। अपनी मातृभूमि को प्रणाम के साथ ही अपने शहर वासियों को मेरा प्रणाम।

ई- 4-229, अरेरा कालोनी, भोपाल

हरदा, पुनः लौटूंगा

प्रकाश जांगरे

हरदा मेरी जन्मस्थली है। मैं जन्म से, शासकीय सेवा में आने ३१ अक्टूबर १९८५ तक हरदा रहा। नरसिंह वार्ड में नदी किनारे रहते हुए पला एवं बड़ा हुआ। मेरी प्राथमिक शिक्षा मानपुरा एवं माध्यमिक शिक्षा नगर पालिका मिडिल स्कूल एवं हायर सेकेण्डरी शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्कूल क्रमांक १ में हुई। स्कूली शिक्षा के दौरान अंग्रेजी विषय के शिक्षक यादव सर एवं प्राचार्य श्री एन.पी.तिवारी का व्यक्तित्व मुझे आज भी स्मरण है। मैं स्कूली शिक्षा के दौरान स्कूल का जनरल केप्टिन था। हॉकी एवं खो-खो टीम का कप्तान रहा। सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा राजस्थानी नृत्य में भी भाग लेता रहा। मुझे इसके लिए श्री सक्सेना सर का मार्गदर्शन मिलता रहा। हॉयर सेकेण्डरी स्कूल में मेरे व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हुआ। यही जीवन में उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करन का जज्बा पैदा हुआ, जो मेरे केरियर का आधार बना। शहर में हर प्रकार की गतिविधियाँ होती रहती थीं। मुझे याद है उस समय ८० के दशक में हरदा कबड्डी की टीम पूरे देश में प्रसिद्ध रही। हरदा का अपना गरिमामय इतिहास है। हरदा आपसी मिलनसारिता एवं भाईचारे के लिए मेरी स्मृति में छाया रहता है। हरदा का स्मरण हमेशा रहता है। कोई हरदा का वाशिंदा मिलता है तो मुझे भाईचारे की अनुभूति होती है। मैं हरदा का ही हूँ, यह उसी तरह शाश्वत है जैसे सूर्य पूर्व से उदय होता है। मैं दो स्मृतियाँ रेखांकित करता हूँ, जिसके कारण हरदा का स्मरण बना रहता है:- जब आप अध्ययन करते हैं तो आपको कई लेखकों की कई प्रकार की किताबों की जरूरत पड़ती है, हम सभी खरीद नहीं सकते। मुझे तिवारी स्टोर्स, घंटाघर चौक से श्री उमा तिवारी से यह सुविधा रही कि चाहे सामान्य ज्ञान की कोई किताब हो या किसी विषय से संबंधित। मैं पढ़ने के लिए ले जा सकता था और पढ़कर वापस कर सकता था। इसी तरह

कालेज में प्रोफेसर श्री ओ. पी. मल्होत्रा मुझे सभी इतिहास की किताबें पढ़ने को देते रहे। इन दोनों से यह सुविधा कालेज तक ही उपलब्ध नहीं हुई बल्कि प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने तक भी इनका सहयोग मिलता रहा जो मैं कभी नहीं भूल सकता। यह हरदा की मिट्टी का ही प्रताप था, जहां ऐसी शख्सियत रहीं है। कॉलेज में पहुँचकर मेरी रूचि चुनाव आदि की राजनीति करने की ओर बढ़ गयी। एक बार अर्थशास्त्र के प्रोफेसर की क्लास तीन दिन तक नहीं लगने दी, याने कदम दूसरी ओर भटकने लगे तब आदरणीय प्रोफेसर श्री ओ. पी. मलहोत्रा ने जिस आत्मीयता से समझाईश दी थी वह मैं नहीं भूला हूँ। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हरदा में आत्मीयता का व्यक्तिगत रूप से ध्यान रखने का गुण है। हरदा में नदी किनारे बनी सपील दीवार, घंटाघर के पास से गया अंडरग्राउण्ड नाला, ऐसा घंटाघर, मैंने अन्य किसी शहर में नहीं देखा जो आज भी हरदा की याद ताजा करता है। सिर्फ रोजी-रोटी ही वजह रही जिसके कारण हरदा से अन्यत्र जाना पड़ा। पढ़ाई के बाद यही विचार रहा कि नौकरी करना है। पर सच कहें तो नौकरी में बंध कर रह गये।

कभी कभी ख़्याल आता है कि हरदा में ही रहकर कुछ किया होता तो और ज्यादा कुछ कर पाते। हरदा न छोड़ने का जज्बा मेरे मित्र आनंद नुनिहार में देखा है जिसने बैंक में नौकरी तो की किन्तु हरदा न छूटने पाये इस कारण पदोन्नति भी नहीं ली। व्यक्तित्व का विकास तो हरदा में ही हुआ संस्कार वहीं पड़े। ऐसा नहीं है कि व्यक्तित्व का विस्तार नहीं हो पा रहा था। मैंने जैसा व्यक्ति बनना चाहा वैसा हरदा ने ही बनाया है। जीविका के लिए हरदा छूटा। परिवार में कोई व्यवसाय था नहीं। सभी का मार्गदर्शन यही मिला कि नौकरी कर लो। ठीक ठाक नौकरी मिल गयी। अपना शहर हरदा छूट गया। एक छोटा भाई संजय है। आनंद नुनिहार, राकेश पारे, रामचन्द्र अग्रवाल आदि मेरे मित्र हैं जो हरदा से आज भी जुड़े हुए हैं। इन सभी के अपनत्व के कारण हरदा आना-जाना बना रहता है।

मेरी दिली इच्छा है कि, हरदा वापस लौटकर वहीं बसे। मेरी इच्छा है कि मैं हरदा में शैक्षणिक संस्थाएं प्रारंभ करूं। यदि ऐसा कर पाता हूँ तो हरदा में पुनः लौटूंगा। मैं आज भी हरदा का कट्टर ग्रुपिज्म नहीं भुला पाया हूँ जब हरदा में शक्ति प्रदर्शन के तीन केन्द्र थे गोलापुरा, खेड़ीपुरा और कुलहरदा। हरदा में ७० एवं ८० के दशक में जब मैं किशोर एवं युवा अवस्था में था। सांस्कृतिक परिवेश सौहार्द्रपूर्ण था। गणेशोत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता था। जिस गरबा नृत्य की आज मध्यप्रदेश में धूम होती है उस समय भी जो आरा मशीन वाला क्षेत्र है, उसमें गरबा हुआ करता था। नवदुर्गा के समय कव्वाली के भी कार्यक्रम हुआ करते थे। हरदा का विकास हुआ है। मैं शासकीय सेवा के दौरान हरदा जैसे ८-१० कस्बों में रहा हूँ। उनमें तुलना करने पर यह पाता हूँ कि हरदा का विकास हुआ है। बस थोड़ा सा यह लगता है कि शैक्षणिक संस्थाएँ अच्छे स्कूल एवं इंजीनियरिंग कालेज हरदा में और होना

चाहिए। स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी हरदा आये थे। यह हरदा वासियों के लिए गर्व की बात है। मैं चाहता हूँ जिस तरह तवा नहर आने के बाद यहां के ग्रामीणों का किसानों का विकास हुआ है उसी तरह गैर किसान गरीबों का विकास हो जिसके लिए कृषि आधारित उद्योग एवं अन्य उद्योग लगने चाहिए। शैक्षणिक गतिविधियां यथा इंजीनियरिंग, मैडिकल कॉलेज खुलने चाहिए।

२१ पारिका फेस २ चूना भट्टी, भोपाल

उलझन में हूँ, कहाँ से शुरू करूँ ?

डॉ. सतीश जैन

हरदा से १०+२ उत्तीर्ण होते ही, १ अप्रैल १९६९ को भोपाल आ गया था, किन्तु आज भी हरदा पहुँचने की ललक सदैव बनी रहती हैं। अवसर मिलते ही अपने घर पहुँच जाता हूँ, और वह शांत, सरल और आसान नगर, आसान इसलिए कि घर से निकलो, तो पाँच काम करके घर लौटो। हरदा पहुँचकर, आँखें ढूंढती हैं, घण्टाघर के पास बिजली खम्बों से टिका, आज की खबर वाला ब्लेक बोर्ड। यादों में भरे होते हैं - प्रताप टॉकीज के सामने, नगर का स्वयं का अपना चौबीस घंटे चालू बिजलीघर, सस्ती होने के साथ नगर में कभी बिजली गुल नहीं होती थी। कोई कटौती का भी सामना नगर को नहीं करना पड़ता था।

एक निराला, अद्‌भुत व्यक्ति बाबूलाल न कभी वैसा देखा न कभी सुना। जिनके बारे में अधिक वे ही जानते हैं, जिन्होंने उसे देखा-सुना हैं। वर्णन मुश्किल है, पर घंटाघर की वह जगह अब सूनी लगती हैं उनके बगैर, ऐसा कोई मिले जो यह बताए कि श्री बाबूलालजी क्या कहते थे? उनके वाक्य क्या होते थे ? उन्हें मैं प्रणाम करना चाहूँगा। जैन धर्मशाला के सामने थियेटर हुआ करता था, जहाँ आज स्टेट बैंक हैं। उस विशाल थियेटर में कभी नाटकों के मंचन हुआ करते थे, काश हम उसे चलता देख पाते। हम बचपन मे समय एक संस्था से जुड़े थे, बी.वी.एम. उसका अंत कैसे हुआ याद नहीं। पर क्लब से हमें बहुत शिक्षाऐं मिली।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ टाउन हॉल, शाखा, गुलजार भवन, चित्रा-इमली, गुप्तेश्वर मंदिर, पंपीजन, फिदा हुसैन और महावीर की कुल्फी। विगत प्रवास पर आँखें अटक गईं, हमारी बचपन की कटिंग कराने की दुकान पर, नदी की सपील से लगी हुई, वैसी की वैसी

दुकान के ऊपर सीमेन्ट से उकरे दो हिरण और अभी भी वैसे ही चलता हुआ अखाड़ा नदी किनारे, जहाँ कभी हमने भी दंड-बैठक, कुश्ती लड़ी थी। रोचक यह है कि शादी के बाद हम अपने नगर में पत्नि के साथ प्रताप टॉकीज में पिक्चर देखने गये थे, तब हमारी जेब कट गयी थी। साठ साल का होने जा रहा हूँ, बहुत ज्ञान बघारने की आदत तो है नहीं किन्तु जिक्र करना चाहता हूँ उन दो सीखों का जो मेरे मन-मस्तिष्क में बालपन में छप गई थीं और जीवन जीने में सदैव उनका प्रभाव रहा।

पहली बार हाई स्कूल में लायब्रेरी का सुख मिला। लाइन में लगकर पुस्तकें इश्यू हुई, हमारे को मिली बच्चों की देखभाल कैसे करें ? क्या कर सकते थे, ले आये, पढ़ना भी जरूरी था, पढ़ा, चार वर्ष की आयु के बालक को राजकुमार जैसा रक्खो, मन से खूब प्यार करो ऊपर से एकदम कड़क, बड़ा होने पर दोस्त का व्यवहार आवश्यक है। हाजी-जी की दुकान के पास शुक्रवारा प्राइमरी स्कूल जाते थे। घर से साथियों की टोली में, स्लेट पर शुद्ध लेख का होमवर्क करते हुए। रोज देखा करते थे, नगर सेठ का लोहे की छड़ों वाला आवास जो आज भी वैसा ही है। नगर सेठ विशाल आराम कुर्सी पर पान खाते बैठे होते थे, पास में सफेद-छक गादी-तकियों पर बैठे बालक-बालिका। वे भी चमकीले सफेद साफ वस्त्र पहने हुए। प्राइमरी का मैं छात्र बैचेन रहता था, यह जानने के लिए कि ये बच्चे किस स्कूल में पढ़ते हैं ? मालूम न हुआ, कभी पूछने की हिम्मत कहाँ थी। देखा था नगर सेठ का जलवा, उनकी हैसियत, एक बार हम हमारे दादा-नाना के गाँव, भादूगाँव में छुट्टियाँ बिता रहे थे। गाँव के सरपंचजी के बाड़े में एक दुलार पर उन्हे बैठे देखा, गाँव के सेठ हमारे नाना जमीन पर बैठे थे, सामने टिमरनी थाने के एक थानेदार अटेंशन की मुद्रा मे डांट खा रहे थे। हम निक्कर पहने बच्चों के लिए तमाशे का हिस्सा थे। मिडिल स्कूल से हाई स्कूल के लिए निकलते जब मन में उथल-पुथल थी, स्काईलेब गिरने वाला हैं, दुनिया समाप्त हो जाएगी तो फिर संस्कृत और अंग्रेजी के निबंध हम क्यों याद करें ? हमें मालूम हुआ कि गुड्डे-गुड़िया बोल नहीं सकते हैं - उन्हे घर पर ही कोई पढ़ाने आते हैं। उस समय का गुड्डा, अब सभ्रांत व्यक्ति, कारोबार में व्यस्त दिखाई देते हैं।

१३३-सी , एच.आई.जी. विद्यानगर, भोपाल

मेरे शहर हरदा का पर्यावरण

एस. एच. गुहा

मैं एक निम्न मध्यम श्रेणी के शुद्ध संस्कारी शाकाहारी ब्राह्मण परिवार में १२ जून १९४१ को, पैदा हुआ। कहते है प्रकृति और वातावरण भी सीखने और ज्ञान संग्रहण में गुरू का कार्य करते हैं। इन्हें समझने की क्षमता अपनी अपनी रूचि पर निर्भर होती है। नासमझी की उस उम्र में गली मुहल्लों में खेलते हुए बचपन में हरदा शहर में बहुत कुछ देखा था, पर समझ में तब आया जब वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन किया, भारत के अन्य शहरों से तुलना की। मैनें पाया कि पर्यावरण संतुलन में मेरा शहर हरदा, मध्यप्रदेश के अन्य छोटे बड़े शहरों से श्रेष्ठ था। प्राचीन हरदा शहर आगरा से, बुरहानपुर जोड़ने वाले, मुगल सम्राट शाहजहाँ के समय के मार्ग पर बसा है। हरदा को भारत में सर्व प्रथम बम्बई से इटारसी तक बने दुहरी लाईन वाले रेल मार्ग पर स्थित होने का भी श्रेय है। मैंने हरदा में कुछ तो ऐसी व्यवस्थाएं देखी जो अन्य शहरों में नहीं मिली। यहाँ की विशेषताओं में वायु और वायु से होने वाली बीमारियों और हानियों को कमतर करने के लिये हरदा शहर की बसाहट और हरियाली की सघनता प्रमुख थी।

आज जिस टाउन प्लानिंग का महत्व महसूस कर शासन ने प्रत्येक बसाहट के लिये टाउन प्लानिंग आवश्यक कर दिया है। वह टाउन प्लानिंग के नियमों के आधार पर हरदा करीब १५० साल पहिले बसाया गया था। पूरा शहर आयताकार आधार में, तत्कालीन आवश्यकतानुसार चौड़ी चौड़ी सडकों के जाल की संरचना में बसाया गया था। पूरे शहर में घरों के सामने ओटले थे। जो वस्तुत: तत्कालीन आवश्यकतानुसार सड़कों के किनारे सुरक्षित फुटपाथ थे, जिनका उपयोग न होने या उपयोग की समझ न होने के कारण शनैः शनैः ओटले बना लिये गये थे। सड़कों के किनारे जहाँ भवन निर्माण नहीं थे, वहां फलदार,

छायादार, वृक्ष प्रमुखता से लगाये गये थे। शहर की दो मुख्य सड़कें आदि से अंत तक याने अजनाल नदी पर पश्चिम में स्थित शमशान सोनापुर से स्टेशन तक आवागमन की सुगमता के लिये बनाई गई थी। शहर के मुख्य बाजार की स्थिति और पिछड़ी बस्ती खेड़ीपुरा, हर वर्ष अजनाल नदी की बाढ़ की चपेट में एक से अधिक बार आकर बर्बाद हो जाते थे। इसका स्थाई हल लगभग एक मील लम्बी दीवार बनाकर किया गया। इस दीवार को स्थानीय तौर पर सपील कहते है, जिसकी ऊँचाई नदी की अधिकतम बाढ़ से अधिक है। अजनाल नदी और टिमरन नदी के कबीटघाट पर मिलने से बाढ़ का भयानक स्वरूप नदी के घुमाव याने घंटाघर के पश्चिम से नार्मदीय धर्मशाला तक हुआ करता था,जिसके प्रभाव से इस क्षेत्र और सपील को बचाने के लिये सुन्दर घाटों का निर्माण किया गया। कई शहरों को बाढ़ से प्रति वर्ष नुकसान उठाते देखा पर यह व्यवस्था मैंने कहीं नही देखी। आज यह घाट करोड़ों रूपये खर्च करने पर भी बनना संभव नही है। सपील और टिमरन नदी के बीच का बाढ़ के अलावा सुरक्षित मैदानी भाग, जत्रा पड़ाव मैदान कहलाता है।

हरदा में स्वच्छ जल प्रदाय शहर के दक्षिण में टिमरन नदी का रपटा पार कर रेल्वे लाईन पार करने को एक मात्र अण्डर ब्रिज होते हुए, अजनाल नदी पर स्थित पंपिन्जन जाता है। जहां से शहर के उत्तर में बनी लोहे की टंकी में पानी भरा जाकर दिन में दो बार पूरे शहर को जल प्रदाय होता है। यह पानी पीने योग्य हो, इस लिये अजनाल नदी में भूमिगत, अंदर से प्राकृतिक रूप से पानी को छानते हुए आपस में मिले कुए थे।

हरदा में साफ सफाई, गंदे पानी का निकास के लिये उत्तम ढ़ाल वाली विशेष तरीके से बनाई गई मुरम वाली सड़कों के दोनो ओर नालियां थीं, जिनमें कभी गंदगी या पानी भरा नहीं देखा। पौ फटने के पूर्व नियमित साफ होती नालियां और सड़कें। कुछ दूरी बहकर अण्डर ग्राउण्ड होता नालियों का गंदा पानी ले जाने वाली गटर का जाल। पूरे शहर में कहीं भी गंदे पानी के जमाव न होने से मच्छर देखने को नहीं मिलते थे। कोई, टी.बी., मलेरिया जैसी बीमारी देखने सुनने को नहीं मिलती थी, जबकि सतपुड़ा अंचल एवं पड़ौसी जिला बैतूल इन महामारियों से पीड़ित होकर बैड क्लाइमेट झोन में थे। हरदा के बाजार, पाठशालाएँ, कसाईघर, मछली बाजार, शमशान भी सुनियोजित, सुरक्षित स्थानों पर बनाए गये। शमशान में व्यवस्थाएँ और शवदाह स्थल आज की आधुनिक तकनीक के उदाहरण है।

रात्रि में, अंधेरे में, कीड़े काँटे, चोर उच्चकों से बचने और नागरिकों के सुरक्षित आवागमन के लिये नगर पालिका की ओर से सड़कों पर बिजली के प्रकाशमान तथा गलियों में मशालची के तेल के लैम्प जलाकर उजाला करते थे। शहर में ही क्रूड आईल से चलने वाला, पारसी का बिजली घर था। जिसके धुएँ को वैज्ञानिक ढंग से प्रदूषण फैलाने से रोकने

योग्य चिमनी से नियंत्रित किया गया था। तब यह व्यवस्था खण्डवा, भोपाल, जबलपुर, इंदौर, रायपुर नागपुर जैसे बडे नगरों में ही थी।

बचपन गढ़ीपुरा और आसपास के मुहल्लों .. खेडीपुरा, अन्नापुरा, गोलापुरा में गोटी–कौढ़ी, भौंरा, गिल्ली डण्डा खेल–खेल कर बीता। पाश्चात्य खेल फुटवाल, वॉलीवाल आदि हाई स्कूल में खेले। श्रीराम व्यायामशाला, बजरंग व्यायामशाला, हनुमान व्यायामशाला आदि, अनेक व्यायामशालाएँ, कसरत, कुश्ती, मलखंब के नि:शुल्क प्रशिक्षण के लिये थी ये किशोरों और युवाओं को शरीर पुष्ठ बनाने को उत्साहित करती थी। अजनाल नदी में बनी ठोकर पानी रोक कर, पानी की विभिन्न प्रतियोगिताओं के आयोजन के लिये बनाई गई थी। हरदा के नागरिकों में सादा खान पान की प्रवृत्ति थी। नागरिकों में सर्वधर्म सम्मान, भाईचारा, स्वास्थ्य व शिक्षा के प्रति लगाव था। शहरवासियों में दुर्गुण होंगे पर वह व्यसन चोरी छिपे करते थे। मैंने किसी मदमस्त को खुलेआम घूमते हुए नहीं देखा।

मैं जन्म १२ जून १९४१ से, ३० जून १९५८ तक हरदा में रहा। मुझे इतनी विशेषताओं वाले हरदा पर सदा गर्व रहा। पूरे भारत में बसे मेरे मित्र मुझे श्रीहरी गुहा हरदा वाला नाम से जानते है। यद्यपि शहर में कई बदलाव हो गये है, फिर भी आज भी जब जब हरदा आता हूँ बचपन के दिन ताजे हो जाते है।

३ श्रीनगर कॉलोनी, इंदौर रोड, खण्डवा

हरदा मेरे रोम रोम में

माणिक वर्मा

११-०९-२०१०

आत्मीय भाई ज्ञानेश,

आत्मीय स्मरण

आपका कृपा-पत्र श्रद्धेय मूलाराम जोशी जी द्वारा प्राप्त हुआ, पत्र पढ़कर अभिभूत हूं। आप हरदा, जो कि मेरे रोम-रोम में बसा है, पर केन्द्रित एक स्मारिका के प्रकाशन की योजना बना रहे हैं। आपके इस मौलिक प्रयास को मेरा शत्-शत् नमन्।

ज्ञानेश भाई, इस सच्चाई को उद्घाटित कर अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है कि मैं भोपाल में जरूर हूँ, पर आत्मा से आज भी हरदा की पावन धरती पर अपने अस्तित्व का एहसास कर अपने को गौरवान्वित महसूस करता हूँ। मैं सहपरिवार 1968 से हरदा में हूँ। पॉवर हाऊस के पीछे शिवाजी-गंज (अन्नापुरा) में मैं निवास कर रहा हूँ, कागजी शिक्षा मैंने खण्डवा से ली। पारिवारिक कारणों से विचलित होकर मैं खण्डवा से हरदा कुछ बेहद आत्मीय-जनों के कारण आया। जिनकी स्मृति आज भी श्री नर्मदाप्रसादजी उपाध्याय और श्रद्धेय प्रेमशंकर जी रघुवंशी के रूप में मेरे मानस पटल पर प्रतिबिंबित है। हरदा की आत्मीयता, सहयोग और सबके प्रति अगाध निष्ठा एवं प्रेम का भाव ही कला संस्कृति और साहित्य के रूप में मुझे सदैव आंदोलित करता है। हरदा, हृदय की नगरी है, और प्रेम ही उसका आलंबन है। समय ने कई-कई चोले बदले, यहां तक कि अपनी संवदेन-शीलता को नीलाम तक किया, परन्तु मेरे हरदा ने, हर प्रलोभन को ठुकरा-कर अपने पूर्वजों की विरासत को आज तक बचाये रखा है। इस विरासत का नाम है प्रेम, जो सड़कों पर चलते फिरते ठोकरें खाते, बुजुर्गों के रूप में जीवित है।

यह प्रश्न मेरे संदर्भ में गलत है कि मैं हरदा से दूर हूँ। जिसका स्पंदन रोम-रोम को घेरे हैं मैं उससे दूर कैसे रह सकता हूँ। मैं ईमानदारी से कह सकता हूँ कि मैं हरदा का वाशिंदा था, हूँ और अपनी अंतिम सांस तक रहूँगा। खण्डवा ने मुझे जन्म दिया और हरदा ने मुझे संस्कारित किया। जन्म बेशक मृत्यु में तब्दील हो जाये, परन्तु संस्कार मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा का अभिन्न अंग बनकर जीवित रहते हैं।

मेरे हरदा छोड़ने का कारण, पुत्रों द्वारा स्थापित 'माणिक वर्मा पुरस्कार' एवं वार्षिक पत्रिका थी, जिसके प्रकाशन एवं मीडिया की सुविधा के लिये हमें बार-बार हरदा से भोपाल आना पड़ता था। एक घर भोपाल में पहले से ही था, अत: हम यहां शिफ्ट हो गये। मेरे हरदा ने मुझे अन्तर्राष्ट्रीय छवि प्रदान की फिर मैं कैसे कह दूं कि हरदा में व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पा रहा था। आज जो कुछ भी पहचान देश-विदेश में है, उसका सारा श्रेय हरदा और सिर्फ हरदा को ही है। न तो मैने हरदा छोड़ा है और न ही ऐसी कोई विवशता ही थी। बार-बार की देश विदेश की यात्राओं के कारण आवागमन की सुविधायें ही हरदा से आने का कारण बना। हरदा जब भी मुझे आवाज देता है, तुरंत चल पड़ता हूँ, उसकी माटी को शिरोधार्य करने।

अपनी जड़ों की तरफ लौटना किसे अच्छा नही लगता, मैं भी निश्चित अपने शहर लौटूंगा, लगातार आवागमन तो बना ही रहता है इसलिये वापिस न लौटने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। हरदा ने सदैव मुझे अपार स्नेह व आशीर्वाद दिया, जिसके कारण मेरे साथ कभी कोई अप्रिय घटना ही नहीं घटी। मैनें अपने ज्येष्ठ पुत्र को कैंसरग्रस्त हो जाने के कारण खोया जरूर, मेरी इकलौती बेटी की शादी में पूरे शहर ने जिस पारिवारिकता का परिचय दिया उसे मैं कभी नही भूल सकता। हरदा सदैव से अपनी सांस्कृतिक एवं साहित्य विरासतों के कारण पूरे देश में जाना जाता रहा है। पहले भी हरदा कला, साहित्य एवं सांस्कृतिक रूप से मालामाल था, वैसा ही आज भी है। श्री प्रेमशंकर रघुवंशी, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, धर्मेन्द्र पारे आदि के अमूल्य योगदान के कारण हरदा समृद्ध है। ज्ञानेश चौबे के रूप में एक और सुनहरी कड़ी इसमें जुड़ने जा रही है।

मेरा मानना है कि कवि, साहित्यकार, रंगकर्मी, शिक्षक समाज के निरीह प्राणी है, जिनके हाथ में न तो सत्ता होती है और न ही कोई 'पॉवर', इसीलिए ये लोग कभी विकास में बाधक नहीं बनतें। केवल राजनीति ही अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं के कारण, नौकरशाहों से सांठ-गांठ कर विकास विरोधी साबित होती रही है। यदि देश का सचमुच विकास हुआ तो फिर इनका विकास कैसे होगा ? यह प्रजातंत्र अमीरों का प्रजातंत्र है, इसकी पहली शर्त है अमीर से अमीर होना, इसी शर्त को पूरा करने की होड़ में जनता का हर सेवक लगा हुआ

है। जहां तक हरदा के विकास में बाधक का प्रश्न है, तो मेरे प्रिय ज्ञानेश, हरदा हिन्दुस्तान से बाहर थोड़े ही है। जिनका विकास नहीं होना था उनका विकास हुआ, जिनका होना था, उनका नहीं हुआ, वो महेशदत्त मिश्रा बनकर रह गये।

जब देश स्वाधीन हुआ तब मैं खण्डवा में था, मात्र 6 वर्ष का इसलिए कुछ याद नहीं। पर जब मैं हरदा आया, जनता का आजादी से मोहभंग हो चुका था। मैंने आधी दुनिया घूमकर देखी है, मैं जिस देश में भी गया मैनें उस देश के लोगों में मेरे भारत के प्रति बेहद प्यार पाया, क्योंकि विदेशियों की नजर में आज भी भारतीय बेहद ईमानदार, शरीफ, सभ्य व निष्ठावान मानें जाते हैं। यही बात मैं अपने हरदा की उत्कृष्ट प्रतिभाओं में देखना चाहता हूँ, वे विश्वपरिदृश्य में हर जगह अपनीं उपस्थिति दर्ज करायें।

प्रिय ज्ञानेश। मैं विदेशों में जहां गया, लोगों ने मेरे काव्य-पाठ के बाद पूछा आप कहां के है ? मैंने जवाब दिया 'हरदा' का मेरे बहाने ही सही, हरदा लोगों को याद है ये मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। और इस पर गर्वित होकर मेरे शहर की प्रतिभाओं तुमसे कहता हूँ -

मुझसे जो भी बन पड़ा, मैनें किया
मुझसे बेहतर जो बनें, वो तुम करो।

तुम्हारा
माणिक वर्मा

मेरे पुरखों का शहर

दिनकर शुक्ला

प्रिय ज्ञानेश जी,

आपका पत्र यथा समय मिल गया था। पत्रोत्तर में बिलंब की वजह यह पसोपेश रहा है कि हरदा के अपने अनुभव बाँटने के लिए मेरे पास विशेष स्मृतियाँ नहीं हैं। हांलाकि यह मेरे पुरखों का शहर है किन्तु मेरे आदरणीय पिताजी की नौकरी बाहर थी अतः यहाँ तभी आया जबकि माता-पिता का आकस्मिक निधन हो गया। मुझे याद है जब पूरे भारत के साथ-साथ हरदा में भी जिन दिनों स्वतंत्रता प्राप्ति का जश्न मन रहा था तब हम हरदा आए। यहाँ मिडिल स्कूल में दाखिला लिया और अगले पाँच सालों में हाईस्कूल के रास्ते मेट्रिक की पढ़ाई पूरी की। परीक्षा होते ही मुझे नौकरी की जुगत में हरदा छोड़ना पड़ा।

हरदा मैं मात्र पाँच साल रहा, यहाँ से मैंने सातवीं से ग्यारहवीं की पढ़ाई पूरी की। मेरे सहपाठियों में डा. गोकुलदास अग्रवाल, गुरूदेव सिंह (जो कनाडा में बस गए हैं), रामदास जोशी, मदनमोहन जोशी, वेदप्रकाश मिश्र, सरला सोकल, मदनमोहन सकरगाएँ, महेश दीवान, बृजमोहन सराफ, महेशदत्त गार्गव, अनंत दुबे, राधेश्याम भारद्वाज आदि थे। सन् 1952 जून में मेट्रिक की पढ़ाई के साथ ही हरदा जो छूटा तो अब वहाँ यदा-कदा ही जाना होता है।

हरदा का जब ख्याल आता है तो अजनाल बरबस दिमाग में कौंध जाती है। पैड़ी घाट जहाँ अजनाल का विशाल वक्ष नजर आता है, ऊपर बने बुर्ज और वहीं ऊँचे, घने पीपल के पेड़ों की छाँव में खड़ा प्राचीन शंकर मंदिर व दूसरे पूजा स्थल बार-बार आकर्षित करते रहे हैं। कभी बुर्जों पर व कभी मंदिर परिसर की धर्मशाला की छत पर बैठकर

अजनाल को निहारना, मानों विचारों को पंख लगा देता था। साहित्य से मेरा कोई वास्ता नहीं रहा लेकिन वहाँ बैठकर मैंने अपने जीवन की पहली व अंतिम साहित्यिक रचना की एक कविता व नाटक के रूप में। हास्य नाटक 'मामाजी के जूते' जो हरदा हाई स्कूल के 1953 के वार्षिक समारोह में विद्यार्थियों ने मंचित भी किया। इन विद्यार्थियों में मेरे दो मित्र स्व. श्री रमेश दीवान और श्री नंदकिशोर राजवैद्य (पटवारी) शामिल थे। श्री राजवैद्य जी आज भी कैला मंदिर के पास रहते हैं। निहायत मजबूरी, विपरीत परिस्थिति व दीन-हीन हालत में हरदा आना हुआ था और पाँच साल जैसे तैसे गुजरे। 47 से 1952 हरदा रहा फिर नौकरी की तलाश में बाप दादों का शहर जो छूटा वापस नहीं जा सका। मेरे पास बताने को कुछ नहीं है फिर भी कुछ विशेष नहीं है। मेरे दामाद, श्री धर्मेन्द्र पारे, से मैं सहमत हूँ कि आपका यह एक अभिनव प्रयास है। उसके लिए मेरी शुभकामनाएँ। अपनी असमर्थता के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

दिनकर शुक्ला
16,अरविंद विहार, बाग मुगलिया, भोपाल

हरदा से मुझे विशेष लगाव है

डॉ0 अरूण गवई

16-09-2010

श्री क्षेम,

प्रिय ज्ञानेश,

नमस्कार आपका पत्र मिला, पढ़कर अच्छा लगा, हरदा की वरिष्ठ पीढ़ी के संस्मरणों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने जा रहे हैं, एवं मुझे भी उनमें सम्मिलित करना चाहते हैं। मैं, अपनी भावनाओं को व्यक्त कर अपनी जन्मभूमि के प्रति आदरांजलि दे रहा हूँ। हरदा मेरी जन्मभूमि हैं, और कहा गया है, जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरियसी। मनुष्य को अपनी मातृभूमि सर्वाधिक प्यारी लगती है, हरदा का स्मरण आते ही मैं रोमांचित हो उठता हूँ। वहाँ बिताए हुए बचपन के दिन याद आते हैं, अजनाल नदी मैं तैरना, स्कूल में दौड़ लगाना, नाटक, गाना, विविध कार्यक्रमों में भाग लेना। मेरा जन्म 13 अप्रैल 1938 को हरदा में मेरे पैतृक मकान में हुआ। मेरे पिता स्व. नारायण गवई महान साधक एवं प्रसिद्ध शिक्षक थे। माता स्व. इंदिराबाई (टिमरनी) के मालगुजार परिवार में जन्मी थी। उनका ममतामयी स्वरूप मेरे हृदय में बसा हुआ है। मेरा बचपन लाड़प्यार में बीता, प्रत्येक जन्मदिन पर मेरी माता मुझे नये वस्त्र व अलंकार पहनाकर देवी के मंदिर में ले जाती थी। वहाँ मुझे कभी गुड़ कभी गेहूँ, कभी चने से तौला जाता था, और सामग्री गरीबों में बाँट दी जाती थी यह देखकर मेरे बाल मन को अभिमान होता था। मेरी प्रायमरी शिक्षा प्राथमिक मराठी शाला में हुई उस समय मेरे सहपाठी डॉ. सुधीर नाईक, स्व. रविन्द्र नवले, रविन्द्र अंबाशेलकर आज सभी अच्छी जगह पदस्थ है। हमारी शिक्षिकाएँ जिनमें मधुताई एवं स्व. श्रीमती कांवले, स्व. श्रीमती सीताबाई पुरंदले, श्रीमती सुमन ताई गलगलेकर का स्मरण है। उनका मुझे स्नेह एवं लाड़प्यार मिला। माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा म्यूनिसिपल मिडिल स्कूल एवं

म्यूनिसिपल हाईस्कूल हरदा में हुई। सन् 1955 में मैं, हरदा छोड़कर नागपुर आया, उस समय मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर थी। 1956 में इंटरसाईंस पास होने के पश्चात मेरे साथ हरदा के किशोर परूलकर, श्याम केकरे, सुधाकर विपट, प्रमोद लोकरे भी होलकर कॉलेज में पढ़ते थे, हम हरदा वालों का एक ग्रुप था। हॉस्टल में हम लोग बहुत मजा करते थे।

19 जून 1958 को इंदौर स्टेशन पर गाड़ी से उतरते समय अपघात हुआ, मेरे बायें पैर की हड्डी का फैक्चर होने के कारण प्लॉस्टर बाँधा गया, इसी वजह से मुझे तीन महीने बिस्तर पर रहना पड़ा। इसी दौरान हमारे घर बनारस के ज्योतिषी पधारे थे, मेरे पिताजी ने मेरी जन्मपत्रिका उन्हें पढ़वाई पिताजी को चिंता थी क्योंकि मेरी पढ़ाई में व्यवधान उपस्थित हुआ था। ज्योतिषी ने बताया कि आपका लड़का आपके खानदान में सबसे उच्च डिग्री प्राप्त करेगा एवं टेक्निकल संस्था में पढ़ाने का काम करेगा, परिवार के सब लोग खुश हुए किन्तु मुझे विश्वास ही नही हुआ क्योंकि मेरी पढ़ाई के प्रति रूचि खत्म हो गई थी। प्लास्टर खुलवाने मैं मेरी माँ के साथ इंदौर जा रहा था। खंडवा स्टेशन पर मैने माँ से अनुरोध किया कि, मुझे पढ़ने के लिए किताब चाहिए संयोगवश उन्होंने जो पुस्तक ली, वह भारतीय ज्योतिष की थी। ज्योतिष में कितनी सत्यता है, यह मालूम करने के लिए मैनें ज्योतिष का अध्ययन शुरू किया। भारतीय ज्योतिष में फल कथन हेतु जितनी भी विधियाँ है, उन सबका मैनें, अध्ययन किया एवं सभी विधियों को कसौटी पर कसने का प्रयत्न भी किया। मेरे जीवन का एक लम्बा समय इसी में व्यतीत हुआ है, मेरे संग्रह में हजारों कुंडलियाँ हैं, उनका मैने अध्ययन किया है और पाया कि उसमें सत्यता है। इसी कारण मेरा सभी वर्ग के लोगों से परिचय का दायरा बढ़ता गया। लोगों का ज्योतिष में विश्वास होने लगा। तात्पर्य यह है कि, मेरे संपर्क में सभी स्तर के लोग हैं, और उनसे मेरा निकट परिचय है। इसलिए मैं उनकी दृष्टि में सम्मान का पात्र हूँ। होल्कर कॉलेज इंदौर से एम.एससी. पास करने के पश्चात् मेरा चयन ऍटोमिक एनर्जी ट्राम्बे में हुआ था, मुंबई जाने के लिए कॉलेज से मुझे ट्रांसफर सर्टिफिकेट एवं चरित्र प्रमाण पत्र लेना था। किंतु इंदौर पहुँचने के पश्चात् हमारे कॉलेज के प्राचार्य स्व. डॉ भागवत साहब ने मुझे रोक लिया और बताया कि मेरी पदस्थापना शासकीय कॉलेज में हो रही है, इसलिए मैं 2 सितम्बर 1963 को भोपाल गया, शिक्षा विभाग में मेरी मुलाकात हरदा के श्री रमेश गार्गव से हुई उन्होंने ही मुझे मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय भोपाल में व्याख्याता पद पर नियुक्ति का आदेश दिया। मैं 02-09-1963 से 18-10-1966 तक वहाँ पदस्थ रहा। नौकरी की शुरूआत के वे तीन वर्ष भी बहुत अच्छे बीते। हरदा के शिवकुमार भारद्वाज मेरे परम मित्र मेरे ही साथ थे। हरदा के अन्य मित्र श्री रमेश भाई गार्गव, राजा भैया गार्गव, मधु गार्गव, श्री लक्ष्मीकांत गार्गव, छोटू अवधानी भी प्रायः मिलते रहते थे, इसलिए भोपाल के वे दिन मुझे याद आते हैं।

18-10-1966 को मुझे शास. इंजीनयिरिंग कॉलेज बिलासपुर के क्लास फर्स्ट ग्रेड में व्याख्याता पद पर नियुक्ति का आदेश मिला, और मुझे बनारस के ज्योतिषी की भविष्यवाणी की सत्यता का परिचय मिला। सन् 1990 में जून माह में मेरा ट्रांसफर बिलासपुर से रायपुर के शासकीय इंजिनयिरिंग कॉलेज में हुआ। मैं रायपुर में सन् 1990 से 1998 तक प्राध्यापक के पद पर कार्य करते हुए सेवा निवृत हुआ। बिलासपुर में जीवन का स्वर्णिम काल ही कहलायेगा, क्योंकि वहाँ मैं 24 वर्ष तक रहा। 10 मई 1968 में मेरा विवाह महासमुंद के निवासी एडवोकेट स्व. वासुदेव राव आराधे की सुपुत्री कु. पुष्पलता आराधे से हुआ। वह उस समय रायपुर में उच्चतर माध्यमिक शाला के, माध्यमिक विभाग में हेडमिस्ट्रेस थी। विवाह के पश्चात उसकी पदस्थापना शासकीय कन्या शाला बिलासपुर में हुई। 22-8-1969 में मुझे प्रथम कन्यारत्न की प्राप्ति हुई उसने इंदौर में दंत महाविद्यालय में प्रथम श्रेणी में परीक्षा पास की वह मेधावी छात्रा रही उसे 5 स्वर्ण पदक मिले हैं। वह आज डॉ. मेधा दवे, मेडिकल आफिसर के पद पर कार्यरत हैं दामाद भी प्रवीण दवे माईनिंग इंजिनियर के पद पर हैं। सन् 1970 में दूसरे लड़के चि. मनीष ने जन्म लिया। वह भी सिविल इंजिनियर के पद पर 'हिन्दुस्तान कॉपर' कम्पनी में कार्यरत है। संयोग से दोनो भाई-बहन मलाजखंड (बालाघाट जिला) में रह रहे हैं। सन् 1965 में तृतीय पुत्र चि. अनीष ने जन्म लिया है उसने भी बी.आई.टी. भिलाई से इंजीनियरिंग (मेकेनिकल) की डिग्री ली और रायपुर में पदस्थ है। बिलासपुर में रहते हुए सन् 1975 से मैनें रसायन शास्त्र में शोधकार्य शुरू किया सन् 1979 में मुझे रविशंकर विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि दी गई। बिलासपुर में, मेरी हाईस्कूल हरदा में साथ पढ़ने वाली सहपाठिनी कु. श्यामा पांडे से मुलाकात हुई वह कन्या महाविद्यालय में प्राचार्या के पद पर पदस्थ थी। मेरी पत्नी को भी साहित्यिक अभिरूचि है सन् 1982 में उन्हें राज्यस्तरीय शिक्षक पुरस्कार प्राप्त हुआ है। सेवा निवृति के बाद भी मै अध्ययन करता रहा हूँ। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि हरदा का रहवासी रायपुर में रहूँगा। हरदा से मुझे विशेष लगाव है। वहाँ जाते रहता हूँ, श्री अरूण खिरवड़कर, किशोर परूलकर, अरूण केकरे, शिवकुमार भारद्वाज के साथ समय व्यतीत करने में मुझे विशेष आनंद आता है। मित्र जगदीश जैसानी भी हरदा में है। हरदा में हमारा मकान है, जो नारायण भवन के नाम से जाना जाता है, मेरी बड़ी बहन कु. ललिता गवई, उच्च श्रेणी शिक्षिका के पद से सेवानिवृत होकर वहीं है एवं छोटा भाई भी वहीं रहता है, इसलिए हरदा से हमेशा संबंध बना रहता है।

मैं, हरदा जाकर देखता हूँ कि, हरदा ने नया आकार ले लिया है, शहर का स्वरूप नया हो गया है। कॉलेज खुल गया है सभी क्षेत्रों में प्रगति हो रही है - मेरी ईश्वर से यही विनती है, कि हमारा हरदा दिन प्रतिदिन प्रगति करे। वहाँ की नवीन पीढ़ी भी अपनी उन्नति करें और हरदा शहर के संस्कार और प्राचीन परंपराओं का आदर करते हुए जीवन के हर क्षेत्र में आगे

बढ़े इन्ही शुभकामनाओं के साथ ...

आपका

अरूण नारायण

गवई

बी. १-५० रोहणीपुरम, रायपुर

साफ-सुथरा मेरा शहर

विनोद कुमार अग्रवाल

मैं हरदा में 12 मार्च 1935 को जन्मा, पर प्रारंभिक शिक्षा, खण्डवा और वर्धा में हुई। 1947 का वर्ष, भारत की आजादी का साल था। मैं वापिस हरदा आ गया था, और कक्षा 8 वीं का छात्र था। हरदा मिडिल स्कूल में हमने आजादी का जश्न बड़े उल्लास से मनाया। शिक्षक और विद्यार्थियों में एक अलग ही उत्साह था। हमने देशभक्ति के गीत गाये और शिक्षकों ने 4-4 बूंदी के लड्डू बच्चों को बांटे। मैं 12 वर्ष की लगभग समझने और याद रखने वाली उम्र में भारत की स्वतंत्रता का साक्षी बना। 1951 में मैं हाईस्कूल का छात्र था। मुझे हाईस्कूल के उस समय के शिक्षक सदैव आदर से याद आते हैं उनमें श्री रामभाऊ शास्त्री, श्री व्ही.के. तिवारी एवं एम. आर. लोकरे प्रमुख हैं। 1947 से 1951 तक का हरदा एक साफ -सुथरा शहर था। यहाँ प्रतिदिन सफाई होती थी कचरा, कीड़े-मकोड़ों का नाम नहीं था। 1951 से 1957 तक मैं उच्च अध्ययन के लिए 'नागपुर साइंस कॉलेज' चला गया और वहां से एम.एससी. करने के बाद विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन करके, 1963 में केन्द्रीय विद्यालय में व्याख्याता नियुक्त हुआ। 1970 में न्यूयार्क, लंदन, पेरिस, वाशिंगटन आदि नगरों की विदेश यात्रा की। इसी सेवा काल में, सिवनी-बानापुरा में केन्द्रीय विद्यालय की स्थापना को, मैं अपनी मातृभूमि के प्रति एक अवसर के रूप में देखता हूँ। हरदा के सहपाठी, शिक्षक व संबंधी मुझे बार-बार याद आते हैं। याद आते हैं, हंडिया रोड का हनुमान मंदिर, चिन्द्रा ईमली, मुल्लाजी का नाला जो हमारे प्रात:कालीन भ्रमण के पड़ाव होते थे।

सामाजिक समरसता व प्रगति में जिन कारकों ने राष्ट्रीय विकास को प्रभावित किया है वे ही कारण हरदा के विकास को अवरूद्ध किये हुए हैं। राजनैतिक स्वार्थ व संकीर्णता के चलते, हमारा भाईचारा और प्रगति बाधित हुए हैं। राष्ट्र के प्रति सम्मान और समर्पण के भाव

अब वैसे नहीं रहे जो आजादी के संघर्ष के दौर में होते थे। राष्ट्र तो अपने ढंग से आगे बढ़ ही रहा है।

02, चंद्रभागा शिन्दे-नगर, पुणे

जब भी हरदा आता हूँ

डॉ. ज़िया ऊल हुसैन

बूझ मेरा क्या नाम रे, नदी किनारे गांव रे ।
पीपल झूमे मोरे आंगना, ठंडी-ठंडी छांव रे ।।

पुरानी फिल्म का यह गीत आज भी दिल को तसल्ली देता है। यह गीत जब भी सुना, अजनाल किनारे बसा अपना हरदा याद आ गया। यहां हमने अपना बचपन गुजारा, यहां मैंने शिक्षा ग्रहण की। श्री जाकिर अली मेरे चाचा और गुरू दोनों थे। हरदा से हायर सेकण्डरी पास कर साईंस कॉलेज ग्वालियर, फिर गांधी मेडिकल कॉलेज से मेडिकल डिग्री ली।

हरदा में बुनियादी शिक्षण का माहौल था, इसलिए मैं आगे पढ़ लिख पाया, डॉक्टर बन सका। हायर एजुकेशन की व्यवस्था नहीं थी, इसलिए मजबूरी में हरदा छोड़ना पड़ा। हरदा का सौम्य वातावरण मुझे अपनी ओर खींच लाता है। हरदा में एक डे केयर सेंटर खोलने की इच्छा है, ईश्वर मेरी इस मनोकामना को शीघ्र पूरा करें। जब भी हरदा आता हूं तो अद्भुत सुखद अहसास होता है। कामना है, हरदा खूब उन्नति करे।

चन्दन नगर धार रोड,
इन्दौर

मैं लौटूंगा

चन्दन यादव

अपने बचपन की गलियों में
पुराने दोस्तों के बीच
जो अब भी नये और ताजा हैं मेरे लिए

मैं लौटूंगा
जैसे खेल से थका बच्चा
लौट आता है माँ की गोद में,
जैसे पूरे साल को फलांगते हुए
आ जाती है जनवरी,
जैसे प्रजनन के बाद लौट आती हैं
मछलियाँ अपनी पुरानी जगह पर

पर कैसे लौटूंगा मैं.. ?
क्या मैं अब भी वहीं हूँ ?
जो बरसों पहले चला आया था अचानक यहाँ,
क्या किसी के मन में
खाली होगी अब तक मेरे जितनी जगह
मैं लौटूंगा,
पर कैसे ?
ऐसे, जैसे कभी गया ही नहीं था,
या ऐसे, जैसे अनजान लोग चले आते हैं
परायों के बीच
अपनी जगह तलाशते हुए।

द्वारा- एकलव्य, ई-10, बी डी ए कॉलोनी, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल

मक्का - शरीफ, मेरा हरदा

सुरेशचन्द्र पुरोहित 'नागदा'

'दा' सूचक है दाता का, 'हर' शिव की प्रति कहलाया
जो देता सबको कुछ न कुछ, वह है हरदा कहलाया।
कोई ग्राम नहीं कोई नाम नही, सिर्फ संज्ञा या स्थान नही
सुख-दु:ख में बजता धड़कन बन, हर दा का हिरदा है हरदा।

मैंने जन्म यहां पाया, अन्न यहां का खाया, मिले मीत और शिक्षा
चलना, खाना, लिखना, गाना, ली सीख समझ और दीक्षा।
मैं नाना-नानी के घर जन्मा था, तो ननिहाल हुआ मेरा हरदा
मैं धन्य, यहां जन्म लेकर, है पालक-पोषक मेरा हरदा।

टिमरन बहती है दक्षिण में, उत्तरी छोर छोटी हरदा
फाईल-स्टेशन पूरब में, पश्चिम आखिर में खेड़ीपुरा।
फिल्टर प्लांट है पपिंजन, पर मात्र मोहल्ला कुलहरदा
राणा-प्रताप है वार्ड मेरा, तो चित्तौड़ हुआ सारा हरदा।

स्टेशन से गल्लामण्डी नारायण टॉकीज चाण्डक चौराहा
घंटाघर तले मौन गांधीबाबा, पर बाबूलाल क्यों बौराया।
नरसिंह मन्दिर की छू देहरी, बाहर हरदा के जाता था
था मैन रोड ज्यों व्यास बना, धरणी मण्डल मेरा हरदा।

घर की दीवार से मस्जिद सटी, नित सजदा सब करते थे
'अल्ला हो अकबर' अजान के स्वर, मेरे मन में घर करते थे।
अच्छी लगती पांचो नमाज, हम ईद मिलन भी करते थे
अब आता हूँ, हज हो जाती है, मक्का-शरीफ मेरा हरदा

संगम त्यौहार-उत्सवों का, संगम उमंग उल्लासों का
सुख दुःख का है संगी-साथी, हम-दम हास-परिहासों का।
हैं रोम-रोम मेरे तन का, 'साक्षी है' मेरे बचपन का
खेल-कूद, कुश्ती-दंगल, हरदम मंगल मेरा हरदा।

डोलग्यारस पर हरनारायण मामा, शिव का वेश बनाते थे
रामधुन पर मस्त होकर, वे खूब नाचते जाते थे।
घर, गली-ओटले भर जाते, थी नही शर्म कोई परदा
सड़कों पर भीड़ समाती न थी, छोटा पड़ जाता था, हरदा।

थे पाण्डुरंग और भटनागर प्राथमिक स्कूल में अध्यापक
हेड-मास्टर की कुर्सी पर, शोभित होते थे स्थापक जी
प्रायमरी स्कूल के पण्डित जी, मिडिल में हो गये सर
श्री मोहम्मद अली हेडमास्टर, जाकिर अली क्लास टीचर
सरकारी अस्पताल के पीछे, था हमारा हाईस्कूल हरदा।

'स्मृति पुष्प' अर्पित करूं, रख पूजा के थाल
अश्रु जल भर नयन में, और झुकाऊं भाल
इस पूजा के थाल, को सजा रहे 'ज्ञानेश'
इनका अभिनंदन हम करें और करें परमेश

195 गव्हर्नमेन्ट-कॉलोनी बिरलाग्राम, नागदा

लेखक परिचय

1.श्री मदनमोहन जोशी- वरिष्ठ पत्रकार, भोपाल कैंसर हॉस्पिटल के अध्यक्ष। मध्यप्रदेश के पत्रकारिता जगत में एक सम्मानित नाम। इलना व प्रदेश के शीर्ष अखबारों के संपादक रहे। छात्र जीवन से ही लेखन व भाषण कला में गहरी रूचि। जन्म हरदा में । वर्तमान निवास भोपाल

२. श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय - सुप्रसिद्ध ललित निबंधकार, भारतीय चित्रांकन परंपरा के अध्येयता। देश विदेश में अनेक शोधपत्रों का वाचन। ललित निबंध व चित्रकला परंपरा पर एक दर्जन से भी अधिक पुस्तकें। कई सम्मान व पुरस्कार। जन्म हरदा में वर्तमान निवास इंदौर ।

३. हुमैरा जैदी - वरिष्ठ समाजसेवी स्व. अनवर जैदी की बेटी। हरदा से पहली कॉमर्स स्नातक, वर्तमान में कोटा में निवासरत। लेखन व श्रेष्ठ साहित्य पढ़ने में रूचि। हरदा में जन्म अब कोटा में निवास ।

४. श्री लाल्टू - कवि-वैज्ञानिक,कहानीकार। पंजाब विश्वविद्यालय चंड़ीगढ़ में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक रहे। अमेरिका के प्रिंस्टन विश्वविद्यालय से रसायन शास्त्र में शोध कार्य। कविता कहानी लेखन में सक्रिय । आई.आई.आई.टी. हैदराबाद में प्राध्यापक। देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित । जन्म कलकत्ता में । देश विदेश में कई जगह रहे । हरदा में लगभग डेढ़ वर्ष निवास । अभी हैदराबाद में ।

५. श्री कृष्णकांत निलोसे- वरिष्ठ कवि, साहित्यकार। इन्दौर में प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापना काल से सक्रिय। देश के विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित। दो कविता संग्रह प्रकाशित। समाज सेवा में सक्रिय व्यक्तित्व, वर्तमान में इन्दौर में सृजनरत।

६. श्री अजात शत्रु- उल्हासनगर मुम्बई में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। फिल्मी गीत समीक्षक, व्यंग्यकार, चिंतक, कहानीकार। सुश्री लता मंगेशकर एवं आशा भोसलें के दुर्लभ गीतों पर दो ग्रंथ प्रकाशित। हरदा के आसपास बोली जाने वाली भुआणी बोली का रचनाओं में खूब प्रयोग। वर्तमान में गृह ग्राम पलासनेर और मुंबई में निवासरत ।

७. श्री कैलाश मण्डलेकर- स्थापित व्यंग्यकार, समीक्षक । देश के प्रसिद्ध पत्र पत्रिकाओं में 30 वर्षो से सतत लेखन। दो संग्रह प्रकाशित। शब्द शिल्पी व सारथी सम्मान से सम्मानित। मूलत: नीमसराय के निवासी अब खंडवा वासी ।

८. श्री विष्णु राजोरिया- हरदा में जन्म व हॉयर सेकेण्डरी तक शिक्षा, पत्रकार, चिन्तक, शिक्षाविद्। मध्यप्रदेश सरकार के पूर्व मंत्री, कैरियर कॉलेज के संस्थापक। अनेक देशों की यात्रा व देश विदेश के कई सम्मान व पुरस्कार मिले। हरदा से दो बार विधायक रहे। पूर्व मुख्यमंत्री स्व. अर्जुन सिंह के व्यक्तित्व पर आठ खंडों के ग्रंथ का संपादन। हरदा में जन्म । अब भोपाल में निवास ।

९. उर्मि कृष्ण- हरदा में जन्म, प्रारंभिक शिक्षा, सुप्रसिद्ध कहानीकार। शुभतारिका 'पत्रिका की संपादक। अंबाला छावनी के कहानी महाविद्यालय की संचालक। अनेक कविता संग्रह, यात्रा वृत्तांत, उपन्यास व बाल साहित्य पर पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त लेखिका। वर्तमान में अंबाला छावनी में निवास।

१०. डॉ. गोकुलदास- हरदा में जन्म, हाईस्कूल तक अध्ययन, सुप्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक। इन्दौर के गोकुलदास अस्पताल के संस्थापक - संचालक। कई समाजसेवी संस्थाओं से संबंद्ध। डॉ. गोकुलदास का हरदा से गहरा आत्मीय लगाव है। इंदौर में निवासरत।

११. श्री अभय कासलीवाल- जन्म व प्रारंभिक शिक्षा हरदा में, प्रारंभ से ही मेधावी रहे। बी.ई. (ऑनर्स), भारत सरकार के उच्च तकनीकी पदों पर रहते हुए कई देशों में पदस्थापना व यात्रायें। संयुक्त राष्ट्र संघ के कंबोडिया शांति मिशन में श्रेष्ठ स्वयंसेवक का सम्मान। केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण में निदेशक पद से सेवानिवृत्त। अनेक पुस्तकों का लेखन, संपादन। वर्तमान में दिल्ली और अमेरिका में निवासरत ।

१२. डॉ. अनवर जाफरी- शिक्षाविद्-वैज्ञानिक। शिक्षा, भारत और सोवियत रूस में। मॉस्को विश्वविद्यालय से कम्प्यूटर साइंस में पीएच.डी.। देश के प्रसिद्ध टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फन्डामेन्टल रिसर्च में सेवाएं देने के बाद शैक्षिक नवाचार के प्रति समर्पित व्यक्तित्व। हरदा में एकलव्य संस्था में 12 वर्ष तक शैक्षिक नवाचार में सक्रिय रहे वर्तमान में भोपाल में निवासरत ।

१३. डॉ. प्रियंका पण्डित- हरदा में जन्म व महाविद्यालयीन शिक्षा प्राप्त करने तक अध्ययन। देश की प्रमुख साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में कविताओं का प्रकाशन। केदारनाथ अग्रवाल के काव्य पर शोधकार्य । वर्तमान में नागपुर में निवासरत।

१४. श्री आजाद जैन- आदर्श अध्यापक व प्राचार्य रहीं श्रीमती सुशीलाबाई जैन के सुपुत्र। बचपन से ही मेधावी रहे। भारतीय स्टेट बैंक के बैंक अधिकारी संवर्ग में सीधे चयनित होने वाले हरदा के प्रथम युवा। वर्तमान में भोपाल वासी ।

१५. डॉ. कृष्ण चराटे- हरदा में जन्म व हाईस्कूल तक अध्ययन। प्रसिद्ध

व्यंग्यकार, लेखक, 7 संग्रह प्रकाशित। मध्यप्रदेश शासन का शरद जोशी सम्मान। अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान सहित अनेक सम्मान प्राप्त साहित्यकार।

१६. श्री अशोक वाजपेयी - हरदा हाईस्कूल में लंबे समय तक हिन्दी अध्यापन। हिन्दी के कवि, छात्रों में साहित्यिक व सांस्कृतिक अभिरूचि उत्पन्न करने में सक्रिय योगदान। एक कविता संग्रह 'झुक जाते हैं पहाड़' प्रकाशित। होशंगाबाद में जन्म और खंडवा में निवास ।

१७. प्रो. मधु गार्गव- हरदा के सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री नर्मदाप्रसाद गार्गव के सुपुत्र। छात्र राजनीति में सक्रिय रहे प्रो. गार्गव, सैफिया कॉलेज में अध्यापक रहे। भोपाल के पूर्व महापौर। भोपाल की कई संस्थाओं से सक्रिय रूप से संबद्ध।

१८. डॉ. निहारिका 'रश्मि'- हरदा में जन्म, संपादन में रूचि, विभिन्न सामाजिक एवं पर्यावरणीय विषयों पर वृत्त-चित्र (डॉक्यूमेंट्री) निर्माण। कहानी एवं कवितायें देश के विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित। जेल प्रबंधन पर पीएच.डी.। अभी भोपाल में निवास ।

१९. डॉ. हरि जोशी- जन्म खुदिया, प्रारंभिक शिक्षा हरदा में । एम.टेक. तक शिक्षा प्राप्त। प्रसिद्ध व्यंग्यकार कवि, अनेक व्यंग्य संग्रह, कविता संग्रह व उपन्यास प्रकाशित। वागीश्वरी सम्मान सहित कई सम्मान व पुरूस्कार प्राप्त। वर्तमान में भोपाल में निवास।

२०. रेहाना निज़ाम- हरदा में हॉयर सेकेण्डरी तक अध्ययन, मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग की पूर्व सदस्य, महिला उत्थान, पर्यावरण संरक्षण में रूचि, इन्दौर की अनेक शैक्षणिक व समाजसेवी संस्थाओं से संबद्ध रहते हुए सक्रिय। अभी इंदौर में निवास ।

२१. श्री चतुर्भुज काब्जा- हरदा में जन्म एवं हॉयर सेकेण्डरी तक अध्ययन, बचपन संघर्ष में बीता व श्रम से रास्ता बनाकर साहित्य लेखन किया। दो पुस्तकें प्रकाशित। इटारसी में कई संस्थाओं से संबद्ध। वहीं निवासरत ।

२२. डॉ. ओ. पी. बिल्लौरे- हरदा के चितपरिचित शिक्षक श्रीराम जी बिल्लौरे के सुपुत्र। हरदा में जन्म एवं शिक्षा, बैंकिंग शब्दावली पर किये शोधकार्य पर पीएच.डी.। साहित्यिक पुस्तकों व गतिविधियों में रूचि । भारतीय स्टेट बैंक के अधिकारी पद से सेवानिवृत्ति लेकर इन्दौर में निवास।

२३. डॉ. मंगेश कुमार उपरीत- हरदा में जन्म हॉयर सेकेण्डरी तक शिक्षा, एम.ई.-पीएच.डी.। विभिन्न तकनीकी व इंजीनियरिंग संस्थानों के प्राध्यापक व प्रशासक एवं

राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के डीन रहे। शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्ति के बाद भोपाल में निवासरत।

२४. श्री भगवानदास मंत्री- हरदा में अध्ययन, समाजसेवा व ज्योतिष आध्यात्म में गहरी रूचि। वर्तमान में भोपाल निवासरत। समाजसेवी गतिविधियों में निरंतर सक्रिय। हरदा से आज भी गहरा सामाजिक संपर्क।

२५. डॉ. मूलाराम जोशी- जन्म खुदिया, प्रारंभिक शिक्षा हरदा में। डी.लिट. तक उच्च अध्ययन। हिन्दी व अंग्रेजी में व्यंग्य, कहानी व कविता लेखन। एक दर्जन से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित। फुलब्राईट फैलो (हावर्ड विजले अमेरिका) राष्ट्रीय एकता सम्मान। बागीश्वरी सहित कई पुरस्कार व सम्मान प्राप्त साहित्यकार।

२६. श्री राजेन्द्र जोशी- प्रसिद्ध कवि, साहित्यकार। 12 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। वृत्तचित्रों और सीरियल्स के लिए गीत लिखे। अनेक देशों की यात्रायें की, वागीश्वरी, शब्द शिल्पी, अक्षर आदित्य सम्मान सहित कई पुरस्कार व सम्मान प्राप्त साहित्यकार। म.प्र. के राज्यपाल व मुख्यमंत्री के प्रेस अधिकारी रहे।

२७. श्री कैलाशचन्द्र पारे- पूर्व जिला और सत्र न्यायाधीश, पैतृक गांव मगरधा। केन्द्र सरकार की पेट्रोलियम सलाहकार समिति में सदस्य रहे। श्री पारे मध्यप्रदेश के विभिन्न न्यायालयों में पदस्थ रहते हुए सेवानिवृत्ति के बाद इन्दौर में निवासरत हैं।

२८. डॉ. लोकेश अग्रवाल- हरदा के लोकप्रिय वकील स्व. रामनारायण जी अग्रवाल के ज्येष्ठ पुत्र। उच्च शिक्षा विभाग में अतिरिक्त संचालक एवं विभिन्न महाविद्यालयों के प्राचार्य पद पर रहते हुए सेवानिवृत्त, प्रखर वक्ता व लेखक। हरदा व निमाड़ खण्डवा जिले के स्वतंत्रता संग्राम पर शोध। अनेक पुस्तकें प्रकाशित। इंदौर में निवास ।

२९. डॉ. एन. डी. गार्गव (नारायण)- सुप्रसिद्ध चिकित्सक व समाजसेवी। आर.डी. गार्गी मेडिकल कॉलेज उज्जैन के निदेशक। मध्यप्रदेश जूनियर डॉक्टर एसोसिएशन के संस्थापक। गांधी मेडिकल कॉलेज में 1990 में एलुमिनी के संयोजक व 2005 में कॉलेज के स्वर्णजयंती कार्यक्रम के संयोजक। कई समाजसेवी संस्थाओं से संबद्ध रहते हुए भोपाल में निवास कर रहे हैं।

३०. श्री प्रफुल्ल निलोसे- बचपन से ही मेधावी छात्र, मात्र 28 वर्ष की उम्र में हिन्दुस्तान कॉपर में एक्सीकेटिव इंजीनियर। बंबई में एल. एण्ड टी. कंपनी के उपाध्यक्ष, लेखन में प्रारंभ से रूचि। तकनीकी व सामाजिक विषयों पर शोधपत्रों का लेखन एवं वाचन, कई देशों की यात्रायें, देश के उच्च तकनीकी संस्थानों से संबद्ध, श्री निलोसे

वर्तमान में मुम्बई में निवास कर रहे हैं।

३१. श्री रामदास छलोत्रे- जन्म रहटाकलां, हाईस्कूल तक हरदा में अध्ययन, मेधावी छात्र रहे श्री छलोत्रे मध्यप्रदेश सिंचाई विभाग में विभिन्न पदों पर कार्यरत रहते हुए सेवानिवृत्ति के बाद भोपाल में निवास कर रहे हैं।

३२. श्री राधेलाल बिजघावने- पांच दशकों से निरंतर साहित्य सृजन, 25 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित। उपन्यास व कहानियों में भुवाणी संस्कृति व बोली की झलक। कई पुरस्कार व सम्मान प्राप्त श्री बिजघावने भोपाल में निवासरत हैं।

३३. श्री बिजू जॉन- हरदा में हॉयर सेकेण्डरी तक अध्ययन। रीवा विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग डिग्री। देश की प्रमुख कंपनियों व मध्यप्रदेश वित्त निगम के उच्च पदों पर रहते हुए अब स्वतंत्र व्यवसाय में संलग्न। हरदा के गुरूजनों व मित्रों से जीवंत संपर्क।

३४. डॉ. जगदीश जैसानी- प्रारंभिक शिक्षा हरदा में। रसायन शास्त्र से स्नातकोत्तर व पीएच.डी.। कृषि महाविद्यालय जबलपुर में रसायन विभाग के पद से सेवानिवृत्त होकर जबलपुर में निवासरत।

३५. श्री पी. सी. शर्मा- भोपाल के पूर्व विधायक व भोपाल विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष रहे। राजनीति व समाजसेवा में रूचि। चौकड़ी (खिरकिया) पैतृक गांव। हरदा से निरंतर जीवंत संपर्क।

३६. श्री रविशंकर परसाई- टिमरनी (हरदा) में जन्म, 40 वर्ष के अध्यापकीय जीवन में हरदा में अनेक वर्ष अध्यापन, जाने माने व्यंग्यकार, आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित, लेखन के लिए कई सम्मान व पुरस्कार प्राप्त, वर्तमान में पिपरिया निवासरत।

३७. श्री आर. एस. माकवा- हरदा में जन्म व प्रारंभिक शिक्षा, शासकीय सेवा में विभिन्न पदों पर रहते हुए सेवानिवृत्ति के बाद वर्तमान में भोपाल निवास।

३८. डॉ. महेशचन्द्र वशिष्ठ- हरदा में जन्म व शिक्षा, समाजसेवी नेत्र चिकित्सक, साहित्य पठन पाठन में रूचि, भारतीय रेल विभाग में सेवारत रहते हुए, डॉ. वशिष्ठ साहित्यिक संस्थाओं से संबद्ध रहते हुए सक्रिय रहे हैं, वर्तमान में पूना निवासरत।

३९. श्री बी. एम. कौशिक- स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री गंगाविशन कौशिक के सुपुत्र, हाईस्कूल तक हरदा में अध्ययन, पत्रकारिता व स्वतंत्र लेखन के साथ नि:शुल्क चिकित्सा के माध्यम से समाज सेवा, वर्तमान में भोपाल निवास।

४०. डॉ. पी. डी. अग्रवाल- हरदा में जन्म व शिक्षा। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी मदनलाल जी अग्रवाल के सुपुत्र। सेवाभावी चिकित्सक के रूप में प्रसिद्ध। अच्छी पुस्तकों के पठन पाठन में रूचि। कई समाजसेवी संस्थाओं से संबद्ध।

४१. उषाराज शर्मा- हरदा में जन्म व शिक्षा। श्री सत्यनारायण जी शर्मा मांदलावालों की सुपुत्री। साहित्य पढ़ने में रुचि। वर्तमान में उज्जैन में निवासरत।

४२. डॉ. नटवर हेड़ा- हरदा के श्री राधेश्याम जी हेड़ा के सुपुत्र। प्रारंभिक शिक्षा हरदा में। होलकर कॉलेज में अध्ययनरत रहते हुए मेडिकल कॉलेज में प्रवेश। एम.डी. के बाद इटारसी में चिकित्सा सेवा कर रहे हैं।

४३. सुश्री विजयलक्ष्मी जैन- हरदा के श्री अमोलकचन्द जी जैन की सुपुत्री। महाविद्यालयीन शिक्षा हरदा से। मध्यप्रदेश राज्य सेवा परीक्षा में चयनित हरदा की पहली बेटी। वर्तमान में रतलाम में डिप्टी कलेक्टर के रूप में पदस्थ।

४४. डॉ. रघुनन्दन प्रसाद सीठा- हरदा नगर के शिक्षा जगत में चिरपरिचित नाम, दो दशक हरदा में अध्यापन, लेखक-समीक्षक, पं. माखनलाल चतुर्वेदी के गद्य पर शोधकार्य, 50 वर्ष के अध्यापकीय जीवन के बाद अब भी अनेक साहित्यिक व समाजसेवी संस्थाओं से संबद्ध।

४५. श्री अनिल शुक्ल- श्री शुक्ल हरदा में हाईस्कूल तक अध्ययन के बाद भारतीय स्टेट बैंक की विभिन्न शाखाओं में कार्यरत रहते हुए वर्तमान में राजभाषा अधिकारी के रूप में भोपाल प्रधान कार्यालय में पदस्थ हैं।

४६. श्री प्रकाश जांगरे- इन्दौर के अपर कलेक्टर व प्रदेश के विभिन्न नगरों एवं विभागों में उच्च प्रशासनिक पदों पर रहते हुए वर्तमान में मध्यप्रदेश नागरिक आपूर्ति निगम के प्रबंधक हैं।

४७. डॉ. सतीश जैन -जन्म, शिक्षा हरदा में। बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय के उच्च प्रशासनिक पदों पर रहते हुए वर्तमान में विश्वविद्यालय के सहायक कुलसचिव हैं।

४८. श्री एस. एच. गुहा- हरदा में जन्म, शिक्षा। वनविभाग व वन्यप्राणियों व पर्यावरण विषयों पर कई लेख व पुस्तकें प्रकाशित। वनविभाग में समर्पित व सक्रिय अधिकारी के रूप में प्रसिद्ध श्री गुहा वर्तमान में खंडवा में निवास कर रहे हैं।

४९. श्री माणिक वर्मा- हरदा मूल निवास रहा। हिन्दी काव्य मंचों के

प्रसिद्ध व्यंग्य कवि हैं, देश विदेश में चर्चित, प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित, पांच संग्रह प्रकाशित, हरदा को पहचान देने वाले श्री माणिक वर्मा भोपाल में निवासरत हैं।

५०. श्री दिनकर शुक्ला- हिन्दी, अंग्रेजी के प्रसिद्ध पत्रकार। नेशनल होराल्ड, एम.पी. कॉनिकल के उपसंपादक रहे। जनसत्ता, द वीक, हिन्दुस्तान टाईम्स जैसे प्रतिष्ठित अखबारों से संबद्ध रहे। प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी व श्री इंद्रकुमार गुजराल के साथ कई देशों की यात्रा। वर्तमान में भोपाल निवास।

५१. डॉ. अरूण गवई- हरदा में जन्म व हॉयर सेकेण्डरी तक अध्ययन। शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज बिलासपुर व रायपुर में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक रहते हुए सेवानिवृत्त, ज्योतिष अध्ययन में विशेष रूचि।

५२. श्री विनोदकुमार अग्रवाल- स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री दीनानाथ जी अग्रवाल के सुपुत्र। प्रारंभिक शिक्षा हरदा में। केन्द्रीय विद्यालय संगठन में अध्यापन के बाद असिस्टेंड कमिश्नर के पद से सेवानिवृत्त। कई देशों की यात्रायें। वर्तमान में पूना निवासरत।

५३. डॉ. जिया उल हुसैन- हरदा के लोकप्रिय शिक्षक श्री जाकिर अली के भतीजे। हॉयर सेकेण्डरी तक हरदा में अध्ययन के बाद वर्तमान में इन्दौर में चिकित्सा प्रेक्टिस। हरदा से निरंतर संपर्क व आत्मीयता बनी हुई है।

५४. श्री चन्दन यादव- हरदा में जन्म व अध्ययन। कविता लिखने पढ़ने व साहित्य में रूचि। बच्चों के शैक्षिक नवाचार कार्यक्रमों में निरंतर सहयोग, वर्तमान में श्री यादव एकलव्य संस्था से संबद्ध । भोपाल में निवास ।

५५. श्री सुरेशचन्द्र पुरोहित- हरदा में जन्म व अध्ययन। कविता साहित्य में रूचि। आध्यात्मिक व धार्मिक अभिरूचि। श्री पुरोहित ग्रेसिम मिल से सेवानिवृत्त होकर नागदा में निवासरत हैं।